सहस तार ले पूरन पूरी,
अजहुँ बिनब कठिन है दूरी।

—कबीर

एक

रामपुरा लगभग चार सौ घरों का गाँव है। दक्षिणी पट्टी इसकी थोरियों और चमारो की है। सारे तीस-बत्तीस घर होगे उनके। इनमे केवल दो ही घर ऐसे हैं, जिनमे केवल एक-एक कोठा पक्का है, शेष सब कच्चे। झोपडे, छान, छप्पर और पड़वे अधिक-कोठे कम। सभी नई-जूनी बाडो से घिरे हैं। बाडे जहाँ-तहाँ टूट रही हैं और बैठने लगी हैं। पशुओं ने उनमे रास्ते बना लिए हैं। रास्तो की चौडाई के साथ-साथ घरो की परेशानी भी चौडी होती रहती है।

इन घरो के आसपास कहीं-कहीं फफोलो की तरह उठे फूस के कुड्डे और निर्धन की आवश्यकताओ की तरह तग होती गलिया आप देखेगे। ये आवास मुहल्ले के दर्पण हैं जिनमें अभाव और उत्पीडन, अन्धविश्वास और शोषण, आलस्य और अनबन झाकते रहते हैं।

करीब आधे लोगो के पास तो छोटे-मोटे जैसे भी हैं अपने खेत हैं। कई अपना काम साझेदारी पर निकालते हैं और बाकी बेचारे अपनी स्वतन्त्र मजदूरी पर।

इन घरो मे कोई भी युवक ऐसा नहीं जिसके गले यदा-कदा सुरा न उतरती हो। वार-त्योहार, व्याह-बधाई, भैरूजी और माताजी के पूजा-पर्व पर तो वे गिरवी रखकर भी पीते हैं, कम नहीं-छककर। सामान्य दिनो मे भी जेब ने जरा भी साथ दिया तो मजूरी उन्हे किससे लेनी, आँखे बन्द कर गटक गए। कई कर्ज करके भी पीने मे अहोभाग्य समझते हैं, महज यह सोचकर कि मर भी गए तो अरथी को तो कोई पकड़ने से रहा? होली-दिवाली, कई जुए का शौक भी पूरा करते हैं। मौके-बेमौके कई इनमे चुनावी हार-जीत का सौदा करने से भी नहीं चूकते।

ये सब शौक इन्हे पीढी-दर-पीढी इनकी सेवा के फलस्वरूप उपहार में मिलते रहे हैं-दुर्जन की कृपा की तरह, कुछ तो सेठ-सामन्तो से और कुछ जमींदारो, ठेकेदारो, अफसरो और अहलकारो से। हँसकर लिए हुए शौक, रोकर ढोते हैं ये। तम्बाकू तो इनके दाल-रोटी की तरह है, जवान और बूढे ही नहीं, छोरे भी पीते हैं। कई बूढे पोश्त के डोडे भी चाय के साथ उबालते हैं। चीनी नहीं तो गुड के साथ ही, गुड नहीं तो फीकी ही सही पर पीएँगे जरूर। बिना पीए खाट से उठना मुश्किल हो जाता है उन्हें।

दो पियक्कड पड़ोसियों की आपसी बोलचाल से रात का सन्नाटा कभी-कभी एकाएक मुखर हो उठता है। अधिकाश मुहल्ला जाग जाता है। गाली-गलौज मे आदमी तो उफनते ही हैं। फूल औरतों के मुँह से भी कम नहीं झडते हैं। 'तू सतवन्ती सावतरी कब की? छाज तो बोले सो बोले, चालनी भी बोले—हजार छेदवाली? काति की कुत्ती, मेरे से मत जूझ, मैं खोल दूगी सारी पोल? बखिया उधेड दूगी एक-एक।' दूसरी कम क्यो, 'तू आई दूध की धोई, खोलू कावड तेरी? सेठ, पटवारी, ठाकुर और तिलकधारी पता नहीं कितने घर धोके हैं—किस-किस धाट ढूकी है तू, बोलने को मरती है, सरम नहीं आती?' इस तरह प्राय यहाँ वाणी नगी होती है और लाज बेभाव बिकती है। पर दो दिन बाद मे फिर राजी-बाजी, वैसे के वैसे। काना 'माटी' सुहाए नहीं और काने बिना नींद आए नहीं।

औरते और बडी छोरिया मजदूरी के अलावा गाँव मे गारा-गोबर और फूस-बुहारी का काम भी करती हैं। खटते सभी हैं, गाँव मे भी और गाँव के बाहर भी, पर अधिकाश खटना इनका है अन्धा ही। काफी-कुछ पसीना इनका, बोतल, ब्याज और बेगार चाट जाते हैं—बेभाव और बिना स्वाद। खेती ठीक हुई तो आठ महीने गाँव मे और चार महीने बाहर। अकाल पड गया तो इसका उलटा। खेत-खलिहानो से लेकर, खानो, कारखानो भौर कमठो तक सब जगह खटते हैं ये।

जीवन की इस विविधता मे, इनमे भजन-कीर्तन भी होता है और जम्मा-जागरण भी। की ऊबड-खाबड धरती पर, कताई-बुनाई का सिलसिला भी कहीं-कहीं रेगता है। गाँव का यह उदासी ढोता टोला, अपना अस्तित्व रखने मे रत है।

इस मुहल्ले के बीचोबीच, कुछ ऊँचाई पर एक झोपडा खडा है—नारायण की नाभि पर उठे कमल की तरह स्थिर और गाँव के ससार को अपलक देखता। गाँव मे उम्र इसकी सबसे अधिक और आकार इसका सबसे छोटा। इसने थोडे नहीं, अस्सी बसन्त देख लिए पर हँसी-खुशी की हरियाली इसके यौवन मे भी कम फूटी, अब बुढापे मे तो फूटनी ही क्या है? अभाव, गरीबी और बीमारी तो इसके पल्ले बन्धे रहे, साथ वे उसका आज भी नहीं छोड रहे। सिर उसका कई जगह पिचक गया है, शेष अग भी जीर्ण-शीर्ण ही हैं। मूक और बेवस की तरह वह अब भी जी रहा है, किसी तरह।

इसकी बगल मे एक छान कई बार खडी हुई, साल-दो साल रही और फिर अकाल पीडित शिशु की तरह सूखती, जहाँ से उठी थी वहीं बिखर गई—अपने निशान समेटती। इस समय केवल झोपडा ही खडा है—अद्वैत की तरह अकेला। इसके भीतर दो थूनिया हैं—जीव और माया की तरह, जिन पर इसके सिर का भार टिका है। खिडकी-बारी तो भाग्य मे इसके लिखी ही नहीं, किवाड भी एक पल्लू का और उसकी काया भी जीर्ण-शीर्ण और जवाब देती। आदमी उसमे झुककर ही जा सकता है—सीधे होकर जाने का सवाल ही नहीं। आगे इसके गोबर से लिपा छोटा-सा आगन और उसके आगे एक किवाडी। बस, यही घर है—केवल एक झोपडे का।

इस पर फूस जहाँ-जहाँ शिथिल और विरल हो गया है वहाँ से उसमे दिन मे तो झाकती है धूप और रात मे चाँदनी। वर्षा थोडी-बहुत भी हुई तो जगह-जगह से यह वियोगिन

की आँखो की तरह टपकने लगता है।

गाँव मे दो साल से तृण-अकाल है। टोले के अधिकाश युवक-युवतियाँ रोजी-रोटी की तलाश में बाहर गए हुए हैं तब भी घर प्राय सभी खुले हैं। हैं तो उनमे छोरे-छोरियाँ और अधेड ही, पर हैं। यो तो इस समय गाँव के सारे ही आकाश पर उदासी मडरा रही है, पर इस मुहल्ले पर वह विशेष है, और इस झोपडे पर तो अमा-अधकार की तरह वह गाढी होकर पसर रही है।

दिन के ग्यारह बजे हैं इस समय। झोपडे की मालकिन गगी चमारी है—साठ साल की। खा-पीकर आँगन मे बैठी है। पालथी मे एक बालक है, कमजोर और कुम्हलाता। उसकी कलाइया पकड रखी है उसने। चिन्तित और अनमनी वह सोच रही है, 'छोरी आजाए तो, छोरे को देकर दो घडी कमर सीधी करू एक बार।'

दो मिनट बाद ही उसने आवाज दी, 'पूरी?'

'हाँ दादी,' आवाज झोपडे मे से आई।

'बरतनो के हाथ फेर लिया बेटी?'

'फेर लिया दादी।'

'आग ओटदी?'

'ओट रही हूँ।'

'ओटदे—ओटदे।'

लडकी ने दो छाणे भोभर मे ओट, उन्हे एक अधफूटी ढकनी से दबा दिया। किवाड बन्द कर, फुर्ती से वह बाहर आ गई।

'बता दादी और क्या करना है?' उसने दादी से पूछा।

'करना यही है बेटी, घडी-दो घडी अब भाई को ले, भगवान भला करे तेरा। इसे गोदी उठाए फिरू इतनी सामरथ तो मेरे मे नहीं, और एक जगह टिक कर बैठा रहे, ऐसा समझदार यह नहीं। नजर जरा-सी चूकी और इसने मुँह मे माटी भरी। माटी निकालने लगी तो देख, दाँत लगा दिए इसने।'

डोकरी ने उगलिया अपनी, उसके आगे करदीं।

लडकी ने दादी की उगलिया देखी। दाहिनी तर्जनी और मध्यमा पर दाँतो के निशान थे और उन पर जरा-जरा-सा खून भी चमक आया था।

उसने कहा, 'दादी, इसे हरदम गोदी से चिपकाए रखती हूँ, अधमिट ही भूल से उतार दिया तो इसका हाथ तो सीधा माटी पर ही जाएगा।'

'और माटी फिर मुँह मे बेटी?'

'हाँ दादी।'

'ढाई साल से कुछ ऊपर का हो रहा है, इसके साथ के लडके देख, हवा मे उछलते हैं और यह सदाउदासी अभी घुटने ही घींस रहा है, पैर उठाता डरता है। पेट देख नहीं रही, टीवडे की तरह ऊपर उठ रहा है, मूगे डोरे झाक रहे हैं उस पर। गड्ढों मे धँसती, इसकी कोडिया आँखो की तरफ देखती हूँ तो बस एक ही चिन्ता सताती है मुझे कि यह

ऊमर कैसे लेगा?'

पूरी ने हाथ धोए। पानी पीया। भाई को पूछा, 'पानी पीएगा रे?' लडके ने आँखे बहिन की ओर तरेरीं, जिन पर प्यास ठहरी थी। तब भी उसने अपनी गर्दन झुकाकर, माग अपनी और स्पष्ट की, पर होठ बिल्कुल नहीं खोले।

पूरी ने उसे पानी पिलाया। मुँह धोया, पेट और पीठ पर जमी रेत पोछी। दादी की तरफ देखती कहने लगी, 'इसका झुगलिया दादी?'

'सामनेवाले आले में देख बेटी।'

वह उठी, झुगलिया लिया। उलटा था वह। सूधा करती उसे, सहसा रूकगई वह। आगे-पीछे देखने लगी उसे। छाती पर एक भी बटन नहीं और पीठ थी दो जगह से गई हुई। उसे दादी के सामने करती कहने लगी वह, देख दादी, यह तो सारा ही झर-झर कथा हो रहा है?'

डोकरी ने बिना उसकी ओर देखे ही कह दिया, 'हो रहा है तो रखदे बेटी, दूसरा तो कोई है नहीं, दो घडी यो ही फिरा ला।'

उसने नग-घडग भाई को गोदी उठाया और नगे पाव ही बाहर चलदी। साल भर होने को है, जूते नहीं हैं उसके।

माँ-बाप उसके मजदूरी पर गए हैं। बालजी सेठ के कमठा चल रहा है—कई दिनो से। ।ाई को लिए वह, वहाँ जा पहुँची। चूने की खड्ड पर खडे बाप के पास जा खडी हुई। अढ्डल लिए आती-जाती माँ को देखने लगी। माँ पेट-से थी—छ मास से कुछ ऊपर। कल उसके पैर के अगूठे पर ईंट का कोई खोरिया आ गिरा था। नख की जड कुछ कट गई थी, खून टपकने लगा था। सेठ ने बिलानभर का एक मटमैला-सा लीरा फूस मे से झडका कर उठाया और कहा, 'ले पानी से तर कर, जल्दी से लपेट ले इसे, जादू का काम करेगा।'

क्या करती, और कोई चारा ही नहीं था वहाँ। लपेट लिया उसने और पहले की तरह फिर काम मे लग गई?

कारीगर ने कहा था, 'सेठ-साब, दो बूद डिटोल पड जाती घाव पर तो बढिया रहता—पकता नहीं वह।'

'अरे, क्या बात करते हो तुम? डिटोल और टिचर- फिचर गाँवो मे थे कहाँ? अब थोडा-बहुत डिटोल-फिटोल कहीं चमक उठा तो कौनसा अल्ला उतर आया धरती पर? लगी पर पानी की पट्टी या पेशाब का मुकाबला आज भी कहीं नहीं,' सेठ ने दबंग आवाज मे कहा।

कारीगर के होठ न दुबारा खुले और न उसे लाभ ही लगा इसमे।

खून का आना तो कुछ देर बाद बन्द हो गया पर दर्द भी बढने लगा और घाव भी। तगारी लिए ज्यो-ज्यो वह चली, पैर पर दबाव अधिक पडा, घाव की चमडी कई जगह दरक गई। सुबह उसमे सूजन भी थी और पीडा भी। आधा-नख जड से अलग होरहा था और आधा होरहा था—काला स्याह। तगारी लेकर चलना तो दूभर था पर पेट थोथा है,

क्या करती, आगई काम पर।

इस समय न उसकी चाल ही सहज थी और न उसकी मुख मुद्रा ही। चेहरे पर उसके उदासी उत्तर रही थी। दो बासी रोटियाँ, बासी कड्डी के साथ खाकर घर से चल पडी थी वह। माँ की उदासी बेटी के चेहरे पर भी आ उतरी। वह सोच रही थी, 'माँ से कहूँ तू दो घडी भाई को ले, तगारी ला मुझे दे।'

होठ उसके खुलने ही वाले थे कि सहसा, सेठ कारीगर के सिर पर आ खडा हुआ। अधेड उम्र के कारीगर ने एक ईंट फुर्ती से चेप, उस पर करनी के औंधे हत्थे का एक ठरका दिया और इसी के साथ आवाज मे गर्मी बिखेरते हुए कहा, 'अरे दीनिए की बहू, पैरो मे जान है या निकल गई? तू गिन-गिन पैर रख रही है-दुलहन की तरह और मैं यहाँ गारे के लिए आँखे फाड रहा हूँ।'

बारह-तेरह साल का एक छोरा, ईंटे ला रहा था-अपनी पूरी फुर्ती और पूरी शक्ति से। कारीगर उस पर भी बरसा, 'छोरा, मरा-मरा पैर घींस रहा है, घर से भूखा निकला था या बीमार है? साले मलेरिया आ मरते हैं यहाँ पर? जा दीनिया को कह, ऐसा क्या गारा भेज रहा है-काजल की तरह एक-जी करके आने दे।'

सेठ को अच्छी तरह मालूम है कि असमय की यह गाज बरसनेवाली नहीं है, तव भी जितनी देर खडा रहूँगा, चार-छ बून्दे तो ले ही पडूगा।

कारीगर के बोल, पूरी ने भी सुने। वह बेचारी इस रहस्य को क्या समझे? सीधा अर्थ लिया उसने तो। सोचने लगी, 'माँ अपनी चाल और तेज कैसे करेगी?' उसकी उदासी और बढ गई।

उसकी माँ, थोडी देर के लिए ही सही, अपनी चाल तेज करने की सोच रही थी, पर पैर उसके हाँ नही भर रहे थे। दुविधा थी। पूरी अपने-आपको रोक न पाई। उसने माँ के सिर से ईंढौनी झपटली और कहा, 'एकबर भाई को ले तू।'

माँ नहीं-नहीं करती रही, पर उसने कान नहीं दिया। बाप ने तगारी भरी और छोरी के सिर पर रखदी। पैरों को साधती, अपने पूरे विश्वास के साथ, वह बडी फुर्ती से तगारिया ढोने लगी।

तगारी लिए चलते, गर्दन की रगे उसकी तनजातीं, पर चाल मे उसके कोई अन्तर नहीं था। उसकी चाल देख कर सेठ के मन पर एक अप्रत्याशित खुशी तैर उठी। उसकी ओर देखते उसने सहज भाव से पूछा, 'छोरी, कितने बरस की है-ए?'

'ग्यारह की,' उसने कहा और तगारी खाली कर तुरत चलदी।

सेठ ने कहा, 'कारीगर?'

'हाँ साव।'

'छोरी लगती टहनी-सी है पर छूटती तीर-सी है, यह मालूम होता तो माँ की जगह इसी को लगाता, इस हिसाब, माँ तो इसकी महगी पड रही है?'

'बालक का शरीर है साव, और काम करने का है कोड।'

'नहीं-नहीं, यह नहीं, मोटी बात है, पेट मे इसके पाप नहीं है, फुर्ती तो खैर है ही।'

लडकी इतने मे तगारी लिए फिर आ पहुँची।

उसने पाँच-सात तगारियाँ ही ढोई होगी। सेठ को किसी गाहक ने आवाज दी, वह हाट मे जाकर, अपने लेन-देन के चक्कर मे ऐसा खोया कि फिर शाम तक नहीं लौटा।

कारीगर ने जेब से बीडियो का बडल निकाला। एक बीडी छोरे की ओर फैंकी, 'ले गर्म हो ले', और वहीं बैठे एक फैंकी नीचे की ओर, 'दीनिया, तू भी उछाल धुवा हवा मे-ग्रह टली एक बार तो?'

दीनिया मुस्कराया और एक हल्की-सी मुस्कान उसकी बहू के होठो पर भी फूट आई।

पूरी के पल्ले तब भी कुछ नहीं पडा।

माँ ने उसे कहा, 'तगारी रखदे, घर जा दादी अकेली है।'

भाई को लिए वह घर की ओर चल पडी।

घर से थोडी दूर रही, सामने के नीम तले उसे कुछ लडकिया खेलती दीखीं। वह उनकी तरफ बढ गई।

एक साथिन बोली, 'आ पूरी खेल।'

'बहन, खेलू कैसे, गोदी मे भाई है न?'

'उतार दे इसे।'

'उतारा और इसने माटी खाई।'

'तो दिनभर लिए रहेगी?'

'रोज ही रहती हूँ लिए।'

'गोदी थकती नहीं?'

'थकती तो है।'

दूसरी ने कहा, 'माने तो उपाय बताऊँ?'

'बता, मानू क्यो नहीं?'

'नीचे बैठादे इसे, धूल फाकने लगे तो चट्टू दो चेप, एक इधर और एक उधर, यह तो क्या इसकी छाया मान जाएगी।'

तीसरी ने कहा, 'मार के आगे तो भूत भी सीधा होजाता है।'

'इसको क्या मारु बहन, यह तो यो ही मरा पडा है, देखती नहीं तुम इसे?' पूरी ने कहा।

'देखती क्यो नहीं?'

'तब?'

'तब यही कि खेलना चाहती ही नहीं तू।'

'कैसे खेलूँ तू ही बता?'

'अच्छा, अच्छा मत खेल।'

'तुम खेलो मैं देखती हूँ।'

'हाँ-हाँ देख।'

लड़किया खेलने लगीं और वह लगी देखने। नीम पर मजरिया फूट रही थीं-हवा मे

सुगन्ध फैंकती। उसने ऊपर देखा, हवा के साथ झूमतीं वे उसे खेलतीं मालूम पडती थीं। पत्ते और टहनिया भी साथ थे उनके। ऊपर खेल, नीचे खेल, बिना खेल केवल वही थी। एक बार तो जी मे आई उसके, 'उतार दू भाई को। भाई-बहन औरो के भी तो है, बैठे हैं न चुपचाप यहाँ, कभी-कभार झाक लूगी इधर भी। खेले कित्ते ही दिन होगए, खेललू दो घडी, सारी सहेलिया ही तो खेल रही हैं, सब निहोरा निकाल रही हैं। खेललू–खेललू कुछ देर तो?' उसका अग-अग मचल उठा खेलने को। 'उतार दू,' और उसने भाई की ओर देखा, फिर उसके सूखते चेहरे को, उसके उठते पेट को, उसके मरियल हाथ-पैरो को और उदासी ढोती उसकी आँखो को। उसकी चेतना पर भाई नाम का वह प्राणी उतर आया। चेतना उसकी करूणा और ममता से ढक गई। विचार आया, 'ज्यादा नहीं आध-पौन मुट्ठी धूल ही फाक गया यह तो इसकी तकलीफ का क्या ठिकाना है? न यह सो सकेगा सुख से और न मुझे ही सोने देगा।' अपने चाव को उसने रसोई मे घुसते कुत्ते की तरह खदेड दिया–दूर-दूर।

आधा घटा हो गया खडे-खडे। आँखे देखने मे उलझी थीं और मन उलझा था भाई मे। गोदी दुखने लगी। वह बदल ली उसने पर पैर उसके वहीं जमे रहे। सहसा दीपी दादी आ खडी हुई–लठिया टेकती। आँखो पर उसके काच चढे थे। कमर कुछ झुकी हुई और चेहरा झुर्रियों के जाल से ढका हुआ।

वह मुहल्ले मे सबसे अधिक बूढी है। पिछले वर्षों मे एक-एक कर कई तीर्थ हो आई है। गाँव में जब भी 'नरसी का माहेरा' और जम्मा-जागरण होते हैं, वह आँधी-मेह मे भी नहीं चूकती। मडप के कोने मे जगह नहीं मिली तो दस कदम दूर बैठ जाती है। कहती है, 'पास, नहीं, दूर ही सही, हवा मे आते सुर और सुगन्ध तो कोई रोक नहीं सकता।' धूप-छाया की उसे चिन्ता नहीं। जवानी में खूब खटी अब बुढापे में दो जून दलिया और फटे पर कपडा मिल जाते हैं, और क्या चाहिये?

एक हाथ से छज्जा बनाती वह बोली, 'छोरियो, चम्पा भी है यहाँ?'

'हाँ, दादी,' पास आकर चम्पा ही बोली।

'घर नहीं चलै बेटी?'

'क्यो दादी?'

'फूल निकालेगी, हारा धुखाएगी, घडीभर ऊखली पर बैठेगी और एक घडिया पानी का नहीं लाएगी?'

'सब कर लूगी दादी, नीम की छाया तो देख, छोटी ही पडी है अभी, कहे तो थोडी देर और खेल लू?'

'खेलले-खेलले।' और छोरी अपने झुड मे वापिस जा मिली।

डोकरी बैठ गई। पूरी की ओर ताकती बोली, 'तू नहीं खेलती बेटी?'

'दादी, गोदी उतारते ही भाई रेत खाने लगता है।'

'बेटी, ठीक कहती है तू, रेत लहू चूस लेती है, ध्यान रख।'

'ध्यान रखती हूँ, तब भी यह तो दादी, दिन-दिन तले बैठ रहा है।'

वह पूरी की ओर झाकी। उसकी आवाज मे निराशा थी और चेहरे पर उदासी।

'इस चिन्ता मे बेटी, तू मत सूख, दिन निकले यह भी कभी जोध-जवान हो जाएगा– मूछोंवाला। भाई तो बेटी, किसी भागवाली को ही मिलता है। खेल-कूद कर घर कभी देर से पहुँचेगी तू, तो माँ तेरी लाल-पीली होगी कि नहीं?'

'होगी दादी।'

'तब सबसे पहले तुम्हारी बाह यही बनेगा।' और इसके साथ ही वह आलाप उठी

मत दो म्हारी बाई नै गाळ
बाई म्हारी परदेसण, जी परदेसण
आ आज उडै परभात,
तडके उडज्यासी, जी उडज्यासी।

बूढे होठो पर नीम के नीचे करूणा फूट पडी, धीमी पर मीठी और हवा पर तैरती गाँव के आकाश मे फैल उठी। सारी लडकिया खेल छोड, उसके पास घिर आईं।

उसने कहा, 'बेटी भाई के बिना बहन का जीवन ही अधूरा है।'

'कैसे दादी?' पूरी ने पूछा।

'बेटी, भाई के बिना, बहन राखी किसके बाधे? तिलक किसके निकाले? उदासी घेर लेती है उसे, पर सबसे अधिक उदासी तो तब पकडती है उसे जब वह अपने बेटा-बेटी व्याहती है।'

'तब कैसे दादी?' कई छोरियो के होठो पर एक साथ उछला।

'अरी, इतना भी नहीं जानती, तब वह भाई को टीकने आती है–माहेरे के लिए, भाई ही न हो तो टीके किसको? कौन ओढाए उसे चीर (चुनडी)? कौन उसके परिवारवालो को दे कुछ? भीड से भरे आँगन मे प्यासी और आँसू भरी आँखे बहन की–भाई को ढूँढती हैं और भाई वहाँ है नही।' और इसके साथ ही उसके होठो पर बरबस फूट पडा

म्हारे तो नहीं छै जामण-जायो बीर,
मनै कुण अब चीर ओढावै ए माय?'
(माँ, मेरे सगा भाई नहीं तो चुनडी मुझे कौन ओढाएगा?)

पलभर के लिए वह सजल हो उठी। उसे देख लडकियो पर भी करूणा उतरने लगी। उनकी आँखे भी डबडबा आईं।

कुछ रूक वह कहने लगी, 'उसके एक-एक आँसू मे हजार-हजार बिच्छू काटे से भी ज्यादा दर्द होता है। ऐसे अवसर पर धर्म का भाई बनकर ही चुनडी तो उसे कोई न कोई ओढाता ही है, सिर उसका सूना नहीं रहता। ऐसा भाई बनने का वडा महातम है।'

'कैसे दादी?' जिज्ञासा कई होठो पर फिर उछलीं।

'सुनोगी?'

'हॉ।'

और सब वहीं बैठ गई–डोकरी की ओर टकटकी लगाए।

'छोटा रामबास नहीं सुना तुमने?' डोकरी के होठो पर फूटा।

'सुना है दादी।'

'गाँव के बाहर जोहड होता था कभी। हारा धुखाने का समय हो रहा था।इक्की-दुक्की औरते पानी भर-भर जा रही थीं। अन्त मे एक औरत और आई, घडा भर किनारे खडी हो गई–ईंढौनी हाथ में थामे। शाम होने को थी। वह इधर-उधर ताकने लगी–कोई घडा उठवादे तो? कोई नहीं दीखा उसे। देर हो रही थी। चिन्ता बढने लगी। घर से यहाँ तक आँसू डालती आई थी। आँखे बार-बार पोछती, पर वे मानती ही नहीं थी, बह उठतीं। अब भी वे पूरी तरह सूख न पाई थीं।'

'ऐसा क्यो दादी?' एक ने पूछा।

'पहले पूरी तरह सुनो, फिर पूछो।'

'माफ कर दादी, भूल हुई आगे कह।'

'हाँ तो अचानक उसे एक ऊँटसवार आता दीखा। वह ऊँट से उतरा। मुहरी पकडे जोहड की ओर बढने लगा–ऊँट को पानी पिलाने। उसने औरत को खड़े देखा। ऊँट उसने पानी पर छोड दिया और औरत के पास जा पहुँचा। उसने धीरे से कहा, 'बहन घडा उठवाऊँ?'

'बहन,' यह बोल सुनते ही आँखे उसकी फिर उमड पडीं। बह चलीं वे। उसकी तरफ देखता, आदमी अचम्भे मे पड गया–कुछ समझ नहीं पाया। हिरदै उसका भी पसीज उठा।

असमजस मे डूबते, उसने धीरे से पूछा, 'बहन रो क्यो रही हो? बताने मे कोई नुकसान न हो तो मैं भी जानू?'

'यो हीं,' उसने भरे गले और काँपते होठो से कहा। पलभर रूक, वह फिर बोली, 'घडा उठवादे, मैं जाऊँ।'

'घडा तो उठवादूगा, पर यो हीं तो बहन कोई रोता नहीं? तकलीफ जानना चाहता हूँ–बताओ तो?'

'क्या करेगे जानकर?'

'पार पडे तो मदद करता कुछ।'

वह कहने लगी, 'पडोस मे कोई अपने भाई को टीकने आई थी। उसके साथ औरते 'वीरा' (भाई को टीकने का गीत) गा रही थीं। तीन दिन बाद मेरी भी लडकी का विवाह है। मेरे न भाई और न माँ-बाप, मैं किसे टीकूगी? कौन तो मुझे चुनड़ी ओढाएगा, और कौन उतारेगा लडकी को पाटे से? उस गीत को याद कर-कर मेरी आँखे अपने आप उफन पडीं। मैं घडा लेकर घर से चल पडी। आँसू बन्द नहीं हुए। मैं चाहती हूँ, भूल जाऊँ, पर भूलना मेरे बस का नहीं।'

उसने उसे धीरज बधाते हुए कहा, 'बस इत्ती ही तो बात है बहन? रो मत, भाई तुम्हारा मैं और तुम मेरी धर्म की बहन–मेरी सगी बहन से भी बढकर। मेरा गाँव है जायल,जाट हूँ वहाँ का और नम्बरदार भी। तू आ वहाँ–मुझे टीकने के लिए–कल-परसो जब भी तुम्हे सहूलियत हो।'

औरत ने सोचा बेटियो, 'राहगीर है यह तो? मेरे आँसू देख दिलासा यो हीं बधादी इसने, दौडते को, ऐसे दहेज कौन देता है? इसलिए उसने सकते-सरमाते आधे-अधूरे मन, धीरे से कह दिया, 'ठीक है,' पर चौधरी को इससे सन्तोष नहीं हुआ। उसने जोर देकर फिर कहा, 'बहन तुम जिस तरह से बोली हो, उससे तो लगता है ससै का कीचड अभी तुम्हारा साफ नहीं हुआ, तुम तो मुझे भरोसा दिलाकर पक्का और पुख्ता कहो कि मैं आऊँगी और लालचुट आऊँगी, यह जोहड गवाह है, तुम मेरी बहन हो और मैं तुम्हारा भाई।'

यह सुन औरत की नाड-नाड नाच उठी। उसकी घूवटी आँखो पर चमक फूट आई। बेटियो, भाई मिल गया उसे। उसने कहा, 'मेरे भाई भरोसा रखो, मैं निश्चै ही आऊँगी–निश्चै ही।' और तभी घडा उसका उसने उठवा दिया। वह घर को रवाना हुई और रवाना हुआ वह भी।

अगले दिन वह पहुँच गई भाई को टीकने। आ गई टीक कर। भात भरने चौधरी आया अपने प्रेमियो और परिवारवालो के साथ। उसके पास खेतो की उगराई हुई एक बडी रकम थी। वह राज के खजाने मे जमा करवानी थी। उसने निश्चै कर लिया, रकम का इन्तजाम आज नहीं दो दिन ठैरकर कर लूगा। थैलिया उसने बहन के आगन मे खोलदीं। सारा गाँव भात और भाई को देखने उमड पडा। सारे गाँव को भोजन और कच्चे-बच्चे तक को ओढावनी। उस गाँव मे ही नहीं दूर-दूर तक इस तरह का भात नहीं भरा गया। झुड की झुड गाँव की औरतो के होठो पर उस भातवी के गीत उछल पडे, गाँव का आकाश गूँज उठा। उस भाई की याद मे आज भी ऐसे अवसरो पर जगह-जगह गाया जाता है, 'वीरा रे घडी इक तो बणज्या जायल रो जाट।' ऐसी बहनो का भात भरने बेटियो, आम आदनी की तो छोडो, डाकुओ तक का हिरदै भी पिघल जाता है। नान्हीं बाई का नाम नहीं सुना तुमने?'

एक दस वर्षीय छोरी ने कहा, 'सुना है दादी, पिछले साल सरजू चौधरी के घर 'व्यावला' हुआ नहीं था?'

'हाँ-हाँ हुआ था, याद आया, तू भी चला करती थी मेरे साथ। छोरियो, बाप उसका नरसी, फक्कड, माँ उसकी पहले ही चल बसी थी और भाई ससार मे था नहीं, तो भात नान्हीं बाई का कौन भरे? नरसी की बेटी नान्हीं इस चिन्ता मे रोती और दिन-दिन सूखती। आँसू उसके थमते ही नहीं थे। बाप के विश्वास दिलाने पर भाई उसने सावरिया को ही मान लिया। उसी को पुकारती, उसी को रटती, रह-रह उसी की राह देखती। भात का दिन आया, समय हो रहा था, चिन्ता उसकी जगल की आग की तरह बढ रही थी। पल-पल पहाड हो रहा था उसे। आँसू उसके थम नहीं रहे थे। सावरिया ठाकुर भी उतावला हुआ तो ऐसा हुआ बेटियो, कि राज-पाट और ठाठ-बाट सब बिसार, भागा बहन की तरफ–तीर की तरह। माहेरा मे माया का ढिग-ढेर लगा दिया उसने। कहते हैं वैसा भात आज तक कहीं नहीं भरा गया और अब भरा भी नहीं जाएगा। वह निहाल हो गई। धरती एक-एक हाथ ऊँची उठ गई। कथा उसकी आज भी घर-घर गाई जाती है।'

एक छोरी ने पूछा, 'बात यह सच्ची है दादी?'

'सच्ची नहीं तो, घुटनो पर गढी है मैंने? मीरा बाई का नाम नहीं सुना तुमने?'

'रोज ही सुनती हूँ दादी—मीरा के प्रभु गिरधर नागर।'

'उसकी बात नहीं चलती?'

'चलती है दादी।'

'बस वैसे ही नरसी हुए, नान्हीं बाई भी हुई। उनकी बात भी दुनिया की जबान पर उछलती है—गगामाई की तरह। कौन रोके उसे? अच्छा तो, घर चलू अब?'

'हम भी चलती हैं दादी।'

इन सभी लडकियो की सरल-सम धरती पर बहिन-भाई का प्यार जैसा आज हँसा, वैसा पहले कभी नहीं। अपने इन अबोध और असहाय भाई-बहनो को गोद मे भरने हाथ उनके मचल उठे। गोदी अपनी-अपनी भरी, और चल पडीं वे। चलते-चलते कितने ही चार होठ क्षणभर के लिए एक होगए—प्यार के सागर मे डूबते। कितने ही होठ अनायास गुनगुना उठे, 'बीरो म्हारो भाई ए माय, हूँ बीरै री बाई ए माय।'

पूरी क्यो रुकती, वह भी चलदी। चलते-चलते उसने भाई को गोदी से अलग कर बाहो पर उठा लिया। आँखे अपनी, उसकी आँखो मे रोपती कहने लगी, 'मानू, रमकर मैं कभी देरी से आऊँगी और माँ मुझे डाँटेगी तो तू कहेगा न? 'मत दो म्हारी बाई नै गाळ,' बोल, कहेगा न?'

लडका उसकी ओर देखने लगा—एकटक—कुछ समझने की कोशिश मे, पर आँखो पर तैरती उसकी अबोधता उसमे धुध पैदा कर रही थी।

'नहीं बोलेगा? अच्छा, मत बोल,' और उसके होठो पर स्वत ही फूट पडा 'हाँ-हाँ, तू जरूर कहेगा और तब माँ मुझे कुछ न कहेगी, गुस्सा उसका ठढा हो जायेगा।' अपने होठ उसने उसके सूखते-पपडाते होठों पर रख दिये। नग-धडग, सावला, रोगी और रेतचट्ट वह, उसके सपनो पर नाच उठा—एक समर्थ भाई की तरह। उसमे उसे एक ऐसा सौन्दर्य दिखाई दे रहा था जिसे न आभूषणो की आवश्यकता थी और न मासल सौष्ठव की। वह अपनी थकावट और भूख-प्यास सब भूल गई एक बार।

प्यार मे पगी, वह घर नजदीक लेने लगी।

दो

पूरी की भूख के मारे आँते सूख रही थीं। गोदी उसकी गरमाने लगी थी और टाँगे लगी थी थकने। आँते चाहती थी कुछ आहार, और टाँगे कुछ विश्राम।

वह सोच रही थी, 'रसोई तो अभी डेढ-दो घटे से पहले कहाँ ? जाते ही एक बार आधी-चौथाई रोटी मिल जाय तो आँतो का कुलबुलाना कुछ बन्द हो, पैर सीधे पडे, तो

काम जल्दी-जल्दी समेट लू।'

उसने भाई की ओर देखा, चेहरा उसका मुर्झाया हुआ और होठो की पपडी गाढी पडती। आँखो पर अटकी थी उसके भूख की मौन अभिव्यक्ति। विचार आया, 'अरे, मुझे मिले न मिले, क्या फर्क पडता है, इतना समय निकाला तो दो घटे और निकाल दूगी–किसी तरह। यह दिनभर का भूखा है, इसे कुछ न कुछ जरूर मिलना चाहिए।'

उसकी ओर देखती वह वेदना से भर उठी।

फिर उसे ध्यान आया, डेढ रोटी धरी थी डलिया मे, एक दादी ने खा ली है तब भी आधी तो मिले ही मिले। बहुत है इतनी तो, इसकी आँतो को तो एक बार, सहारा कुछ मिल ही जाएगा।

इस सकल्प पर तैरते-डूबते उसने घर मे प्रवेश किया।

आँगन को पार करती, ज्योही वह झोपडे के पास पहुँची, अवाक् रह गई। उसने देखा एक बूढा थाली पर बैठा, धीरे-धीरे रोटी खा रहा है। अकाल मे अधिक-मास की तरह लगा वह उसे। एक तरफ उसके दादी बैठी है। नाक तक का घूघट निकाल रखा है उसने। बूढे की ओर उसने टकटकी लगाकर देखा और देखा उसकी थाली की ओर भी। क्षणभर मे ही, उसे निश्चय हो गया कि भाई को अब आधी-चौथाई तो क्या कौर भी नहीं मिलेगा। सकल्प उसका, इतना जल्दी ही हवा मे विलीन हो जाएगा ऐसी आशा तो उसे स्वप्न मे भी न थी। अपनी भूख उसे लगी लम्बी होती, शक्ति घटती और भाई के कारण पीडा ऊँची आती।

भाई को पानी पिलाया उसने, और लोटा भर खुद ने भी उडेल लिया। पेट मे एक बार तो गोला-सा बन्ध गया–हल्का दर्द उपजाता। न प्यास बुझी, और न पानी ही स्वाद लगा।

दादी झोपडे के बाहर आगई। पूरी की ओर देखती कहने लगी, 'घूम-फिर आई बेटी?'

'हाँ।'

धीरे-धीरे बात करती वह उसे झोपडे के पीछे लेगई। फिर कहने लगी, 'बेटी बटाऊ आगया है कोई। सूरजिया के छोरे को अपनी पोती दे रखी है इसने। उसका घर तुम्हे मालूम ही है, मजूरी पर गया हुआ है?'

'हाँ।'

'अपना घर खुला देखकर आग्या यह, धक्का थोडे ही दू? बटाऊ भगवान् का रूप होता है बेटी, आगया तो सिर-माथे, खाने को रोटी और सोने को खाट तो देने ही पडेगे। सुबह तो यह जल्दी ही चल देगा। पीपे मे बाजरी पडी है अधकीलो, भिगो देती हूँ, मोठो की दाल भी रखी है दो-लप–खीचडा बन जाएगा। अब का काम तो बेटी, जैसे-तैसे निकल ही जाएगा, सुबह की अपने को चिन्ता नहीं।'

'पर बाजरी अब कब भीगेगी दादी?'

'भीग जाएगी बेटी नहीं-नहीं करते दिन अभी आधा-पहर तो है ही। तू इत्ते

मुरलीदादा के घर से या और कहीं से दो टोपसी छाछ ले आ। उसमे लोटा पानी, मुट्ठी आटा, चिबटी हल्दी और दो ककरी नमक पडा कि कढ्ढी तैयार। अपने को आम खाने कि पेड गिनने? उतावली-सी जा तू।

'दादी छाछ एक घर नहीं मिली तो दूसरा घर और घोकूगी, बाजरी खोटने भी दूसरे ही घर जाना होगा, इससे तो अच्छा है, रोटियाँ ही सेकले।'

'चाहती तो मै भी यही हूँ बेटी, पर कानी के ब्याह मे सौ जोखिम, घर मे आटा भी तो नहीं इतना? पाव-आटा उधार भी ले आऊँ तो भी काम कौनसा पार पड गया?'

'क्यो दादी?'

'साग के लिए चार पापड भी तो चाहिए? छौंक के लिए तेल की बूद भी तो नहीं, डिब्बे का पैंदा अभी सभाला है मैंने। पैसा पास मे नहीं, बाप तेरा आएगा अन्धेरा होने पर, फिर कब सामान आया, कब रसोई बनी, तू ही बता?'

'मिरच भी तो नहीं दादी।'

'तभी तो कहती हूँ छाछ ले आ तू।'

'ले दादी, थोडी देर भाई को सभाल तू मैं छलाग भरती, अभी लाऊँ छाछ।'

'बेटी, भाई को तो तू ही लेजा, इस बूढे ने अधमिट ही मुझे बतिया लिया इत्ते मे तो रेत यह दो बार फाक लेगा, और मैं फिर क्या कर लूगी, उगलियाँ तो मेरी पहले ही बेकार कर रखी है इसने। दिनभर रखा तो अध-घडी और रख बेटी।'

उसने भाई को उठाया और सिलवर का लोटा लिए चलदी।

कुछ दूर चलने पर वह सेठ रूपजी के मकान के पास से गुजरने लगी। फाटक की तरफ देखती पलभर वह रुक गई। सोचने लगी, 'काम यहीं बन जाए तो कितना अच्छा, ली छाछ और उन्हीं पैरो वापिस।' फाटक की अर्गला पर हाथ उसने रखा ही था, उसकी स्मृति पर सहसा कुछ ऐसा रेंग कि अर्गला उसने तुरत छोडदी। चेहरे पर उसके आक्रोश और वितृष्णा चमक उठे। वह जल्दी-जल्दी आगे बढ गई।

बात यह थी कि महीने-सवा महीने पहले, सुबह-सुबह ही दादी-पोती इस घर के पास से निकल रही थी। सेठानी फाटक पर खडी थी। इन्हे देखते ही आवाज दी, 'गगी बाई, सुनना जरा।'

गगी मुडी, पास आकर कहने लगी, 'फरमावो सेठानीसा?'

'आज तो थोडी तकलीफ दूगी।'

'थोडी क्यो ज्यादा दो, हाजिर हूँ।'

'छोरी का विवाह हो लिया, बारात विदा [illegible] आज चौथा दिन है। गलियारा इत्ते दिन से औंधे-माथे पडा है, पैर रखने को जी नहीं करता। नाइन से कहते-कहते जीभ दुखने लगी कान ही नहीं देती। मैंने तो कह दिया मत [illegible], बेटी जेठ के भरोसे तो जामी नहीं, तू नहीं तो तेरी बहन कोई और आएगी, पर तू अब मेरी पौरी पधारने की कृपा ही रखना। दादी-पोती बुहार-झाडकर गलियारा ढग का करदो, साग-पात और पूरिया दूगी, किया कहीं जाएगा नहीं, कभी और भी राजी करूगी।'

'घर की ही बात है, हम तो राजी ही हैं।'

और वे दोनो काम मे जुटगईं।

दादी दो भट्टियो से कोयले निकालने लगी–और पोती लगी गलियारा साफ करने। पूरी ने गलियारे की तरफ देखा। उसमे टूटे-फूटे सकोरों की ठीकरिया, बीडी, सिगरेटों के टोटे, पत्तलो के टूक, बिखरी चाय और पानो के पीप से पपडाई रेत, कई जगह मूखती उल्टियाँ और थीं दो जगह कुत्तो की बींठ भी। गलियारा घूरे की तरह लगा उसे।

दादी ने राख मे से बीन-बीन दो बट्ठल कोयले निकाले, दस तगारियाँ उजली रेत ला-ला भट्ठियाँ बराबर कीं। पूरी ने भरे पाँच बट्ठल कचरा-पट्टी के। एकेक कर उन्हें घूरे पर डाला उसने।

जब आने लगीं ये, सेठानी ने आलुओ के साग से पारी इनकी किनारो तक भरदी। सब्जी दो-ढाई कीलो से कम नहीं थी, तेलिया झोल तैर रहा था ऊपर। डोकरी बडी राजी हुई। उसने सोचा, साग की हाडी को कम से कम दो दिन तो आराम मिलेगा ही, आलू का अचार है–रोटियाँ चूर-चूर खाएँगे। सात-आठ पूरियाँ दीं, कुछ साबित, कुछ टूटी–एकदम सूखीं और कडीं। डोकरी कुछ न बोली, दिया सो ले लिया और चलदी। घर आकर सब्जी जब जीभ पर रखी तो वह उसे खट्टी और बडी बेस्वाद लगी। उसने उसे सूघा और नाक सिकोडते कहा, 'पूरी, साग तो बेटी, किसी काम का नहीं, बदबू आती है इसमे तो।'

'फिर तो हम मुफ्त मे ही पिटे दादी।'

'पिट गए तो पिट गए बेटी, टक्के की हडिया गई, कुतिया की जात पहचानी। आइन्दा पैर उधर सोच कर ही रखेगे और तो क्या करे, झगडा तो अब करने से रहे, ऐसा मालूम होता तो मैं लेती ही नहीं, फैंक इसे गली में, और पारी धो ले।'

पारी लेकर पूरी ने भी सूघा साग को। बडी खट्टी बदबू आ रही थी उसमे। वह गली मे एक किनारे डाल आई उसे। तभी एक कुत्ता आया, पलभर सूघा उसे, टाँग उठाई और धार देकर चलता बना। यहा तक किसी कौए ने भी उसमे चोच अपनी गीली करने का कष्ट नहीं उठाया।

डोकरी लोटा भरने आगन मे आई। पूरिया पडी थीं वहीं। एक टुकडा मानिया ने उठा लिया, उसे कितना कुतरा, कितना चबाया वह जाने, निगलने लगा, कौर अटक गया कठो मे। आँखे उसकी बाहर आने लगीं। सास आना मुश्किल हो गया। उलझने लगा, इतने मे डोकरी भीतर आ गई, और एकदम से चिल्लाई, 'अरे पूरी, छोरे के क्या हो गया, पूरी का टुकडा अटका लगता है,' लोटा उसके होठो से लगा दिया उसने। पानी का घूट भीतर गया किसी तरह, तब छोरे को सास आया, सास डोकरी को भी।

उसने कहा, 'बेटी, अधकीलो छाछ लाएगी कहीं से, घटाभर इन टुकडो को भिगोए रखेगी, तब कहीं ये खाने लायक होगे, इतना झपट कौन करे अपने? साग फैंका तो ये टुकडे भी फैंक। अभी छोरा जान गवा बैठता, तो मैं हाय कहाँ टटोलती? लोगो को क्या कहकर समझाती, अकल पर मेरी धूल नहीं फैंकते वे?'

यह सारी घटना इस समय पूरी की चेतना पर चढ आई थी, इसीलिए उसने हाथ

अपना अर्गला से हटा लिया था।

वह मुरलीदादा के यहाँ जा पहुँची। आवाज दी, 'दादीसा?'

पडिताइन रसोई से बाहर आई, उसकी तरफ देखती बोली, 'कौन पूरी?'

'हाँ।'

'बोल?'

'थोडी छाछ हो तो?'

'छाछ है तो सही बेटी, पर है पाव-डेढ पाव ही और है भी दो दिन की खट्टी।'

'कढ्ढी करनी है।'

'तो लेजा फिर, जाती-जाती एक काम तो कर जा।'

'बोलो।'

देरी तो नहीं हो रही?'

'नहीं।' इच्छा न होते हुए भी, होठ उसके धीरे से खुल पडे—अपने स्वभाववश।

'भाई को तो यहाँ छाया मे बैठादे चबूतरे पर, तू पीछे जाकर ढाण साफ करदे, दिनो से रेत और कचरा जमा हैं उसमे। यह ले बट्ठल ले जा।'

'भाई, यहाँ अकेला बैठा रेत खालेगा दादीसा, साथ ले लेती हूँ।'

रेत क्यो खा लेगा, फुलका दे देती हूँ इसे, यह खाएगा तब तक तो तू साफ ही कर लेगी।'

पडिताइन ने उसे एक फुलका दे दिया नरम-नरम और चुपडा हुआ। छोरे की आँखे मारे पसन्नता के चौडी हो उठीं। पूरी की सूखती पुष्करणी मे जैसे एकाएक जल भर गया हो। चेहरा उसका म्लान था, पर मन के पुण्डरीक पर उसे लगा क्षणभर के लिए जैसे बसन्त आ बैठा हो। उसके फलक पर अनायास ही नाच उठा, 'भूख के मारे आँते इसकी बैठ रही थीं, आधार मिल गया उन्हे, अच्छा हुआ।'

अपनी भूख वह भूल गई। बट्ठल उठाया और चली गई पीछे।

बट्ठल भर रही थी, तभी एक सिक्का मिला उसे—दो रूपये का था वह। उसे एक तरफ रख दिया उसने। एक-एक कर, तीन बट्ठल भरे उसने, और कचरा, बाहर आकर एक कटती बाड के सहारे-सहारे लगा दिया। सिक्का लिए, अपनी जगह फिर आ खडी हुई वह। फुलका भाई ने खा लिया था। चेहरे पर उसके सन्तोष झलक रहा था।

पंडिताइन छाछ डालने लगी, तभी पूरी ने कहा, 'दादीसा, यह सिक्का मिला है ठाण मे।'

'अरे कई रोज पहले मूर्ति के छोरे के पास था। ठाण मे बेरो की टोह मे, पाला बटोरते डाल वहाँ दिया और माँ उसकी खटिया खोजती रही। वहाँ वह कैसे मिलता? अच्छा हुआ बेटी मिल गया—खरी कमाई का था। ले एक फुलका और दू तुम्हे, खिला भाई को, यह तो शाम तक, रेत की तरफ आँख ही नही उठाएगा।'

भाई को गोद मे उठाया और फुलका पकडा दिया उसे। छाछ का लोटा उठाया और फुर्ती से चलदी वह। घर पहुँची तब तक फुलका भाई ने चबालिया था। भाई को दादी के

पास बिठा बाजरी ली और पडोसिन की ऊखली पर जा बैठी वह।

बूढी पडोसिन ने कहा, 'कूटने ही बैठ गई हो बेटी तो दो चोट मेरी बाजरी पर भी मारदे, दो मुट्ठी मुश्किल से होगी?'

'ला दादी, पहले तू, मैं बाद मे ही सही,' और हाथो को साधती धम-धम मूसल मारती ने बाजरी कूट उसे पकडादी।

अब सामने थी अपनी बाजरी—आधा-कीलो। दिन मे कुछ देर, कमठे पर तगारिया ढोई थीं, घटों लगातार भाई को गोद मे थामे रखा, अभी-अभी ठान साफ कर कचरे के तगारे डाले थे, पडोसिन की बाजरी कूटी, आँखो के आगे धुधलापन नाचते, कभी-कभी चकारे तैर जाते, देह उत्तर दे रही थी। उगलिया कडी कर, भुजाओं को कई बार दबाया उसने, हिम्मत किसी तरह बटोरी और अपनी बाजरी कूटने बैठ गई। चोट बडे ध्यान से लगा रही थी। सोचने लगी, चोट ऊखली की कोर पर पड गई और वह चिर गई थोडी भी कहीं तो लेने के देने पड जाएँगे। अपनी बाजरी किसी तरह कूटी उसने और घर पहुँच हारे के पास आ बैठी। खीचडा, कड्ढी तैयार किए। सोचा, इतने से क्या होगा, दो-चार रोटिया भी तो उतारनी पडेगी पर आटा घर मे पावभर से अधिक था नहीं। पतली-पतली तीन रोटिया और सेकीं उसने। आटा पूरा हुआ।

सबसे पहले डोकरी ने बटाऊ की आवभगत की। अधेरा पडते-पडते पूरी के माँ-बाप भी आगए। खटकर आए थे, भूख सता रही थी, अपना-अपना पेट उन्होने भी भरलिया। रह गई अब दादी-पोती दो, पर हडिया मे खीचडा अब बच गया था थोडा, अधिकतर खुरचन ही थी उसमे। आँतो पर नाचती भूख, रसोई पकाने की उतावल, और दिमाग पर तैरती दुविधा के अनवरत प्रहार से घिरी पूरी, हडिया मे डोई भी एक बार ही फिरा पाई, इसलिए खीचडा पैंदी मे लग गया। रोटी भी भाग्य से आधी ही बची थी और कड्ढी रह गई थी—दो-लप ही। दादी खाए या पोती, खुराक यह एक की ही थी।

वे दोनो साथ बैठ गईं। खाते-खाते डोकरी को कुछ याद हो आया, चौथाई रोटी उसने अलग रखदी।

'यह क्यो दादी?' पूरी ने पूछा।

'बेटी सुबह-सुबह ही वह कुतिया कू-कू करती पूछ हिलाएगी, पैरो पर लोटेगी तब उसे लठिया दिखाकर तो विदा नहीं करू, टुकडा ही डालू?'

'हाँ-हाँ दादी, रखले फिर तो?'

जितना मिला, उसी मे सन्तोष कर लिया उन्होने।

बटाऊ की खटिया बाहर बाखल मे लगादी। वह लेट गया।

डोकरी ने कहा, 'तुम बहन-भाई खटिया पर सो-लो, मैं अपनी गुदडी, आँगन मे डाल लेती हूँ।'

'नहीं दादी, तुम्हारी खटिया पर हम दोनो खुलकर नहीं सो पाएँगे, गुदडी पर हमीं सो लेगे।'

डोकरी ने बहुत समझाया पर वह नहीं मानी। फटी-पुरानी दो गुदडिया मिलाकर

आँगन मे ही चौडी करलीं। बहन-भाई उन पर लेट गए।

रात के दस बज रह थे। पूरी की आँखो पर नींद कब उतरी, उसे पता ही न चला। एक ओर उसके भाई लेटा था। वह नींद मे सरकता नगे आँगन पर चला गया, पूरी क्या करती, वह तो खुद ही, नींद के सीमाहीन सागर मे डूबी थी, अपनी सुध भी तो नहीं थी उसे।

डोकरी ने सोए-सोए ही कहा,'खुरचन' (खीचडे की) पानी माँग रही है, लोटा भर बेटी?'

कोई जवाब नहीं, अधमिट रुक, उसने फिर कहा, 'पूरी, सुना नहीं बेटी?'

उत्तर तब भी नहीं। मन के होठो पर उसके स्वत ही उछला, 'नींद फिर गई लगती है, फिरे ही, दिनभर की बेचारी थकी हुई थी ही, ऊपर से भूखी और। आँते कलेजा नोच रही थीं। सुबह भी पेट-भराई उसकी पूरी कहाँ हुई थी? कह रही थी, दादी, एक बार माँ की तरफ हो आऊँ, आकर थोडा और खा लूगी, रोटी रखी है। बाहर से आते ही, सीधा झोपडे मे ही घुसना चाहती थी, चेहरा देखते ही मैं समझ गई थी, आँते इसकी रोटी-रोटी चिल्ला रही हैं, पर देती क्या, बासी बचे न कुत्ता खाय, घर मे अगुलभर टुकडा भी तो नहीं था। प्यासी आँखो से देखती वह, दूसरी तरफ मुड गई। पेट धीरज से तो भरता नहीं, और मेरे पास सिवा इसके और था ही क्या?' मन पर धीरे-धीरे यह सब उछालती, घुटनो पर हाथ रखे वह उठी। पानी के घडे की ओर बढने लगी, तभी किसी ने आवाज दी, 'दीनिए की माँ?'

'कौन है?' वह किवाडी के पास जा खडी हुई।

'गुमानी हूँ मैं तो?'

'आओ मालकन, बडे भाग, कैसे दरसन दिए?'

'दरसन दिए अपनी गरज।'

'फरमावो?'

आँगन, और किवाडी से सटती दीवारे बिखर-बिखर रेत हो रहे हैं। होली पर लिपाई उनकी हुई नहीं, जेठानी गुजर गई थी तुम्हे मालूम ही है?'

'तब तो कैसे होती मालकन?'

'अब सोचा चैतिया दिन हैं, न लू और न धरती ही गरम, गारा डालदू तो दिवाली तक निश्चित हो जाऊँ?'

'डाललो, बोलो क्या करना है?'

'सूरज निकलते ही पूरी को भेज। वह लीपती चलेगी और गारा मैं पकडाती रहूँगी। रोटी वह वहीं खालेगी, साफ कहना, सुखी रहना, रूपए दो ही दूगी, ज्यादा मेरे पास हैं भी नहीं।'

'रूपए की क्या बात है, भेजदूगी मालकन।'

'भेजदूगी नहीं, मैं तुम्हारे भरोसे हूँ।'

बेफिकर रहो आप, भूल नहीं होगी।'

गई वह।

सुबह पाँच-सवा पाँच का समय था। सूरज निकलने मे अभी सवा-डेढ घटा बाकी था। पूरी नींद मे आकठ डूबी थी। मिठास उसका अनिर्वचनीय था। घटाभर और सो लेती तो नई ताजगी और नई ऊर्जा लिए उठती वह, और काम को फिर दिनभर पानी की तरह पीती रहती, पर भाग्य मे ऐसा था ही कहाँ? कृपण विधाता ने रोटी अधूरी लिखदी तो नींद भी पूरी क्यों लिखता?

डोकरी ने पूरी के पास जाकर सहज वाणी मे कहा, 'पूरी, उठजा बेटी,' पर पूरी इस समय चिन्ता और अभाव से मुक्त, ब्रह्मानन्द मे डूबी थी, डोकरी के कथन का उस पर कुछ असर न हुआ।

उसने उसके शिथिल पडे हाथ को झटकते हुए कहा, 'पूरी उठेगी नहीं?'

छोरी ने एकदम से आँखे खोलदीं। कुछ समझ न सकी। उसने देखा, दादी खडी है सामने। वह उठ बैठी, पूछा, 'आज अभी दादी? सूरज भगवान भी नहीं उठे अभी तो?'

'नहीं उठे बेटी, उनसे अपनी क्या होड? सुबह होते-होते तुम्हे गुमानी चौधरन के ‹ ॥ई पर पहुँचना है। वह रात गए आई थी, ज्यादा कहने लगी तो हाँ मैंने भरली बेटी। अब आध-घटा तुम्हे हाथ-मुँह से फारिग होने मे लग जाएगा, दो घडिये पानी के भी लाएगी, धीरे-सुस्ते दो तेरी माँ ले आएगी, उस बेचारी का अगूठा भी तो पक रहा है?'

पूरी समय पर जा पहुँची गुमानी के यहाँ। लोटा और बाटका साथ लिए थी वह। जाते ही उसे छाछ-रोटी का कलेवा मिलगया। खा-पीकर वह काम मे लग गई—मोर्चे के जवान की तरह। गोबर और मिट्टी मिला गारा था। पास मे एक हंडिया मे पानी रहता। आगे बढने से पहले वह अपने आगे के आँगन का सूखता मिजाज तर करती, फिर उस पर गारा लेसती। जख्म और झुर्रियाँ समेटता, बूढा और बुझता आँगन लगता था जैसे च्यवन की जूनी जर्जरित देह, नई तरूणाई पा फिर से हँसने लगी हो। उसके दुबले-पतले हाथो की चपलता देख गुमानी बडी खुश थी। सोचती, 'छोरी क्या है, मशीन भी मात है इसके आगे। लगते हैं हाथ इसके मक्खन पर दौड रहे हैं जैसे। स्वाद आ गया, रूपए मेरे उग आए।'

उसने उसे सामने नहीं, थुथका परोक्ष में डाला और मन ही मन कामना की, 'प्रभु, आयु इसकी लम्बी हो, और जीवन इसका गर्म हवा के झोकों से बचे।'

घुटनो से ऊपर तक की मोटी चड्डी और देह से सटा मटमैला-सा कोट, पौशाक उसकी यही थी। पूष की शीत लहर और जेठ की झुलसती आग मे भी केवल यही।

सूरज सिर पर आ लिया था। आँगन तो करीब-करीब पार कर लिया उसने। दीवारे दो बाकी थीं। देह उसकी पसीने से नहा उठी और होठो पर हल्की-हल्की पपडी पसरने लगी थी।

गुमानी ने पूछा, 'पूरी, प्यास लग गई होगी, कठ तो गीला कर लेती?'
'अब तो हाथभर आँगन और बचा है दादीसा, रोटी-पानी अब तो साथ ही लूगी।'
'तो तू जाने, एक हल्का-सा हाथ दुबारा भी तो मारेगी इस पर?'
'जरूर मारूगी, ध्यान है मुझे।'
आँगन पूरा कर, हाथ-मुँह धोए उसने पर पैर नहीं। सोचा, अभी धोऊँगी, और अभी-अभी वे गारे मे फिर सन जाएँगे, क्या फायदा इस धोने से? अब तो शाम को ही बात उनकी।
राबडी-रोटी और प्याज की सब्जी उसने बडे स्वाद के साथ खाए। इस तरह का जीभर भोजन, उसे दिनो बाद नसीब हुआ था। चौधरन ने भी बड़े प्यार और मनुहार के साथ उसे खिलाया पर उसे नहीं, उसके जी-तोड श्रम को समझो।
घटों उकडू बैठे-बैठे कमर उसकी अकडने लगी थी। रीढ पर दर्द उभर रहा था। सोचा, दो मिट कमर सीधा कर पाती तो कैसा? पर उसका यह मनोरथी बुद्बुद् बाझ की पुत्र कामना की तरह जिस पोखरी से उठा था, वह पुन उसी मे डूब गया। चौधरन के होठो पर आज्ञा के अकुर फूटे, उससे पहले ही वह काम पर आ लगी—तत्परता से।
चार बजते-बजते दीवारो की लिपाई भी उसने पूरी करदी, किसी तरह। अब थकान उसे घेरने लगी। कमर और कन्धे उसके जवाब देने लगे। घुटने सहज-सहज सीधे नहीं हो पा रहे थे। आँगन और दीवारो को अभी एक बार और लेसना बाकी था। क्षणभर के लिए उसने अस्ताचल की ओर भागते सूरज को देखा। उसे लगा, राह लम्बी, समय थोडा, साँझ होते-होते काम पार पडेगा नहीं। इससे अच्छा है अभी कहदू, 'आप हुकम दें दादीसा, तो अब घर चली जाऊँ, बचा हुआ काम सुबह-सुबह ही आकर पूरा करदूगी।' फिर सोचा, कहदेगी मुट्ठीभर काम को कल पर छोडेगी? फिर तो होठ ही नहीं खुलेगे मेरे।'
हाथ उसके चल रहे थे, दुविधा बढ रही थी और हार अपनी निष्ठा की उसे मजूर नहीं थी। अगले ही क्षण आत्मविश्वास उसका जागा—उसकी दुविधा के जाल को तिरोहित करता। विचार आया उसके, 'अरे पसेरीभर पीस लिया तो पावभर के लिए अब क्या रोना—क्यो घुटने टेक रही हो? इतनी देर मे प्राण तो पडने से रहे?' उसने सारा साहस बटोरा, और पिल पडी काम पर। लगन होगई बलवती और हाथो की गति पहले से अधिक तेज। घुटने छाती से सटाए अगुल-अगुल बढती आगन मे खिस्कती रही वह और इसी तरह पैर सम्हल-सम्हल रखती दीवारो को सवारती रही।
सूर्यास्त होते-होते काम तो उसने पूरा कर लिया पर शरीर उसे लगा, अब पडा, अब पडा। आँखों पर अन्धेरा उतरने लगा। मिनटभर बाएँ हाथ से कमर को दबाती रही। हाथ धोए, आँखे छिडकीं और एक लोटा पानी गले से उतारा, तब कहीं आँखों में कुछ चमक फूटी।
आते समय, चौधरन ने बाटका उसका साग से भर दिया। उसके पास खडी हो उगली अपनी मुँह मे डालती कहने लगी, 'पूरी, मैं बहू बनकर आई तब तेरे से मैं, कम से कम पाँच साल जरूर बडी थी, तब भी इतनी लिपाई मैंने, न कभी पीहर मे की और न यहाँ

सुसराल मे ही। जवान होगई तब भी एक साथ इतनी लिपाई नहीं की। दूसरी भी तो क्या करेगी कोई? तुम्हे जितना लखदाद दू थोडा।'

पूरी एक बार थकावट भूल गई, उसके बाल हृदय पर अप्रत्याशित उल्लास जाग उठा और ऑखो पर विजय श्री का तेज।

चौधरन ने उसे दो रूपये तो दिए ही, चालीस पैसे और। कहा, ' बेटी, इच्छा थी पूरा रूपया ही दू तुम्हे, पर इस समय कोथलिया मे इतना ही था। रामजी ने चाहा तो कभी और भी कुछ दूगी तुम्हे।'

'पैर अब घर पर ही धोऊँगी,' यह सोचती, वह घर चलदी।

जो कुछ पाया, वह दादी को सौंप दिया उसने । बात सारी उगलदी दादी के आगे।

भाई को गोदी मे लेती बोली, 'दादी, तुम्हे ज्यादा तकलीफ तो नहीं दी इसने?'

'बेटी, पूछ ही मत, रेत यह दो बार फाक गया—क्या करती? कुछ देर तो हाथ इसके बाँधे रखे मैंने, रोने लगा बुरी तरह, तो क्या करती, खोलने पडे। इसे तो तू ही रखे, तभी ठीक है, मेरे तो यह बिल्कुल बस का नहीं।'

'तू कहती तो साथ लेजाती, गारे के पास बैठा देती। गारा तो शायद ही खाता, खा भी लेता तो माटी से तो वह कम ही मार करता। अब कभी जाऊँगी दादी तो साथ लेती जाऊँगी।'

दादी-पोती ने साथ बैठकर खा लिया।

डोकरी ने कहा, 'तू बर्तनो के हाथ फेरले, मैं इत्ते राबडी राधलू।'

'अब राबडी कब रधेगी दादी?'

'घडीभर मुश्किल से लगेगी बेटी। गलने से ढककर रख दूगी झोपडे मे। सुबह बासी रोटी भी इसके साथ मालपुआ लगेगी। साथ मे दस-पाँच टुकडे प्याज के और पडजाएँ इसमे, तो तू स्वाद की मारी उगलिया चाटने लगेगी।'

'तब तो जरूर राँध दादी।'

डोकरी चूल्हे पर जा बैठी और पूरी बर्तनो पर।

हाथ-पैर धोकर पूरी ने कहा, 'अब सोजाऊँ दादी?'

'हाँ सोजा बेटी, दिनभर की थकी है तू।'

'कल की तरह, आज तो नहीं उठाएगी कच्ची नींद मे मुझे?'

'खूब छककर सो बेटी, आज नहीं उठाऊँगी।'

बडी खुश हुई वह पर उस बेचारी को क्या पता, कि दुर्दैव का बाज आज भी उसकी निद्रा कपोती पर घात लगाए, अपने शैतानी पजे चौडा करने मे अभी से पूर्वाभ्यास कर रहा है।

भाई को लिए वह अपनी खटिया पर सोगई—निश्चिन्त और निधडक। उसे पता ही न लगा, वह कब डूबी नींद के गहरे सागर मे?

तीन

चैत कृष्ण पक्ष। तिथि पचमी। आधी रात। हवा आभास मात्र। यदा-कदा कोई अति हल्का झोका स्पर्श कर भी जाता तो रूकता पलभर भी नहीं, फौरन अबाध आगे बढजाता–निर्मोही की तरह। आकाश पर कहीं-कहीं बादलो की मलमली परत तैर रही थी। चाँद के पथ मे वह कभी अवरोधक बन जाती और कभी हटती दूर चली जाती। रात का वह एकाकी यात्री उससे ढकता-निकलता, कभी उदास और कभी हँसता लगता, पर न उसकी चाल मे कहीं अन्तर था और न थी उसके साहस मे कोई कमी। स्फटिक की तरह स्पष्ट था कि न उसे सुविधा से मोह है और न असुविधा से भय। तभी तो धरती हँस रही थी रात मे भी, और आकाश झलमला रहा था–नीली छतरी के नीचे भी।

सारा गाँव सोया था, राग-द्वेष, अभाव और अधिकता से ऊपर उठकर। पशु-पाखी भी विश्राम के अधीन थे। चारो ओर नीरवता पसरी थी, कभी-कभार वह टूट भी जाती, जब कोई कुत्ता सहसा भौंक उठता या गधा रेंक जाता। पर गाँव के सोए गजराज पर न इस कूकरी भौं-भौं का और न गर्दभी चीं-पो का कहीं कोई असर था।

सहसा डोकरी को जाग आगई। आँखें खोलती-बन्द करती सोच रही थी, दो घूट पानी पी लू और पेडू भी कुछ हल्का कर लू।' उठते-उठते एक विचार उसके मस्तिष्क मे अचानक कौंधा, और तत्क्षण उसने सारी चेतना ढक ली उसकी। 'अरे, राबडी की हाडी झोपडे मे रखी थी, गलने से उसे ढकी कि नहीं? याद नहीं, लगता है शायद नहीं ढकी,' दुविधा नाच उठी उस पर। 'खुली है तो कसारिया पडगई होगी उसमे, छिपकलियों ने जूठ दिया होगा उसे, फिर वह किस काम की? बडी लगन से तो तैयार की, पर निर्धन के नसीब पर सात ताले, राबडी का पानी भी सुख से गले क्यो उतरजाय?'

वह तत्काल उठी। पानी-पेशाब सब भूल गई। सीधी झोपडे मे गई। अधकार वहाँ काजल की तरह गहराया हुआ था। वह, उकडू बैठ, झोपडे के गच पर हाथ फेरती आगे सरकने लगी। थूनी आगई पर उसे क्या मालूम कि गरीब के अन्धेरे पर भी दुर्भाग्य का पहरा है, आगे कोई विच्छू बैठा है मोर्चा सभाले। थूनी की जड पर, हाथ उसने रखा ही था कि बिच्छू ने अपने पूरे बल से, उसकी तर्जनी पर डक का प्रहार किया। दुर्जन का मनोरजन, दीन की आपत्ति–डोकरी तेजी से हाथ खींचती, कराह उठी, 'अरे बिच्छू लडगया।'

जाड भींचती वह वापिस सरकी और बाहर आगई। पूरी तक पहुँची, आँखो के आगे चिनगारिया छूटने लगीं। उसे झटकोरती बोली, ' बेटी, बिच्छू लडगया, अर-र्र मर रही हूँ–अरे जी निकल रहा है–पूरी?'

पूरी हडबडाती हुई उठ खडी हुई। सोते-सोते दादी ने ही तो कहा था, 'आज भले ही छककर सो, कोई नहीं जगाएगा?' और अब वही उठा रही है–आधी रात को? अपने आप में खोई वह, यह राज न समझ सकी और न सोच ही सकी।

कुछ सम्हलते हुए उसने कहा, 'क्या हुआ दादी–ठीक से बता?'

'अरे जी निकल रहा है–बिच्छू लडगया, बिच्छू। थोडा नमक डालकर, पानी गरम कर, जल्दी कर बेटी।'

वह तुरत खटिया से उतरी और कातर कठ से आवाज दी, 'बापू? बापू? दादी को बिच्छू लडगया।'

झोपडे के पीछे से दीनू आगया। पीछे-पीछे लगडाती हुई, उसकी बहू भी आ पहुँची।

दीनू ने माँ से पूछा, 'माँ बिच्छू आगन मे लडा?'

'अरे नहीं, झोपड़े मे।'

'झोपडे मे?'

'हाँ-हाँ, कह तो दिया–अरे जी निकल रहा है।'

'झोपडे मे इत्ती रात गए–क्या ले रही थी?'

'अरे याद आगया, राबड़ी की हाडी खुली है कि ढकी, सम्हालने गई थी।'

उसने सिर से अपना गमछा उतारा, और माँ की कलाई से कसकर बाध दिया उसे। बोला, 'कामडिए (पुजारी) को लाता हूँ, आजकल झाडा उसका अच्छा चलता है–पूरी तू इत्ते ढिबरी चास।'

डोकरी ने लडखडाती आवाज मे कहा, 'ढिबरी, बेटा पानी से थोडा ही चसेगी?'

'क्यो?'

'छ महीने हुए, गाँव को किरासीन के दरसन हुए।'

'दरसन कहाँ से होते, ढोल तो उठने से पहले ही बिक गए? अच्छा, छोड ढिबरी को, दिया ही चास।'

और लठिया लिए वह फुर्ती से निकल गया।

वहू ने एक पुरानी रजाई टटोली, उसमे से थोड़ी रूई निकाल बत्ती बनाई। अब थी तेल की समस्या। माँ-बेटी झोपडे की ओर बढीं। माँ ने एक-एक करके दो तीलिया जलाई, बेटी झट डिब्बा उठा लाई। छोकभर का तेल था उसमे–सुबह ही लिया था पचास-ग्राम। अब दिया और चाहिए?

माँ ने कहा, 'पूरी अब दिया कहाँ खोजू, किसी अन्धे कोने मे कहीं पडा भी होगा तो ऐन टैम मिलना मुश्किल?'

पूरी के दिमाग पर अभी जग लगना शुरू नहीं हुआ था, तुरत घूमा वह। हारे के पास रखी कडछी ला थमाई उसने माँ के हाथ मे। तेल सारा कडछी मे औंधा लिया गया। बत्ती जगी और प्रकाश बिखरा।

कडछी की डडी पकडे, झोपडे मे गई पूरी। बिच्छू को बडी सधी नजर से इधर-उधर देखा। नहीं दीखा वह। हाडी देखी, उघाडी थी वह, ढकनी रखदी उस पर। नमक लिया और वाहर आगई वह। हारे पर पानी गर्म करने लगी।

डोकरी ने कहा, 'वेटी, पानी मे दो किरची फिटकरी होती तो अच्छा होता, पर इत्ती रात गए, कहाँ तो फैलाएगी हाथ, और नींद तोडकर जल्दी से देगा भी कौन? रहने दे, नमक ही सही।'

'दादी, मगतू काका के ऊँट-गाडा है न? वह ऊँट को कई बार फिटकरी दिया करता है, दो मिनट ही नहीं लगेगे, अभी ले आती हूँ।'

'ना-ना रहने दे बेटी,' वाक्य पूरा भी नहीं हुआ था, वह डग तेजी से भरती निकल पडी।

'अरे, और नहीं तो मेरी जूती ही अटकाले पैरो मे, बिच्छू काटे का क्या भरोसा?' पर ये बोल उसके हवा पर तैरते सूने आकाश मे पूरे हुए-पूरी तक नहीं पहुँचे। वह आगे निकल चुकी थी।

'मगतू काका?' किवाडी पर खडी हो आवाज दी उसने।

'कौन है?' मगतू की माँ उठकर किवाडी पर आई।

'पूरी हूँ दादी।'

'बोल?'

'फिटकरी की किरची चाहिए, दादी को बिच्छू लडगया।'

'मगतू तो बेटी, गाडा लिए मजूरी पर गया है-दो दिन हुए। फिटकरी है, ठहर मैं देती हूँ।'

बाहर रखी एक हंडिया मे से चिकनी सुपारी जितना फिटकरी का टुकडा ले पूरी को थमा दिया उसने।

पूरी आगई। टुकडा थोडा कूट, गर्म होते पानी मे डाल दिया उसने। डोकरी ने तर्जनी डूबोदी पानी मे। इत्ते में दीनू भी आ पहुँचा-कामडिया को लिए।

कामडिया ने चींपटा लिया। डोकरी को पूछा, 'दादी बिच्छू का उलाहना कहाँ तक चढ आया है?'

'कन्धे तक।'

'फिकर न कर, अभी उतारता हूँ।'

पूरी की उत्सुकता बढ गई। वह एक तरफ खडी हो गई और करामात देखने लगी कामडिया की।

डोकरी के पूरे बाजू पर चींपिया झाडता वह पढने लगा

काला बिच्छू ककडवाला,
सोने का डक, रूपे का प्याला।
मैं क्या जानू विच्छू तेरी जात,
तू जन्म्या मावस की रात।
चढी को उतारो,
उतरती को मारो

ऐसे ही कुछ आगे। दो-ढाई मिनट तक वह पढता रहा और चींपटा पटकता रहा। फिर उसने डोकरी की कलाई पकडी, उसकी हथेली को आँगन पर दो-तीन बार थपथपाया, पूछा, 'दादी चोर का उलाहना, अब कहाँ तक?'

'कोहनी तक।'

'अच्छा,' और बोलने लगा वैसे ही–सोने का डक, रूपे का प्याला।

फिर थपथपाई हथेली–फिर वही सवाल।

डोकरी ने कहा, 'पहुँचे तक।'

'बस, अब डक की जलन है दादी, वह रहेगी, ज्यादा से ज्यादा दस-ग्यारह बजे तक। लगता है चोर धाकड नहीं था, अकाल का मारा दुबला ही था कोई। सुबह सवा-रूपए के बताशे बटवा देना टाबरो मे, सुन लिया दीनू?'

दीनू वहीं खडा था। 'सुन लिया गुरू म्हाराज,' कह दिया उसने।

'तो ला निकाल अगरबत्ती?'

दीनू ने बीडी और पेटी, सामने करदी। बीडी सुलगाई उसने और धुँए के छल्ले उडाता, रवाना हुआ वह।

पूरी ने यह सब बडे मनोयोग से देखा-सुना। वह सोचती रही कुछ देर, 'सोने का डक, रूपे का प्याला, बिच्छू के साथ क्या मेल है इसका? बता बिच्छू तेरी जात? बिच्छू कहीं जात बताता है? बोलता है वह? उतरती को मारो, कौन मारे? वह तो बिल मे भाग गया कहीं। उल्टा-सीधा क्या-क्या बक गया वह? क्या मैं भी ऐसे ही किसी का विष उतार सकती हूँ? करामात उसके बोलने मे थी या चींपटा पटकने मे? चींपटा चलाना–ठकठकाना तो मैं भी जानती हूँ। उसे लिए चूल्हे पर रोज ही तो बैठती हूँ। बोलना उसका कोई मुश्किल नहीं लगा, दो-चार बार मैं ध्यान से सुनू तो बोलने लगू। विष इसी ने उतारा है तब फिटकरी के पानी मे हाथ क्यो रखा दादी ने? अब भी तो दे रखा है। बीडी को उसने अगरबत्ती कैसे कहा–वह समझ नहीं सकी।' इसी भीतरी झगडे मे उलझी वह अपना कोई निणर्य न ले पाई। पर इतना उसमे अवश्य जाग गया कि बोलने-कहने से बिच्छू का जहर नहीं उतर सकता।

मानिया, जैसे सोया था सोया रहा, बाकी सारे डोकरी के इर्द-गिर्द चक्कर काटते रहे।

डोकरी के लिए चाय बनी। चीनी तो थी नहीं, गुड की दो डलिया छिपा रखी थी–एक हडिया मे। दूध और चाय जुटाने थे। पूरी अध-पाव दूध ले आई, और बाप लाया पचास-ग्राम चाय–तीन रूपए की।

धूप चमक उठी। पूरी ने आगन बुहारा, झोपडे मे गई और फूस निकालने लगी। रह-रह चौंकती, कहीं बिच्छू न बैठा हो? झाडू लगाया तो सही पर एक-एक पैर बढाया उसने फूक दे-दे कर ही।

पाँच-सात मिट्टी के भाडे और दो-चार खुले मुँह के डिब्बे उठा-उठा आगन मे रखे उसने। इनके पीछे झोपडे की जड से सटते, मिट्टी निकले बिल थे।

एक काला पुराना पीपा ज्योही उसने उठाया, उसके नीचे चोर की तरह दुबका बिच्छू दीखा उसे। पीपा उसने तुरत ज्यो का त्यो वहीं रख दिया उस पर। बाहर आई, उसके होठो पर साश्चर्य फूटा, 'दादी, बिच्छू मिल गया, माँ पीपे के नीचे बिच्छू?'

माँ आई–दाहिने हाथ मे अपनी फीडी जूती लिए, पूरी से कहा, 'उठा पीपा।'

पीपा ज्योही उठा, बिच्छू सरका–घबराया हुआ। जूती पडी तडन्, और बिच्छू वहीं ढेर। पूरी की तबीयत हरी होगई। उसे लगा झोपडे का जगत आतकवाद से जैसे अभय होगया हो।

उसके मन पर अनायास गूजा, 'उतरती को मारू,' क्या जूए मारेगा वह। मारा है दूढा जिसने और बिना मत्र बोले–बिना चींपटा पटके।

अभी तो सारे बिल उसने काम-चलाउ बूद दिए।

उसने माँ से कहा 'कल गच लीपती, सारे बिल भी लीप दूगी।'

राबडी पडी थी। पूरी सोच रही थी, 'रोटियाँ सिकते ही, राबडी के साथ सबड लेगे उन्हे।' ढकनी हटाकर देखा उसने। दो-चार कसारिया मरी थीं उसमे। हाडी दादी को दिखाई।

उसने कह दिया, 'बेटी, फैंकदे इसे, आधी रात तक खुली रही यह, क्या पता किसी छिपकली ने भी मुँह लगाया हो?' फैंकनी पडी राबडी। पूरी का जी बडा दुखा, इसलिए कि राबडी होते हुए भी रोटियाँ रूखी खानी पडेगी।

पूरी ने रोटियाँ सेकीं। एक-एक रोटी माँ-बाप ने खाई प्याज के साथ और बाकी पानी की घूट ले-लेकर। वे मजदूरी पर चले गए।

डोकरी ने चौथाई टुकडा मुश्किल से लिया। प्रसाद बहन-भाई ने भी पा लिया–बिल्कुल रूखा। एक रोटी बची थी। तवे पर रख, गलने से ढकदी उसे। बाहर आ बर्तन माजने लगी। एक विचार तैर उठा मन पर, 'माँ से तो सहज-सहज चला ही नहीं जाता, तगारी तब सहज कैसे ढोएगी वह? कुछ देर जाऊँ उधर, दो-चार घडी सहारा लगा आऊँ।' बर्तनो के जल्दी-जल्दी हाथ फेर, वह उठी।

हाथ धो दादी से पूछा, 'कैसे है दादी?'

'कैसे बताऊँ, पडी पीड है बेटी, पडी हूँ जी छिपाए?'

'तू तो कह रही थी दादी, जहर बहुत नीचे सरक आया है?'

'जहर कोई यो सरकता है बेटी? इत्ती रात को आया, नींद छोडी, तो सलाम सट्टे मिया को नाराज क्यो, उसको राजी रखने मैंने भी कह दिया। हाँ सरका है भाई।'

पूरी को अपने विचार पर भरोसा बन्धा, कुछ राज समझ मे आया उसके। उसकी ऊहापोह काफी-कुछ शान्त होगई।

'तू लेटी रह दादी, इत्ते मैं माँ की तरफ हो आती हूँ।' उसने दादी से पूछा।

'हाँ, हो आ–हो आ बेटी, दो जीव से तो है वह, अगूठा और बैरी होगया उसका। आफत भी तो अकेली नहीं आती, क्या उपाय?'

भाई को लिए, माँ की ओर चलदी वह।

कमठे पर चिनवाई कल ही होगई थी, छत पर फर्श पड गया था, थापिया लग रही थी। माँ को उसने थापी पर बैठे देखा, वह अधिक नहीं रूकी, चलदी।

भाई को गोदी मे ही झोकडी आने लगी थी।

रास्ते मे चार सहेलिया मिल गई। हरेक के पास रस्सी, कुल्हाडी और पानी का लोटा थे।

सब ने कहा, 'पूरी चार हम हैं, पाँचवीं तू होजा, पाँच मे परमेसर बसता है, लकडिया लेने चलें, जल्दी ही आजाएँगी।'

उसे याद आया, 'लकडिया तो घर पर बिल्कुल नहीं हैं।' उसने कहा, 'ठीक याद दिलाया पारो, चलूगी, रूको थोडा, आरही हूँ अभी।'

वह घर आई, दादी लेटी तो थी, पर नींद नहीं थी उस पर।

उसने पूछा, 'क्यो दादी ठीक है न?'

'कुछ जलन तो है बेटी पर वैसे ठीक है।'

'मानू को झपकी आरही है, सोएगा।'

'सुलादे मेरे साथ।'

'तू कहे तो दादी मैं लकडियो की भारी ले आऊँ, मुहल्ले की कई छोरिया जारही हैं।'

'हाँ ले आ, लकडिया तो चुकी ही समझ।'

भाई को सुलादिया। रस्सी, कुल्हाडी और पानी का लोटा लिए वह फुर्ती से चलदी।

वे मील-सवा मील चली गईं। दूर-दूर तक सूखे, अधसूखे फोगो की बहुतायत थी। खेजडिया अधिकतर नगी ही थीं। प्यासे सिणिये, और सूखती बूइया बुझते लग रहे थे। आकाश की ओर झाकते नगे टीबडे रूखापन अपना अलग ही बिखेर रहे थे। जिधर देखो धरती सारी, उदास, अलसाई और पीडा भोगती-सी लग रही थी।

पूरी ने कहा, 'बहनो, यहीं काट लेती हैं लकडिया, और आगे जाकर क्या लेगी?'

'हाँ-हाँ यहीं,' सहमति सबने एक साथ ही प्रकट करदी।

लोटे सबने, एक खींप की छाया मे रख दिए और लकडिया काटने मे जुट गईं। आधा घटा भी नहीं लगा होगा, सभी ने अपनी-अपनी भारी बाँधली और खींप की छाया मे जा बैठीं। पसीना सुखाने लगीं सब।

पूरी ने कहा, 'चैत का महीना है, बहनो, फोग कोई-कोई ही फूट रहा है और वह भी पूरा नहीं?'

एक साथिन बोली, 'पूरी, फोग बरखा बिना कैसे फूटते? दो साल होगए बून्द ही तो कहाँ पडी?'

दूसरी ने कहा, 'बरखा बिना फोग क्या, हम भी तो सूख रहे हैं बहन?'

पूरी ने कहा, ' अगले साल बरखा अच्छी हो इसके लिए सगुन हम आज ही करे तो?'

'अच्छा ही है, पर कैसे?' एक ने पूछा।

'पानी अपने पास है ही, कुछ पी ले, कुछ रखले। अपने आगे दो-दो बिलान का एक-एक खेत बनाले, छिडक कर कुछ तर करले उसे और उगलियो से जोतले?'

'जोतले-बिना अनाज ही?' एक ने टोका।

'मेरी जेब मे थोडे से बाजरी के दाने पडे हैं-परसो के।'

'तब तो पूरी सगुन बहुत ही बढिया हुए समझ,' सबने कहा।

एक लडकी ने कहा, 'खेत ही जोत रही हैं तो झोपडी भी होनी चाहिए उसमें।'

'हाँ-हाँ यह तो सब से पहले।'

'अरे घोचों की तो यहाँ कमी नहीं, अपने-अपने खेत मे एक-एक झोपडी खडी और करले।'

सबने ने कहा, 'अरे, फिर तो जमाना (सुकाल) हुआ ही समझो।'

सबने ऐसा ही किया। प्रसन्नता उतर आई सब पर।

पूरी ने कहा, 'इस खुशी मे फिर गीत नहीं गाओगी?'

'कौनसा गीत?'

'नित बरसो मेहा बागड मे?'

'अरे यह तो खूब अच्छी तरह से आता है हमें', और इसके साथ ही सबके स्वर एक साथ ही फूट उठे

नित बरसो मेहा बागड मे।
मोठ बाजरी बागड निपजै,
गोहूँ निपजै खादर मे।
नित बरसो मेहा बागड मे।।
टोड-टोडिया बागड निपजै
बैल्या निपजै खादर मे।
भेड-बाकरी बागड निपजै,
भैंस्या निपजै खादर मे।
नित बरसो मेहा बागड मे।।

वन की उदास और सुनसान स्थली का सूखता हृदय एक बार सरसता से भर गया। नीरस होती वनस्पति पर मिठास मडरा उठा। इनके गीत सुन आकाश नापतीं चिडियाँ पेडो पर आ बैठीं, चुप नहीं, इनका साथ देने। ये चिडियाँ घरो की, और वे घोसलो की–'आज उडै परभात,' दोनो ही उडनेवाली।

सारी लडकियाँ एक सुनहरी आशा से ढकगईं। उन्हे लगने लगा कि उनका यह गीतिया सन्देश, हवा की पीठ पर बैठ सावन के कानो तक जा पहुँचा है। इसलिए अबकी बार का सावन झडी लगा देगा बरखा की, और खेत हमारे मोती उगलेगे जी-भर।

मुस्कराती लडकियो ने अपनी-अपनी भारी उठाली और घरो को चलदीं।

पाँच बज रहे थे। डोकरी मानिया के लिए खटिया पर करवटे बदल रही थी। पडे-पडे देह उसकी दुखने लगी थी। 'शरीर कुछ खुल जाय,' सोचती वह कदम सम्हल-सम्हल कर रखती किवाडी के पास आ खडी हुई। सूरज की तरफ देखा उसने। मन पर उसके उभरा ही था, 'अभी तक नहीं आई, देर करदी,' और तभी वह आती दिखाई पडी।

पास आते ही उसने कहा, 'बेटी ऊमर तेरी लम्बी है, याद कर ही रही थी, कि तू दिख गई ले आई भारी?'

'हाँ, दादी,' और भारी उसने, आँगन मे डालदी–एक ओर।

'कहाँ तक चली गई थी बेटी?'

गर्दन को दाएँ-बाएँ करते उसने कहा, 'पीपली धोरे से कुछ आगे तक।'

'तब डेढ कोस का आना-जाना तो हो ही गया समझ। सिर पर पनरै-सोलै कीलो भार, थकी तो खैर है ही, भूख भी लगगई होगी?'

अपने मन की सुन, दादी की ओर उसने बडी गहरी आत्मीयता से देखा। अपनी आँतो की आवाज उसके पपडाते होठो पर सहज में ही उछल पडी, 'भूख की तो दादी पूछ ही मत, आँते सूख रही हैं।'

चोट सीधी लगी, डोकरी के मर्म-स्थल पर। क्षणभर के लिए सारी चेतना उसकी आहत हो उठी। उसके मन पर उभरा, 'काश, कोई दूध का गिलास होता इस समय घर मे तो अभी उडेल देती मैं इसकी सूखती आँतो पर, पर ऐसा भाग्य कहाँ? छाछ भी सुलभ नहीं।' करूणा और ममता उस पर छाई रहीं।

उसने धीरे से कहा, 'एक रोटी तो तू छोड नहीं गई थी बेटी?'

'रख तो गई थी दादी तवे पर।'

'तो पसीना थोडा सुखाले, है वह तो आँतो को दे, साँझ को तो फिर ताजी बनेगी ही?'

उसने आँखे छिडकीं, मुँह धोया, और लोटा लिए झोपडे मे आ पहुँची। तवे को सम्हाला, न उस पर गलना और न रोटी, उदासी के सिवा उसपर कुछ नहीं था। यह क्या? आँखे उसकी फटी-सी रह गईं। वह कुछ भी तो न समझ सकी, निराशा ढकने लगी उसे। वह सजग आँखो से इधर-उधर देखने लगी। एक भाडे के पीछे चार अगुल का एक टुकडा दीखा उसे। वह रेत मे सना थोडा कुतरा हुआ था। उठा लिया उसने, सोच लिया, रोटी चूहो ने ही सरकाई है। तब तो बाकी रोटी भी यहीं मिल जानी चाहिए। झाड-पोछ कर खालूगी। लालसा प्रवल हो उठी। भाडे और डिब्बे सरका-सरका देखने लगी। उसने देखा उसके बूदे हुए बिल फिर सजीव हो उठे हैं। सब पर मिट्टी और ककर ऊपर आए हुए हैं। उसे लगा चूहो ने वदला लिया है उमसे। बिल उनके आज ही बन्द किए थे और आज ही चमत्कार दिखा दिया उन्होने? झोपडे का एक-एक छोर आँखो से निकाल लिया उसने। गलना मिल गया, पर रोटी के दर्शन नहीं हुए। बडा गुस्सा आया उसे चूहो पर। अव तो विल इनके पूरी तरह ही वन्द करूगी–निश्चय कर लिया उसने। जी करता था, 'विलो को उखाड, रोटी निकाल लू। आधी भी हाथ लग गई तो पानी तो स्वाद लगेगा पर कव कुआ खुदा और कव पानी हाथ लगा?'

सर्वस्व हारी-सी वह झोपडे से बाहर निकली। उसे लगा पैरो मे उसके जान कम बची है और पेट मे जगह कम। उसे ध्यान आया, सुवह भाडे सरका-सरका विच्छू खोज रही थी, मिल गया वह, अव भाडे खिसका-खिसका रोटी खोजी, नहीं मिली वह। विच्छू आसान, रोटी मुश्किल। अपने अभाव और अभाग पर दुख से भी आक्रोश अधिक हुआ उसे। क्या करती उवल कर रह गई। पानी का लोटा पेट मे उडेल लिया उसने। प्राणो की आग पानी से बुझाली। यही अभ्यास है उसे अव तक इसी पर पली है वह।

दादी ने पूछा, 'जीमली बेटी?'

पूरी ने एक ही वाक्य मे सारी कथा कहदी।

बूढे और दुखियारे होठो पर अनायास उछल पडा, 'रामजी, नसीब पर न मालूम कितनी मोटी सिला लगी है, कभी कुछ खिसकेगी कि नहीं?'

एक लम्बी सास लेती वह मौन होगई।

दिनभर के श्रम से सूर्य थक रहा था। आराम करने की चिन्ता मे वह पश्चिमी क्षितिज की ओर बडी तेजी से भागा जा रहा था। चिन्ता पूरी को भी कम नहीं थी पर आराम की नहीं–पावभर छाछ जुटाने की। वह मिलेगी कि नहीं? लोटा लिए वह निकल पड़ी।

पहले घर मे उसे सूखा उत्तर ही नहीं मिला, झिडकी भी मिली, 'आए दिन आ खडी होती हो, नदी बह रही है यहाँ? पडोसियो को झुगले-टोपी, घर के छोरे नगे, यहाँ तो खुद का काम चलना भी मुश्किल हो रहा है?'

भूख की तरह ही डाँट और झिडकी सहने का भी अभ्यास है उसे। वह आगे की ओर चल पडी। आशा की एक हल्की-सी किरण कौंधी उस पर। अन्धे की दिशा मुँह करले उधर ही–वह गुमानी के घर जा पहुँची। काम बन गया, छाछ मिल गई उसे।

घर आकर उसने हारे पर कढ्ढी चढाई।

दादी ने कहा, 'ला बेटी, कडछी उसमे मैं हिलाऊँ, तू इत्ते रोटियाँ सेकले।'

वह चूल्हे पर जा बैठी। लकडियाँ अधगीली थीं। वे धुवा उगलने लगीं। तवा चढा दिया। वह फूक पर फूक मारने लगी। झोपडा धुएँ से भर गया। आँखे बहने लगी। नाक भी पीछे क्यो रहता? दम घुटने लगा। वह रिसियाई-सी उठी। मुँह पोछती, झोपडे के पीछे से थोडा फूस नोच लाई। चूल्हे मे दिया, फूक दी, फूस धग्-धग् करता एकसाथ जल उठा, मिनट भी नहीं लगा, राख होगया वह। धुवा फिर ढकने लगा चूल्हे और झोपडे को। साफ-साफ न रोटी दीखे और न तवा। हाथ, मन और अभ्यास की सूझ पर ही काम कर रहे थे। फूक मारती का, सिर खाली होता लग रहा था। सोच रही थी, ' दो घटे पहले लकडियाँ काटी थीं, वे भी इस तरह बदला लेंगी–मेरी आँखे निचोएँगी, मुझे पता नही था।' उसके जी मे आया, पानी का लोटा भर औंधा करदू चूल्हे पर। रह-रह थोडा फूस लाती और चूल्हे के मुँह मे दे देती। जैसे-तैसे रोटियाँ सेक, बाहर आगई वह।

दो-चार गहरे सास लिए, आँखो को छिडका, आधा लोटा पानी पीया, सिर तब कहीं जगह पर आया।

साँझ होते-होते माँ-बाप आगए। सबने भोजन कर लिया। बाप ने कहा, ' पूरी सुबह थोडा दिन निकलने पर सेठ के चलना है। पीपा, डिब्बा और थैला ले-लेना–हिसाब करके, सामान लाना है?'

'ठीक।'

बर्तन मलकर, अपनी खटिया पर चली गई वह। नींद मे डूब, एक बार सब कुछ भूल गई। वह।

चार

कुकुम उछालती उषा पूर्वी क्षितिज से निकल पडी। उसी का अनुकरण करती मानो, गगी और पूरी भी तगारियाँ सिर पर उठाए अपनी यात्रा पर चल पडीं। किसी लक्ष्मी-पुत्र के घर वे दो ठान लीपेगी। इस बीच बहू लीपेगी घर का आँगन।

लगभग डेढ घटा वे एक-सी खटीं। काम पूरा हुआ। घर की मालकिन ने गगी को एक तो पकडा दिया रूपया, कुल्हड़ उसका भर दिया खट्टी छाछ से और उसकी पारी मे डालदी पापडो की कुछ बासी सब्जी। अपने हक पर गगी थोडा-सा भी जोर देती तो रूपया न सही, अठन्नी तो कम से कम उसे और मिल ही जाती पर यह उसके स्वभाव मे ही तो नहीं था।

सहसा आँखे उसकी सूरज की ओर उठीं। उसे लगा, सूरज आधा-पहर अन्दाज तो ऊपर चढ ही आया।

उसने पूरी से कहा, 'बेटी, बाप तेरा घर बाट देख रहा होगा, डग जल्दी भर,' और इसके साथ ही चाल उन्होने तेज करदी। राह मे लूनी नायकिन अपने घर के आगे पालथी मारे बैठी थी। दाहिनी कुहनी उसकी टिकी थी जाघ पर और ठुड्डी उसी हथेली पर। चेहरे से उसके उदासी टपक रही थी। उसके पास से निकलती गगी ने सहज-सहज ही उसे पूछ लिया, 'बहन क्या सोच रही हो इतना गहरा?'

'सोच रही हूँ कब मरू और कब छूटे इस झझट से पिंड मेरा?' कुछ झुझलाती वह बोली।

'कौन से झझट से?'

'एक हो तो बताऊँ?'

'एक ही क्यो, तीसो दिन के साथ ही बतादे।'

'तो फिर खडी क्यो है बैठ दो मिट, बताऊँ—खडी लकडी तो छेद निकले नहीं?'

बैठ गई दादी-पोती।

वह कहने लगी, 'रात मे हम तो बाहर सोए थे। दो बिल्लियाँ झोपड़े मे उतर आईं। अन्दर जाकर वे लडीं या किसी चूहे पर झपटीं, पता नहीं। दस-बारह भाडे थे—एक-दूसरे पर रखे, सारे फूट गए, साबित केवल दो बचे हैं। दो कुल्हडो मे नमक-मिरच थे, वे गच चाट रहे थे। एक चाडे मे दो-टैम टल जाएँ इतना-सा आटा था। चाडा फूट गया। आटा सारा बिखर गया। लप-दो लप चीनी थी आधी गई रेत मे और आधी राख मे। क्या तो खाएँ और क्या पकाएँ? ढाई-तीन घडी हो गई दादा-पोता गए हैं आटा लाने, अभी तक आए नहीं, बाट देख रही हूँ।'

'बडा नुक्सान हुआ, कुछ नहीं बचा खाने-पीने को?'

'बचा है एक शीशी मे पाव-डेढ पाव किरासीन। जी मे आता है, झोपडे पर डाल उसे, तीली दिखादू। सदा के लिए छुट्टी मिले—रोज-रोज के झझट से।'

'ना-ना, ऐसी जबान मत निकाल, जूओ के डर से घाघरा थोडे ही फैंका जाता है? तुम्हे

अच्छी तरह मालूम है कि दो साल हुए गाँव मे तिनका भी नहीं फूटा, और दो साल हमने पहले निकाल दिए बिना फूस चढाए, चार साल मे झोपडा नगा नहीं होगा तो क्या होगा? दुनिया को देखकर जीना है बहन। ऐसा एक तुम्हारा झोपडा ही तो नहीं? आँख पसार कर देख, दो-चार को छोड सारे ही एक हाट के हीरे, ऐसी ही बहन और ऐसे ही बीरे, सब एक से हैं। इसी बीमारी से मैं भी कम परेशान नहीं। झोपडे पर कभी खींप,कभी काँटे चढवाती रहती हूँ तब भी कभी-कभार कुत्ता-बिल्ली कुछ न कुछ उजाड कर ही देते हैं। तू और नहीं तो दो-चार खींपे लाकर ही लगवा, इत्ते बेटे-बहू आजाएँगे।'

'कुछ न कुछ करना ही पडेगा।'

'कड्डी करे तो छाछ ले-ने कुछ।'

'तुम्हे भी तो चाहिए?'

'पीनी थोडे ही है, कड्डी ही तो करनी है, आधी से तू करले, आधी से हम कर लेगे।'

'तो डालदे फिर।'

आधी छाछ डाल, वे रवाना हुई।

दीनू पूरी की प्रतीक्षा मे ही था। आते ही पूरी, पीपा, थैला और डिब्बा लिए बाप के साथ चलदी। बालजी के यहाँ जा पहुँचे वे। सेठ हाट मे ही बैठा था।

देखते ही बोला, 'आ दीनू?'

'आया साब,' हाथ जोडते हुए उसने कहा।

'बोल?'

'बोलना यही है, हिसाब कर लेते?'

हिसाब मैं उगलियो पर रखता हूँ। कुल पौने-दो सौ रूपए हैं, एक सौ पाँच तेरे और सत्तर तेरी वहू के। दो सौ रूपये का सामान गया हुआ है तुम्हारे नाम, पच्चीस ब्याज के, इस तरह पचास रूपए मेरे निकलते हैं तुममे।'

'मेरी मजूरी किस हिसाब से भरी आपने।'

'पन्द्रह रूपए के हिसाब से।'

'कम है सेठ-साब, बीस तो गाँव में आम मजूरी है?'

'गाँव मे कितनी है छोड इसे। तू मेरे यहाँ चार चक्कर काटकर गया था या नहीं, यह बता?'

'गया था।'

'इस बीच तेरे कितें ही भाई थूक सुखाते पन्द्रह के लिए कह-कह गए थे, कहे तो नाम बतादू उनके?'

'नही-नही साब, आप कौनसा झूठ बोलते हैं?'

'उनमे से किसी को भी नहीं लगाया मैंने, तुम्हे लगाया, अब तू ही बता-पन्द्रह भरू या बीस? तेरे मुह ही सरस्वती बोलती है? तू ही कह दे।'

'चलो आपने किया वह ठीक है, मेरी छोडो, घरवाली के कित्ते भरे?'

'दस।'

'बारह तो साब गोबर लीपनेवाली ही लाती हैं। दस बजे निकलती हैं और छ बजते ही मुँह घर की ओर कर लेती हैं। हम तो खटते ही दो घटे ज्यादा है, आप ही देखले, दस तो बहुत कम हैं?'

'कह दिया तुमने, या और भी कहना है कुछ?'

'और तो क्या कहूँ?'

'तो मैं कहूँ अब?'

'कहदो साब।'

'बुरा मत मानना, घर-विध की बात है, तेरे घरवाली सच पूछो तो आठ मे ही महगी है। पेट से है बेचारी, कदम गिन-गिन रखती है, उसका दोष भी नहीं।' छोरी की ओर उगली करते, उसने पूछा, 'यह छोरी तेरी ही है न?'

'हाँ।'

'क्या नाम है इसका?'

'पूरी।'

'दीनू, इसे मैं बारह क्या, पन्द्रह देता तो भी कम थे। मुट्टीभर हड्डियाँ हैं इसकी, सिर पर तगारी लिए चलती है जब, हवा से बात करती है। बौपारी हूँ, भेडे नहीं चराता, चाल से परखता हूँ। तेरी बहू को तो मैंने तेरे लिहाज से लगाली थी, वैसे उसमे दमखमवाली कोई बात नही थी।'

मार और प्यार के जाल मे उलझे दीनू ने कहा, ' ठीक है साब, मेहरबानी की आपने, पडे हैं आपकी छाया मे। मेरे मे अब पचास रूपए निकलते हैं आपके ?'

'हाँ?'

'चालीस का तो आप सामान देदे मुझे और दस देदे नकद। सौ रूपए होजाएँगे आपके–दो महीनो के लिए सडक पर जा रहा हूँ।'

'कहाँ?'

'बजरगधाम।'

'यह रहा सात कोस पर–हाथ पहुँचे जित्ती दूर। बडी सडक से मिलाते होगे उसे?'

'हाँ।'

'जा अकेले ही रहे हो?'

'नहीं साब, डेरा सारे घर का ही उधर समझो।'

'बडा अच्छा सोचा, अकेले जाता तो शरीर तुम्हारा रहता उधर और मन रहता इधर, दुविधा मे सुख कहाँ था? ककर बिछाओगे वहाँ?'

'अभी तो मिट्टी डालने का काम ही है वहाँ।'

'कुछ ही हो रे, सब ठीक है, आदमी की नीयत फलती है सब जगह।'

'नीयत अभी तो ठीक ही है साव, हाथ-पग नीरोग रखे भगवान ने तो आते ही, पैसे आपके व्याज समेत घर आकर गिनूगा।'

पूरी दस किलो गेहूँ, थोडा तेल और कुछ मिर्च-मसाला लिए दूकान से निकली ही थी,

तभी दीनू ने पूछ लिया, 'पूरी अब-अब का आटा तो होगा घर मे?'

'आटा तो चुटकीभर भी नहीं है बापू।'

'तो चल चक्की चले फिर, दो किलो आटा दिलादू, तू रोटिया सेक तब तक मैं एक काम हो आता हूँ।'

सामान लिए पूरी घर आगई और चूल्हे पर आ बैठी। लकडियो की तरफ देख कर सकपका गई। पाँच-सात छाणे कबाडे इधर-उधर से। काम निकाला किसी तरह। आँखे तो तब भी बहे बिना नहीं मानीं।

दीनू आगया, घटेभर बाद।

माँ ने पूछा, 'कहाँ रह गया था।'

'गोपी चौधरी के यहाँ गया था।'

'क्यो?'

'गाडा लेकर, उनके खेत तक जाना है।'

'वापस?'

'आधी-पौनी पहर तो लग ही जाएगी-समझले।'

'कुछ देगा ही या खेत मे ही उतारेगा पसीना?'

'देता, उससे ज्यादा तो दे दिया ही समझ उसने।'

'कैसे?'

माँ के पास बैठ गया वह, कहने लगा, 'कल कमठे पर कारीगर ने सीध दी थी कि गोपी चौधरी चाहे तो तुम्हे पास ही कहीं लगवा सकता है। खा-पी, रात को मैं उसके यहाँ गया। राम-रमी करके बैठगया, पूछा, 'क्यो रे,' मैंने कहा, 'माई-बाप, घर मे तो है पेट-से, माँ है बूढी, छोरा है बीमार, आगे-पीछे एक छोरी है, सुबह-शाम वह चूल्हे-चाकी मे उलझी रहती है, फिर दो जगह और कहीं भी खटती है, इससे ज्यादा उसके वश का भी नहीं। अकेला आदमी हूँ। मजूरी गाँव मे दिखती नहीं। दो महीने घर बैठकर खाऊँ, इतनी गुजाइस नहीं, दूर चला जाऊँ तो हारी-बीमारी, कोई सम्हालनेवाला नहीं, अगले दो महीने किसी तरह निकल जाय तो निहाल होजाऊँ। आपके हाथ लम्बे हैं, उगली सीध करदे कहीं, तो गरीब का भला हो जाय।' बोले, 'सेरासर से बजरगधाम तक सडक कल से ही शुरू हुई है, फुट-फुट ऊँची रेत पड रही है, ककर-पत्थर तो उसपर अभी नहीं, बाद मे गिरेगे कभी। कर्ता-धर्ता वहाँ मेरा भानजा ही है, तू भी पहुँच जा वहाँ—अपने परिवार को लेकर। सिर घुसेडने को सरकिया मिल जाएँगी, पानी की वहाँ कमी नहीं? जगल का पेट है, ईधन का पैसा तेरा एक भी लगे नहीं, और क्या चाहिए तुम्हे? खा-पीकर पन्द्रह-बीस तो रोज बचा ही लोगे, कहे तो रूक्का लिखदू अभी?' मैंने कहा, 'बडी मेहरबानी होगी।' और उसी समय रूक्का लिख दिया उन्होने।

'रूक्का लिखा लिया, अच्छा किया दीनू। पहर-सवा पहर का रास्ता है, राजी-राजी चलेगे रे, न किसी का लेना और न किसी का देना, दो महीने आराम से काट लेगे, हाँ एक बात तो बता?'

'वोल?'

'खेत मे इस समय क्या रखा है रे? क्या करवाएगा चौधरी वहाँ?'

'खेत मे एक झोपडा नहीं होता था—बहुत पुराना?'

'हाँ, होता था।'

'वह ढह गया, लकडियाँ उसकी कोई लेजाएगा, या रात-बिरात गडरिए फूक देंगे, इसलिए गाडे पर ढग की लकडियाँ वीन-बीन लानी हैं।'

'तू कहे तो पूरी को भी भेजदू साथ? गाडी मे छाजले का क्या भार, चढी जाएगी, चढी आएगी। झोपडे का पेट है, एक भरौटी यह भी कर लाएगी। अपना चूल्हा भी दो टैम आसानी से जल जाएगा, झोपडा तो नहीं भरेगा धुएँ से?'

'मना कौन करता है, भेजदे।'

पूरी को बुलाकर, डोकरी ने कहदिया, 'दो दिन से तू गीली लकडियाँ जलाती है, बापू के साथ जा, पैदल नहीं गाडे पर, एक भरौटी तू ही करला—सूखी लकडियो की।'

धुएँ की पीडा, उसकी चेतना पर अभी ज्यो की त्यो जमी थी, इस समय दादी की यह सलाह, अन्धेरे मे लालटेन की तरह, वडी नेक लगी उसे।

रोटी अभी वाप ने भी नहीं खाई थी और बेटी ने भी नहीं।

पूरी ने कहा, 'वापू रोटी?'

'साथ ही ले-ले, गाडे पर बैठे खाते रहेगे।'

पूरी ने पानी की लोटडी भरली। रोटिया और दो प्याज लेलिए। चल पडी वाप के साथ वह।

रोटियाँ खाई तव तक खेत आ-लिया। सामने ही विखरा पडा था झोंपडा। दोनो उतरे और काम मे लगगए। मोटी और भारी लकडियाँ बेटी एक ओर करती रही और वाप उन्हे गाडे पर लगाता रहा। छोटी और पतली पूरी ने एक तरफ करली—अपनी भारी के लिए।

वाप ने कहा, 'रस्सी नहीं लाई?'

'भूल गई वापू,' और इसके साथ ही एक हल्की-सी उदासी उसके चेहरे पर उभर आई पर उसकी सूझ को वह कहीं भी ढक न सकी। पुरानी मूज के कई-तोडे उसने लकडिया वटोरते अभी-अभी दूर फैंके थे, समस्या हल हुई और उदासी हवा। पाँच-सात तोडे उसने इकट्ठे किए, गाँठे लगा-लगा एक-दूसरे को जोडा और कामचलाऊ रस्सी उसने झट तैयार करली। भरौटी कस वाप ने गाडे पर रखदी। वैठगई वह वाप के साथ। घर आगई। दो घटे मुश्किल से लगे। थोडी देर वाद दीनू भी घर आ पहुँचा।

माँ ने कहा, 'कल तो दीनू वासीडा (शीतला-अष्टमी) वताते हैं रे?'

'फिर?' दीनू ने माँ की ओर ताकते कहा।

'कल तो कैसे चलेगे?'

'और परसो है वुधवार?'

'हाँ।'

'और तरसो तू कहेगी है दिसासूल, आगे माँ कोई नाती तो बैठा नहीं, जाते ही अगले ने कहीं हरी झडी दिखादी–फिर?'

'बात तो तेरी ठीक है, फिर तो मुश्किल ही होगी।'

'अपने तो माँ, कल आधा-पहर रात रहते चलदेगे। उस समय थोडी चाँदनी भी रहेगी और हवा चलेगी सुहावनी। रास्ता दूध-धुपा-सा साफ दिखेगा, अमृत-वेला होगी, दिक्कत क्या है चलने मे?'

पूरी ने कहा, ' दादी शीतला-माता यहीं धोक लेगे–पानी की मटकी पर।'

डोकरी ने बहू से कहा, 'इन गेहुओ का कैसे करोगी? पीस लोगी माँ-बेटी या कल-चक्की धोकनी पडेगी? आटा तो दो दिन का साथ चाहिए, आगे माँ तो बैठी नहीं जो जाते ही, आटे की बोरी खोल देगी?'

'इत्ता गेहूँ तो निकाल पाना मुश्किल है माजी, दिन तो अब मुट्ठीभर रहा है।'

पूरी यह सब सुनरही थी। उसने कहा, 'चिन्ता मत कर दादी, आधे से अधिक तो हम दिन छिपते-छिपते पीस लेगी, बाकी का मैं रात को ही निकाल दूगी।'

दिखलो आटा तो चाहिए ही? ठढा भी पकाना, भार-बोझ भी बाधना, समय थोडा है, जल्दी करो। समय पर निकल पडे, तब आए जी-में-जी।'

माँ-बेटी पडोस मे गई, बैठगई पीसने। दो-ढाई कीलो तक तो माँ ने साथ दिया, फिर कुछ विश्राम चाहने लगी वह। बेटी समझगई माँ की व्यथा। उसने कहा, 'माँ, तू घर जा, भाई दादी को तग करता होगा।'

माँ गई। मोर्चे पर रह गई वह अकेली । अर्जुन की चिडिया की तरह एक ही लक्ष्य था–उसके सामने। मन पर सकल्प तैर रहा था कि अन्धेरा होते-होते ये गेहूँ निकालदू किसी तरह, मजा तब है। हत्था थामे हाथ भी घूम रहा था और चक्की का पाट भी। दाहिना हाथ थकने लगता तो बाएँ को जोत देती उसकी जगह, पर बाएँ का अभ्यास कम था, इसलिए चक्की कुछ धीमी चलती, यह उसे पसन्द न था। बाएँ की बीमारी दाहिने के गले बन्ध जाती पर दृढ इच्छाशक्ति उसकी, इन तमाम असुविधाओ को ओढे हुए भी इनके दुष्प्रभाव से वह सर्वथा मुक्त थी।

कन्धे उसके दुखने लगे थे, कोट पसीने से गीला हो रहा था, घुटने उसे अकडते लगने लगे। रह-रह वह गेहुओ की ओर देखती, सोचती, 'कब निकलेगे ये?' एक अप्रत्याशित भार मन पर उतर आता। फिर सोचती,'ज्यादा से ज्यादा दो घटे और लग जाएँगे, अन्त-पन्त पिसना तो इन्हें ही पडेगा, मैं तो पिसने से रही?' इसके साथ ही हाथ को और तेज कर देती। बीच की देह सारी हिलने लगती–पेट और फेफडे सभी। प्यास लगने लगी, गेहुओ की तरफ देखा, आया किनारा अब तो, पाँच-सात धोबे और हैं, पानी ये निकाल कर ही पीऊँगी। अब पी लिया तो पानी मार करेगा। पीना टाल दिया उसने, हाथ को और तेज कर दिया। पीडा, प्यास सब भूल गई।

गेहूँ सारे पिस गए, जी-मे-जी तब आया उसके। खडी होने लगी, मगर पैर सोगए, आँखो के आगे भँवारे पडने लगे। सोचा, 'गिर न पडू,' बैठगई वापिस। पिंडलिया दबाती

रही–दो मिनट। वे झनझनाने लगी थीं। जकड कुछ खुली, आटा पीपे मे डाल, बाहर आई, पश्चिम की ओर झाकी। सूरज क्षितिज से अभी-अभी लुढका था। शरीर दुख रहा था, पर मन पर उसके सन्तोष बिखर रहा था–जीत का।

घर आ दादी को कहा, 'पीस लिए दादी।'

'सारे?'

'हाँ।'

अचम्भे से देखती डोकरी ने, बाहो मे भर लिया उसे। कहा, 'बेटी, शरीर तो चूर-चूर हो रहा होगा?'

'नहीं दादी।'

'नहीं क्या, लोहे का थोडा ही है वह? पर बेटी गेहूँ बदला कर आटा चक्की मे लाते तो दस का नौ कीलो ही पल्ले पडता और कहाँ वह आटा और कहाँ यह? समझले गढ फतै कर लिया।'

डोकरी को चिन्ता सता रही थी, 'अन्धेरा अब गाढा होकर पसरेगा, बिच्छू घुमाई पर निकलेंगे, ढिबरी मे तेल है नहीं, आटा भी काफी सेकना, मीठा दलिया और राबडी भी करने। कामो की एक अन्तहीन श्रखला उसके आगे नाच रही थी। हारा उसने सुलगाया और चूल्हा वहू ने। हारे पर आप बैठी और चूल्हे पर बहू।

सालभर से दो मुट्ठी सागरिया छिपा रखी थीं–केवल इसी दिन के लिए। गाँव मे आम विश्वास है कि ठढा पकाते समय सागरियो के साग का विशेष महात्म्य है। सागरिया बहू को देदीं। पूरी आटा गूदने लगी। चूल्हा मन्द-मन्द जल रहा था। झोपडे मे धुएँ का आतक कहीं नहीं था। यह देख पूरी बडी खुश थी। साग की हडिया उतार का माँ ने एक ओर रखदी।

पूरी ने कहा, 'माँ, तू और किसी काम मे लग, ला रोटिया मैं सेकती हूँ।'

जुट गई वह।

डोकरी आध-पौन घटे मे निवृत्त हो खटिया पर आ बैठी। मन ही मन गोगाजी से प्रार्थना करने लगी, 'गोगा पीर, रोटिया सिके तब तक विच्छुओ पर लगाम रखना।'

पूरी चूल्हे से निवृत्त हुई तब तक रात घटाभर से अधिक निकल चुकी थी।

आँगन मे बैठ, सबने खा-पी लिया। अब सामान जचाने की चिन्ता थी। खाने-पीने का सामान एक खारिए मे रख लिया। आटा, मसाले और तेल का डिब्बा एक पीपे मे। एक गुदडी मे दो खेस और एक चद्दर लपेट एक बींटा बना लिया। पहनने का एकाध कपडा ले लिया। रात लगभग आधी किनारे आ लगी थी।

डोकरी ने कहा, 'दो-चार घडी थोडा सो-लो भई, निधडक नींद तो अब क्या आनी है पर बिल्कुल नहीं से तो कुछ ठीक है, देह कुछ हल्की हो जाएगी।'

सबने अपनी-अपनी खटियाएँ पकडलीं। सो तो डोकरी भी गई पर आँखे उसकी नहीं लगीं। घटा-पौन घटा करवट वह जरूर बदलती रही। वह सहसा खडी हुई और आकाश की ओर झाकने लगी। अन्दाज लगाया, रात पहरभर से कम ही बची थी। उसने सब को

जगा दिया।

खटियाएँ सारी झोपडी मे खडी करदीं। घडे, मटकियाँ भी वहीं एक कोने मे औंधे रखदिए। किवाड के ताली लगा, आगे उसके पुरानी बाड के कॉटे लगादिए। अन्धेरे -अन्धेरे ही एक मटकी पर शीतलाजी पूजली। राख के घोल से मटकी की छाती पर त्रिशूल बना उसे दलिया, राब-रोटी का भोग लगा, डोकरी ने मनौती करते कहा, 'माँ, पेट काटने जा रहे हैं–देखी-अनदेखी सभी आफतो से बचाना, तू हजार हाथोवाली है।'

पीपा और बीटा उठालिए दीन ने, बहू ने ऊँचलिया खारिया, पूरी ने लेलिया भाई को और सिर पर रखली दो-ढाई कीलो की एक गठड़ी। डोकरी रही–अविभागीय मत्री की तरह भार-मुक्त।

निकलते-निकलते डोकरी पडोसिन के पास जा खडी हुई। पडोसिन शरीर से तो थी खटिया पर और मन से दौड रही थी ऊँट व पाडो के पीछे। टाँगें उसकी चूर-चूर हो रही थीं और स्वप्न अभी शुरू ही हुआ था। सहसा उसके कानो मे पडा, 'चाची?' उसने तुरत आँखे खोलदीं। थकान मिट गई, और स्वप्न हुआ रफ्फूचक्कर।

'कौन गगी?' उसने आँखो पर हाथ फिराते कहा।

'हाँ, मजूरी पर जा रहे हैं चाची, अन्धेरे-उजाले कभी घर की ओर तो झाक लेना।'

'फिकर मत कर, घर कहीं नहीं जाएगा–यहीं मिलेगा।'

आगई वह। चलदिए सारे।

गाँव सोया था। नीरवता पसरी थी चारो ओर। हवा मे हल्की ठढ थी। चाँद चमक तो रहा था पर था आधा-अधूरा ही। प्रकाश फीका और चेहरा उदास था उसका।

गली पार करते ही, एक गधा बाएँ से दाएँ होता भाग निकला।

डोकरी ने कहा, 'दीनू पलभर रूके एक बार?'

'गधा, रूका थोडा ही माँ? वह तो आगे बढा है। हम फिर क्यो रूके?'

'फिर ठीक है, चलो।'

गाँव से निकलते ही, रास्ते से हट बाईं ओर एक खेजडे पर उन्हे कोचरी (उल्लू) बोलती सुनाई पडी। कर्रर-कर्रर के स्वर भी कर्कश और शकुन भी वैसे ही। डोकरी का मन कुछ बोझिल हो उठा।

उसने कहा, 'दीनू खेजडे को दाहिनी ओर रखकर चल निकले तो?'

अबकी बार, माँ को टोकना उसे ठीक न लगा। रास्ता छोड, सब उधर मुड गए। चार-छ कदम चले होगे कोचरी उड गई और दूर किसी दूसरे खेजडे पर जा बैठी और वही कर्रर-कर्रर फिर आलाप उठी। डोकरी को बडा अखरा। एक प्रयास वह और करना चाहती थी पर दीनू ने उससे पहले ही टोकदिया, 'कुएँ मे पडने दे माँ, इसके पीछे-पीछे कहाँ-कहाँ भटकेगे? पाखे हैं इसके तो, यह उडती चलती है आकाश मे और हम चलते हैं धरती पर। इसकी-हमारी क्या बराबरी? और यह कोई मजूरी पर थोडी ही निकली है? यह उल्लू, हम आदमी–छोड इसको। हम उल्लुओ के पीछे थोडे ही चलेगे?'

वे फिर सही रास्ते पर आगए और निश्चित होकर चलने लगे। डोकरी इनमे नीति,

दीनू तर्क, पत्नी आज्ञा, पूरी क्रिया और मानिया परमहस से लग रहे थे। चलते-चलते हरिण, खरगोश, और लोमडियाँ रास्ता काटते निकल जाते। उनका न डोकरी पर ही कोई असर था और न दीनू पर ही। आगे बढ रहे थे वे। सास-बहू का जोडा कुछ धीमे चल रहा था और बाप-बेटी का कुछ तेज। बाप-बेटी, घटेभर मे डेढ कोस करीब आ लिए। पूरी ने पीछे मुडकर देखा, कहने लगी 'बापू, दादी तो दिख ही नहीं रही?'

'आजाएगी, इतने हम थोडा विश्राम कर लेते हैं यहाँ।'

धोरे की ठढी बालू पर बैठ गए वे। पूरी ने भाई को कोमल बालू पर लिटा दिया, नींद मे ही था वह तो—नींद और गहरी होगई उसपर। कमर स्वय ने भी रेत पर सीधी करदी। दिनभर की थकी, रात मे पूरी सो न सकी, अब इच्छा न होते हुए भी नींद मे डूब गई वह।

पन्द्रह-बीस मिनट मे सास-बहू आगई।

दीनू ने कहा, 'माँ चले या ठहरे थोडी देर?'

'रास्ता और बैरी तो कटने ही चाहिए दीनू।'

पूरी को जगाया। चल पडे सारे। आधा कोस और चले होंगे। सूरज क्षितिज पर आ बैठा—हँसता हुआ। चिडिया चहचहाने लगी थीं और जगल टी-वी टुट्-टूट् से मुखरित हो उठा था।

दीनू ने कहा, 'माँ जगल की तरफ देख, कितना, रोता-बिलखता लगता है वह? खेजडियाँ नगी करदी हैं रेवडवालो ने। फोग बेचारे दो साल से नगे ही हैं—सूखे ही सिणिए और सूखी ही बूइया। झरबेरियो पर केवल काँटे ही रहगए हैं—हाँ आक जरूर हरे हैं।'

'सुना है बेटा, आक बडा ईरखालू होता है। वह औरो को दुखी और उदास देख-देख हरा रहता है। सावन-भादौं मे बरखा होने पर सारे पौधे हरे-भरे होते हैं न?'

'हाँ।'

'तब यह पीला पडने लगता है।'

'क्यो?'

'औरो को हरा देख-देख।'

'बहुत से आदमी भी इसी स्वभाव के होते हैं।'

'अरे, इससे भी ज्यादा ईरखालू।'

पूरी भी यह बडे मनोयोग से सुन रही थी। मन हीं मन सोच रही थी, 'मैं भी किसी से ईरखा नहीं रखूगी, आक थोडा ही बनूगी?'

सिर तो उसका नहीं थका था पर गोदी उत्तर दे रही थी और उत्तर दे रहे थे गोदी बदलते उसके हाथ भी। किसे कहे, और कहने से लाभ ही क्या उसे? वह चलती रही, बिना होठ खोले और बिना पैर थमाए।

अगले टीबडे पर चढते ही एक सफेद कोठा दिखाई दिया।

पूरी ने पूछा, 'वह मकान बापू?'

'प्याऊ है वहाँ रूकेंगे, हाथ-मुँह से फारिग हो, कुछ खा-पीले, फिर चल पडेंगे।'

थोडा पीछे की ओर देखते, पूरी सहसा रूकगई, अचम्भित होकर बोली, 'दादी, कुतिया आरही है?'

'कौन, भूरकी?' डोकरी के होठो पर भी विस्मय उछल पडा।

'और नहीं तो?'

दीनू ने कहा, 'माँ, पैरो के निशान सूघती, भागी आरही है।'

'हम भूलगए रे, पर यह नहीं भूली। अच्छा है आगई तो, जगल मे कुछ जाग तो रखेगी, दो रोटिया हमे मिलेगी तो आधी-चौथाई इसके पेट मे भी पडेगी,' और इतने मे वह आ पहुँची।

डोकरी की ओर बेधक दृष्टि से देखती, पूछ हिला-हिला कू-कू करने लगी।

डोकरी ने कहा, 'बस-बस समझ गई, ज्यादा तकलीफ मत देख, उलाहना तेरा सही है, गलती होगई माफ कर।' वह समझी चाहे नहीं, डोकरी ने तो अपना सहज हृदय उसके आगे खोलकर रख दिया।

प्याउ पर सबने खाया-पीया, थके कदम उसी राह फिर चल पडे। डोकरी चूर-चूर हो रही थी, पैर जवाब देने लगे थे पर सकल्प उसका अभी मुरझाया नहीं था। मन कह रहा था, घडीभर तो विश्राम कर ही, और सकल्प के स्वर थे, 'अब कितीक रात, किताक भोर? अध घटे मे पैर टूट थोडे ही जाएँगे, आगे बढ।'

बहू बेचारी के पेट मे भी भार और सिर पर भी। ठंढे, बासी टुकडे अभी-अभी चबाए थे, अगूठे का दर्द कदम-कदम पर बढ रहा था, ऐसी अवस्था मे सात कोस के टीबडे नापना, धरती पर इससे बडा अभिशाप और क्या होगा?

सारे एक बालूई ऊँचाई पर आ पहुँचे।

पूरी ने कहा, 'बापू, वे दीख रहे हैं सामने—आदमी-औरते। वहीं पहुँचना है?'

'हाँ वहीं।'

'अब तो थोडा ही चलना और है,' यह सोचते ही उसका बिखरता धैर्य स्थिर हो गया।

ज्यो-ज्यों वे बढते गए, दृश्य अधिक स्पष्ट होता गया। दस बजते-बजते वे लक्ष्य पर आ पहुँचे। भाग्य से चौधरी भी वहीं मिलगया।

देखते ही उसने पूछा, 'आगया दीनिया?'

'आगया माई-बाप।'

'तो लगा डेरा और कर कबीरी अपनी।'

'दिन कट जाएँगे तो ठीक ही है साब।'

बास की चार बल्लिया और दो सरकिया मिल गई उसे। एक खेजडे के तने के सहारे सरकी अपनी खडी करली उसने, पर वैसी और कोई सरकी खडी, उसे दूर-दूर तक दिखाई नहीं पडी। उसे मालूम हुआ कि मजदूर सारे, पास के दो गाँवों से आते हैं, काम करके दोपहर तक गाँव वापिस पहुँच जाते हैं।

गणेशजी को मनाते, दीनू ने डेरा अपना लगा लिया—जगल की उस एकाकी और अपरिचित जगह पर।

उसने सोचा, दिन तो काम और मजदूरो के बीच कट जाएँगे, पर राते? एक बार, उस पर कुछ दुविधा उतर आई, उदास होगया वह।

पाच

'दीनू?' चौधरी ने सहज आत्मीयता से कहा।

'हाँ साब।'

'आज तो काम क्या करेगा रे?'

'क्यो साव?' अवाक् से देखते उसने कहा।

'इतनी दूर से आया है, थक नहीं गया?'

'थकने से साब आटा तो नहीं बरस जाएगा?'

'मतलब श्रम कुछ करना चाहता है?'

'मिलजाए तो आटेवाले पैसे तो खडे कर ही लेता साब–किसी तरह।'

चौधरी ने मेट को बुलाया। परिचित था वह, कहा उसे, 'मेट-देवता इस समय तो यहाँ के आला-अफसर तुम्हीं हो?'

'साब मैं अफसर?' उसने उनकी ओर अचम्भे से देखते हुए कहा।

'और नहीं तो मैं? अरे अफसर वही जो मौके पर काम निकालदे।'

'मैं तो साब तावेदार हूँ आपका, हुकम करो?'

'हुकम कुछ नहीं, मदद कर थोडी? यह पछी यहाँ आगया है–मेरे कहने से, देख नहीं रहे, सरकी इसकी?'

देख क्यो नहीं रहा साव?'

देख रहे हो तो इसे भी नापदो–जमीन का टुकड़ा कोई?'

'अभी लो साब।'

चौधरी रवाना होगया।

सडक से दस हाथ दूर, नापकर, एक टुकडा उसे बता दिया और समझा दिया उसे कि फुट-फुट गहरा खोद, मिट्टी उसकी सडक पर बिछानी है। करीब सौ-मन मिट्टी होगी यह –वीस रूपए की।'

दो तसले और एक फावडा उसे दिलादिए।

वारह वजते-वजते मजदूर सारे रवाना और चहचहा वहाँ जादू की तरह गायव। एक खेजडे के नीचे केवल एक सरकी रह गई थी और वह थी दीनू की। सास-बहू और मानिया सो रहे थे। दीनू भी खेजडी की छाया मे एक ओर लेटा, खर्राटे भरने लगा था। पूरी भी थकी हुई तो कम नहीं थी, पर दिन मे सोने की उसे आदत नहीं थी। छाया मे एकाकी वैठी ने सोचा, 'शाम को लकडियो की जगह चूल्हे मे हाथ थोडे ही दूगी?'

वह तसला लिए ईंधन वटोरने चलदी। घटा-पौन घटा आसपास के फोगो मे फिरती

रही। तसला छाणो से भर लाई। उसने देखा सारे सोए हैं। इच्छा हुई, दादी को थोडा दबाऊँ, इतनी दूर रास्ता इसने कितनी मुश्किल से काटा होगा? बूढी टाँगो मे जान भी तो कहाँ? पर शाम को ही ठीक रहेगा । सहसा ध्यान आया उसे, 'अरे चूल्हा भी तो नहीं, ईंधन अकेला क्या करलेगा?' अभी छाणे बटोरते समय एक जगह उसने पाँच-सात रोडे देखे थे–अनघड। वह एकदम से उठी, तसला लिए फिर चलदी। चूल्हे लायक रोडे ले आई। सरकी के एक ओर–चूल्हानुमा आकार दे दिया उन्हे। इस भागा-दौड मे होठ उसके सूखने लगे। पचास-साठ कदम दूर पानी का ढोल रखा था। लोटा लेगई साथ मे, पानी पीया, लोटा भरकर चलने लगी, एक तने की ओट मे तभी एक घडा दीखा उसे। औंधा रखा था वह। उसने उठाया उसे। कठ से बिलानभर नीचे दो सुराख थे उसमे–आकार मे चवन्नी जितने बडे। उनसे छनता पकाश, घडे का पेट उजागर कर रहा था। बडी पसन्न हुई वह, जगल मे जैसे कोई निधि हाथ लगी हो उसके। उसे धोकर साफ कर लिया उसने। आधा भरा और उठाकर उसे सरकी पर ले आई।

दोपहर बीतते-बीतते, थकान मिटा, सारे उठ खडे हुए। कुल्ले किए, पानी पीया और तीनो मोर्चे पर आ डटे। दीनू तसले भर-भर उठवाता और माँ-बेटी सडक पर डालती जातीं पर माँ का सिपाही घटाभर से अधिक न जूझ सका–मोर्चे पर। पेट मे उसके ठढी रोटिया और दलिए की खुरचन थी। उतावल मे चबाए टुकडे आँतो मे कहीं अटके थे। सिर दुखने लगा और वायु के कारण पेट मे यदा-कदा हल्का-पतला दर्द उभर आता था। होठ खोलकर इच्छा तो उसने नहीं पकाशी, पर थोडे विश्राम की खुराक के लिए, मन उसका बार-बार मचल रहा था।

मानिया दादी के पास था। वह कभी की आवाज लगा रही थी, ' पूरी थोडी देर भाई को ले, मेरे बस का नहीं यह, मिट्टी दो-तीन बार तो फाक गया इत्ती देर मे?'

पूरी ने कहा, 'मॉ तू जा, भाई को ले कुछ देर, मिट्टी मैं डाल रही हूँ।'

नेकी और पूछ-पूछ, माँ को इतना ही चाहिए था, कहते ही वह चलदी।

पूरी बाप के साथ आधा-पहर और लगी रही। ओस से झरती टहनी की तरह पसीना चू रहा था उसकी देहयष्टि से। रूकने का बाप ने तो कहा नहीं और उसने होठ खोले नहीं। अन्त मे बाप का मुँह खुला, 'पूरी अब तो दस-बीस मिनट का काम और है, आज के बीस तो पक्के हुए ही समझ, तू कहे तो बन्द करदे, बचा हुआ कल कर लेगे?'

'इतना सारा समेट लिया बापू तो मुट्ठीभर अब क्यो रखो, और खटलेते हैं थोडी देर?' पूरी ने सहज भाव से कहा, और लगे रहे वे।

सूरज अस्ताचल छू रहा था और पक्षी घोसलो की ओर भागे जा रहे थे, काम पूरा कर ये भी अपनी सरकी की ओर मुडचले। मुँह ओर हाथ-पैर धोए तब तक रोटिया सिक गई थी। कुछ टुकडे ठढे भी अभी बचे पडे थे। सागरी की सब्जी कुछ बचा रखी थी। रोटिया और टुकडे उससे लगा-लगा पेट जैसे-तैसे सबने भर लिए। एक रोटी और कुछ टुकडे भूरी के आगे डालदिए। खा-पी निश्चित हुई वह, ठडी रेत पर जा लेटी।

अन्धकार जगल की छाती पर चौडा होकर उतरने की तैयारी मे था। उनके पास न ढिबरी न दीपक। आकाशी ढिबरी का अभी कुछ पता नहीं, चमकेगी भी तो आधी रात के बाद और वह भी मरी-मरी।

डोकरी ने दीनू को कहा, 'अरे, अन्धेरा काजलिया होने से पहले-पहले, कमर को आराम देने के लिए, थोडी रेत तो सीधी करले।'

'हाँ माँ, ठीक कहा तुमने।'

बाप-बेटी दोनो लगगए। फावडे से रेत खींच-खींच जमीन से चार-चार अगुल ऊँचा एक चबूतरा-सा बनालिया, लम्बा अधिक, चौडा कम–चारो के लिए काफी। अपने लिए मिट्टी थोडी काट कर खटियाकार एक सायरी अलग से तैयार करली, चारो ओर उसके बिलान-बिलान ऊँची मिट्टी की मेंड और खडी करली। अन्धेरा अब एकदम स्याह होगया था। सबने अपनी-अपनी जगह सम्हालली।

न गाँव, न मुहल्ला, सिवा आपस के बोल-बतल और किससे करे? आवाज किसे दे? बस्ती यहाँ पेड-पौधो की। नगी और छीली-खरोची खेजडिया। आक और खींपे। सारे मौन। सारे अन्धकार के सागर मे जा डूबे। पेडो पर घोसले, उनमे हारे-थके पक्षी–वे भी मौन और सहमे-से। तेज हवा, आक और खींपो को चीरती आगे बढती तो साय-साय दूर तक फैल जाता। जगल पर सन्नाटा बढ जाता। मन पर भय और सशय का जाल उतरता लगता।

डोकरी के मन पर आशकाएँ उतरने लगीं एक के बाद एक–अनवरत। आशकाएँ, चोर-उच्चको के आने की नहीं। सोच रही थी, 'चोर-उच्चका कोई, क्या लेजाएगा यहाँ से? आशका है जहरी जीवो की। अनदेखा जगल है, पीना-साँप यहीं कहीं हो और नींद मे ही पी जाए किसी को तो उसका इलाज भी तो नहीं? यहाँ आवाज ही किसको दे? साँप, बिच्छू, गोह सब खुले घूमते हैं ठढी बालू पर। किस-किस को पकडे, किसे मारे, कुछ दिखता भी तो नहीं? रात मे बहू के पेट मे बादी, सूल कुछ उठजाय, चीखने लगे तो आवाज किसे दू? क्या करलू यहाँ?' उसके रोगटे खडे होगए और नींद दूर भागगई।

गुदडी एक थी, वह डोकरी के नीचे थी। रेत पर ही बहू और रेत पर ही बहन-भाई। दीनू और डोकरी को छोड सब पर नींद फिर गई।

दीनू ने बीड़ी अभी-अभी बुझाई ही थी–सोने ही वाला था।

डोकरी को सहसा कुछ याद आया, उसने आवाज दी, 'दीनू?'

'हाँ-माँ।'

'एक लोटा भर तो?'

'प्यास लग आई?'

'नहीं।'

'तो?'

'मुरलीदादा की बहू ने कहा था रे–एकबार, 'गगी, खेत या जगल मे कभी अकेले-दुकेले रात बितानी पड जाए तो लछमनजी के नाम की अपने चारो और पानी की 'कार'

निकाल लेना। उनकी आन देकर निर्भय सोना, बाल भी बांका नहीं होगा। [illegible]
के तो एक ही सिर होता है,रावन की तरह दस सिर भी हों फिर [illegible]
लछमन-रेखा के बाहर ही रहेगा–भीतर नहीं आ सकेगा।'

'इसमे कौनसी रकम लगती है माँ, बडी अच्छी बात कही उसने, [illegible]

लोटा भर उसने, माँ को पकडा दिया।

लक्ष्मनजी का नाम लेते, डोकरी ने सबके चारो ओर कार निकाली। [illegible]
उसकी सारी चेतना पर गाढा होकर पसर गया, बोली, 'अब सो दीनू [illegible]'

और वह भी सोगई।

रात आधी से कुछ अधिक हो रही थी। हवा मे ठढ पसरने लगी [illegible]
मे असुविधा होने लगी। वह उठ बैठी। उसने पूरी की ओर देखा। [illegible]
छाती से सटाए सोए थे। अपना चदरा उसने उन पर डाल दिया। [illegible]
कुनकुनाती नींद तो मैं ले न सकूगी। इससे तो अच्छा है, दो नाम [illegible]
गुडकाती सुबह किसी तरह नजदीक ले ही लूगी।'

वह सुखासन से बैठ गई। गले मे माला थी–सात भाँति के मनको की। [illegible]
पर उगलियाँ चले, मन उनसे पहले ही भाग चला। सोचा, 'ओढने के कपडे [illegible]
रहे हैं। जगल है। चैत का महीना, चारो ओर की खुली हवा, आधी रात के बाद [illegible]
कुछ दिन और पडेगी। झोपडे मे दो खेस और दो घस्से पडे है। कसारिया [illegible]
बिना मानेगी? उनसे कोई बच भी गया तो उसको चूहे छलनी कर देगे। यहाँ तो [illegible]
ही लिखा है। झोपडे मे बिल्लियो ने रास्ता बना लिया तो भाडा एक भी नहीं बचेगा [illegible]
ठीकरिया। झोपडा हो जाएगा नगा, भूत खेलेगे आँख-मिचौनी उसमे। आँगन पर आराम
करेगे गधे और दूसरे चौपाए। बसना उसमे मुश्किल हो जाएगा। बहू को फिर [illegible]
कराऊँगी? भाडे, कपडे और झोपडे पर फूस सब एक साथ कैसे जुट पाएगा? टूटा तवा
और फूटी कठौती, यही लिखा है करम मे?' वह चिन्ताओ की एक अन्तहीन शृंखला पर
दौडने लगी। इतनी देर मे, माला का एक भी मनका आगे नहीं सरका।

चाँद पश्चिम की ओर सरक रहा था। पेड-पौधे दिखने लगे थे–अस्पष्ट से। खेजडियो की नगी, हिलती शाखाएँ नाचते भूतो की मुद्राओ-सी लग रही थी। डोकरी आकाश की ओर देखती–भोर होने के अन्दाज मे खोई थी, तभी सहसा 'धम्म' कुछ गिरने जैसी आवाज उसके कानो मे पडी। वह चौंक उठी । उसका कतता तार टूटते ही बोध हुआ उसे, अरे मैं घर मे नहीं, जगल मे हूँ। कुतिया जाग गई, भुसती हुई उधर भागी।

डोकरी ने आवाज दी, 'दीनू, ओ दीनू, उठ तो?'

'क्यो माँ?' आँखे मसलते दीनू ने कहा।

'अरे देख तो, पानी के ढोल पर रखा टीन गिर गया लगता है, कोई जानवर तो नहीं आया है उस पर?'

वह उठा, लाठी तो वहाँ थी नहीं, फावडा पडा था, वह उठा लिया उसने। भागता हुआ पहुँचा। टोले की ऊँटनी थी कोई। उसने ललकारा, 'ठहर तू?' ऊँटनी भाग छूटी।

कुतिया भी कुछ दूर उसके पीछे भागी। उसने देखा ढोल पसरा पडा है, और पानी सारा प्यासी रेत ने सोख लिया है। ढोल उसने सीधा कर दिया, टीन ढोल के सहारे खडा कर वह चला आया।

माँ से कहा, 'तुम्हारा अन्दाज ठीक था माँ—ऊँटनी थी कोई।'

'पानी सारा पी गई होगी?'

'पीया तो नहीं, पर सारा पसार दिया जमीन पर।'

'पानी बिना अब?'

'क्या बताऊँ, घडे मे तो दो लोटे ही मुश्किल से होगा।'

'तब?'

'पानी अब आठ बजे से पहले तो क्या आएगा?'

'चलो ठीक है, पर अब रात को पानी के ढोल का ध्यान पूरा रखना होगा?'

'रख लेगे माँ, चिन्ता मत कर।'

'दीनू, पडता अकाल, होती विधवा और ओपरी जगह, शुरू मे एक बार अखरते हैं। यह जगह अपने मन पर जमती-जमती जमेगी।'

'हाँ, यह तो है ही माँ।'

दिन निकल गए और सेते-सेते यही जमीन इनके पैरो से परिचित हो गई । आँखो ने भी इसके साथ पहचान अपनी पक्की बनाली। सरकी इनकी आत्मीयता से बन्ध गई।

ये नगी धरती पर सोने के आदी होने लगे। सूरज उगने से पहले उठते। मजदूर आते तब तक रोटिया अपनी सेक लेते पर खाते बारह बजे के बाद—कुछ सुस्ताकर। शाम को सूरज छिपने से पहले ही खा-पी, अपने रेतिया बिछौनो पर जा जमते।

मेट भला आदमी था। काम रोज बताजाता। रूककर, दो मिनट आत्मीयता की बात करता। तीस रूपए ये रोज कर लेते, बीस-बाईस खा लेते, बाकी बच जाते। गाडी इनकी चलने लगी थी। सप्ताह मे एकदिन चूल्हे का सामान ले आते। गाँव यहाँ से कोसभर था। बाप-बेटी जाते, ढाई-तीन घटे मे वापिस आजाते। जाते तीन बजे के बाद ही।

पूरी के पैर नगापन अब भी वैसे ही ढो रहे थे। घटा-पौन घटा वह जगल मे फिरती, जरुरत का ईंधन रोज बटोर लाती। दीनू की बहू ने चैत-चैत तो काफी-कुछ किया। वैशाख लगते-ही, डेढ-दो घटे सुबह-सुबह ही कुछ करती, फिर तसले की ओर झाँकती भी नहीं। कुछ देर मानियै को रख लेती और दो घडी लेट भी जाती। पूरी बाप के साथ, सुबह-शाम लगी रहती। भाई को साथ लेकर सोती जरूर पर उसे गोदी लेने का अवसर उसके पास नहीं के बराबर ही रह गया था।

वैशाख मे लू और आँधियाँ शुरू होगई थीं। अक्षय तृतीया पर तो धरती भोभर की तरह गरमाने लगी थी। गर्दीला आकाश और उछलती गर्म रेत वातावरण को रुखा और अशान्त बना देते। कई बार तो रात के बारह बजे तक गर्म लू पर अगारे उछलते। करवट बदलते वे सुखपूर्वक सोना तो दूर, चैन की सास भी नही ले पाते।

कई-कई खेजडों पर सागरिया फूटने लगी थीं और कैरो पर कैर लटकने शुरू हो गए थे। पूरी किसी खेजडे पर चढ, साग-दो साग की सागरिया ले आती और कभी पाव-डेढ पाव कैर। कैर डोकरी नमक के पानी मे डाल देती, धीरे-धीरे कड़ुवापन उनका मर जाता। वे सब्जी लायक होजाते।

मानिया बीमार रहने लगा था। माँ को दिन मे थोडी देर झपकी आजाती और दादी ऊघती रहती। मानिया को इतना ही चाहिए था, दो-चार फाके मिट्टी के मार ही लेता। पेट उसका बढने लगा था और हाथ-पैर उसी अनुपात से सूखने लगे थे। ढीली पडती चमडी पर सलवटे विश्राम करने लगी थीं। रात को पूरी उसके पेट पर हाथ फेरती-फेरती चिन्तित हो उठती। सोचने लगती, 'माँ-दादी इसे ठीक से सम्हाल नहीं पातीं और मुझे समय नहीं, क्या करू, काम कैसे बने?' वह अन्धकार मे कुछ खोजने लगती, पर न उसे रास्ता मिलता और न नींद का आराम, विवश होती आँखे भर लेती। आँसू उसके रेत सोख लेती और कुछ खून उसका चिन्ता। सहसा उसकी याद पर दीपी दादी आ बैठती। उसके मन के कानो मे स्वर मुखरित हो उठते, 'मत दो म्हारी, बाईसा नै गाळ, बाई म्हारी चिडकोली जी,' भाई के प्रति स्नेह उसकी चेतना को ढकने लगता, आँखे उसकी अनायास छलक उठतीं। अपनी बाह उस पर फैलाती वह अपने शरीर से सटा लेती उसे, पर कितनी देर? सुबह-सुबह फिर वही मिट्टी और सिर पर वही तसला, सब कुछ भूल जाती और खोजाती उसी मे।

छह

वैशाख तो किसी तरह किनारे आ लगा। जेठ आ पहुँचा, क्रोधी और शोषक सामन्त की तरह।

पूरी की माँ इतने दिन तो रेत ढोने का काम कुछ करती रही, अब उसने बन्द कर दिया, शरीर साथ नहीं दे रहा था इसलिए। चूल्हा भला, या फिर मानिया। ढोल से पानी भर लाती। एकाध तसला इधर-उधर से ईंधन कभी बटोर लाई तो ठीक है, वरना पूरी तो थी ही।

जेठ के दो ही दिन बीते थे। तीसरे दिन के सूरज की यात्रा घटाभर अभी बाकी थी। दीनू की बहू ने सब्जी छौंक , हडिया अगारो पर रखदी और आटा गूदने मे लग गई। उधर दीनू तसले भरता जल्दी-जल्दी और पूरी डालती हवा होकर। दोनो युद्धस्तर पर जुटे थे।

सहसा दीनू की आँखे उत्तर की ओर उठी। क्षितिज के मध्य, उसे रेत उठती दीखी। सोचा, बगूला होगा कोई। हाथ उसने फावडे से हटा लिए और एकटक हो, दृष्टि अपनी उधर रोपदी। देखते-देखते उसे लगा, आँधी है यह तो। दाएँ-बाएँ अपनी भुजाएँ पसारती, वह बाढ की तरह आगे बढ रही थी। आकाश खख से ढका जा रहा था।

उसने देखा, पक्षियो मे भय व्याप्त है, वे तेजी से अपने घोसलो की ओर उडे जा रहे हैं। अब समझने मे क्या रह गया था । उसने पूरी से कहा, बेटी दस-पाँच तगारी और

डाले तो डालदे, आँधी आनेवाली है, लगता है बडे जोर से आएगी ।'

'और बरखा बापू?'

'उसके घर की कौन कहे बेटा, पर बरखा तो मुश्किल लगती है मुझे ?'

पाँच-सात तसले डाले ही थे, दिशा धूल के बादलो से अन्धी होने लगी। फावडा-तगारी रख दिए उन्होने। हाथ-मुँह धोने लगे पर धो न सके पूरी तरह। आँधी आ पहुँची रेत उछालती, सरकी होश-हवास खोते शराबी की तरह लडखडाने लगी।

डोकरी ने कहा, 'बहू चूल्हा बडा-करदे, कहीं आग बिखर गई इधर-उधर तो सरकी तो जाएगी ही, पहनने-ओढने के गाभे भी राख हो जाएँगे।'

बहू ने दो-धोवे रेत डालदी आग पर।

डोकरी ने पूछा, 'आटा अब कितना रह गया और सेकना?'

'आधा समझो।'

'गोला बनाकर पीपे मे रखदे सुबह काम आ जाएगा—फुर्ती कर।'

और तभी बडे वेग से एक झोका आया, सरकी के पैर उखड गए। माल-असबाब सारा नगा हुआ, धूल चाटने लगा। रेत बरसने लगी।

रोटियाँ सात ही सिकी थीं, बाकी आटा गोला बनाकर पीपे मे रख दिया गया। सब्जी की हंडिया पर ढकनी तो थी ही, एक गुदडी और डालदी उस पर। आँधी वेग पकडती गई। सूरज खख मे खोया या अस्ताचल मे, कुछ पता न चल रहा था । दीनू ने उडती सरकिया पकड कर गोल करलीं और उन पर नितम्ब टिका कर बैठ गया। आकाश-पवन सब माटीमय हो गए। रही-सही कमी अन्धेरे ने पूरी करदी।

डोकरी ने कहा, 'सारे पास-पास बैठ जाओ, चौगान मे यहाँ ओट भी किसकी ले?'

दीनू बोला, 'आँधी अधी तो है ही माँ, बहरी भी है वह, न देखती है, न सुनती है। वेग निकल नहीं जाता तब तक पानी की घूट भी सुख से ले नहीं सकते।'

डोकरी ने कहा, 'तो कुछ खाओगे नहीं?'

'इस हालत मे क्या खाया जाएगा माँ?'

'और वेग रातभर ही चलता रहा तो?'

'तो फिर सुबह ही बात।'

'मानिया भूखा है रे?'

बहू बोली, 'पिछले पहर तो आधी रोटी खाई थी उसने।'

पूरी ने कहा, 'दादी, आज उसने फिर धूल फाकली थी।'

'क्या कहूँ बेटी, भगवान ही मालिक है उसका, फाकली ही होगी, ध्यान रखते-रखते थक गई मै तो।'

'अब तो वह नींद मे है दादी।'

'चद्दर डालदे ऊपर ।'

पूरी कुछ देर तो रोटी की प्रतीक्षा मे जागती रही, फिर वहीं लम्बलेट हो गई, उसे पता ही न चला नींद कब घिरी उस पर ? रोटी की लालसा उसकी नींद मे कहीं लुप्त

हो गई। रेत उस पर दो घटे तक एकसी बरसती रही और झोको का वेग रह-रह धक्के लगाता रहा उसे, पर मजाल है इनमे कोई भी नींद तोड सका हो उसकी।

उसकी माँ भी ओढनी मे मुँह छिपाए लेट गई वहीं। दीनू भी ऊघने लगा।

रात के दस बजे जाते, आँधी थमी तो नहीं, पर वेग उसका रूपए मे चवन्नी ही रह गया।

डोकरी ने आवाज दी, 'दीनू।'

'हाँ।'

'अब तो दाँत-जाड भी हिलाले कुछ? पूरी को भी उठादे, दिनभर की खटी और थकी है बेचारी, पिल्ले तो पेट मे उसके भी लड रहे होगे?'

दीनू ने पूरी को जगाया।

'बेटी खा ले कुछ,' डोकरी ने कहा।

'नींद आ रही है दादी।'

'ले लेना नींद भी, खा तो ले थोडा।'

'भाई को भी जगाऊँ?'

'नहीं-नहीं, कच्ची नींद मे उठाया कहीं तो रोता फिर वह थमेगा ही नहीं।'

भूख का वेग कम तो किसी के न था पर घुलती नींद, उछलती रेत और रात के विलम्ब ने उसे विकलाग बना दिया था । दुबक कर पडे रहने के सिवा किसी को कुछ भी तो नहीं सुहाता था। आँतो की माग रह-रह ऊँची आ रही थी।

रोटी-डेढ रोटी, जितनी जिसके हिस्से मे आई, झडका-झडका हरेक ने हाथ मे ही ले ली। डोकरी ने तू-तू कर भूरी को भी बुलाया। पूछ हिलाती वह भी आगई । एक रोटी डोकरी ने उसे डालदी, मुँह मे लिए वह दूर चली गई और धीरे-धीरे खा वहीं पसर गई।

डोकरी ने कहा, 'सब्जी पर तो, रेत चढी होगी, सुबह ही सम्हालना उसे तो, रोटिया चबा-चबाकर खाई और स्वाद उनका लिया तो खा नहीं सकोगे उन्हे।'

'तब दादी, निगले कैसे उनको?' पूरी ने पूछा।

'बेटी, रोटियो मे रेत और किर-किर हो तो स्वाद और चबाने का मोह छोड देना चाहिए। उनको तो कामचलाउ कुतर-कुतर पानी के घूट के साथ गले उतार लेना चाहिए, आँतो मे थोडी चेतना बापर-जाएगी तो कुछ नींद भी आ लेगी।'

यही किया सबने। रोटियो मे रेत तो पानी कौनसा बिना रेत के था। हरेक पेट में कितनी रेत उतरी, इसकी न किसी को चिन्ता और न इस ओर ध्यान ही किसी का। खा-पी सब पसर गए अपनी-अपनी रेत पर।

सुबह लेली किसी तरह।

सुबह उठकर, बहू ने पीपा खोला। आटे का गोला सारा रेतिया हो गया था। केवल पेदा ही उसका रेत रहित रह गया था। आटे पर भी रेत की थर चढी थी। उसके जी मे आया, रेतिया थर जमा ऊपर-ऊपर का चून तो फैंक ही दू और गोला दे दू किसी गाय के मुँह मे, पुन्य होगा । अगले ही क्षण एक विचार उतरा मन पर, इस तरह करने से तो चून आधा ही रह जाएगा, फिर तो सब का पेट ही नहीं भरेगा। गई रात तो आधी

भूख निकाली ही थी सभी ने, अब और निकालो। फेंकने और देने का विचार उसका हवा हो गया । गोला और चून मिलाकर सारे की रोटियाँ सेकली उसने।

'भूख मे किवाड ही पापड,' मिला वह अमृत, पेट की आग शात करनी थी, कर ली सबने। इच्छा और स्वाद बडबडाते रहे, भूख ने उस ओर फूटी आँख भी नहीं ताका। गई रात की सब्जी को देखकर बहू ने पूछा था, 'यह सब्जी तो देखो माजी, झोल तो इसका रेत सोख गई, प्याज और बडिया भी रेत मे ही डूबी है, फैकदू इसे?'

'पर इस तरह फैंकी कब पौसाएगी?' सब्जी की ओर देखते डोकरी ने कहा।

'तो क्या करू इसका?'

'एक लोटा पानी गरम कर, डाल इसमे?'

'फिर?'

'फिर बडिया चुगले उसमे से, चाहे तो एक पानी और निकाल ले उनसे। उन पर थोडा नमक बुरका लेगे, तो नहीं-नहीं करते दो रोटियाँ तो कोई खा ही लेगा उनके साथ।' यही हुआ बडिया काम मे ले ली गई।

रात को पटरी से उतरी गाडी प्रात पटरी पर फिर आ लगी, सरकी फिर से खडी करली गई।

दोपहर मे माँ-बेटा बैठे थे। डोकरी ने कहा, 'दीनू, यह पख तो यहीं पूरा करले किसी तरह, फिर तो घर चलने मे ही लाभ है।'

'जेठ तो समूचा यहीं काट लेते माँ ?'

'जेठ ही क्यों, काट तो अषाढ ही लेते, पर बहू पूरे दिनो पर है, यह भी तो ध्यान कर। जगल का मामला है, रात-विरात ढोल पीटे तब भी यहाँ कोई कान देनेवाला नहीं। और तो और यहाँ तो अजवाइन के चार दाने भी मौत से अधिक महगे समझ तू। भगवान न करे कल को कुछ हो जाय तो भाई-बिरादरी मे कैसे तो होठ खोले और कैसे रखे नाक? जीने देगे लोग? रही दो दिन मजूरी की बात, वह लिखी होगी तो दस-पाँच दिन गाँव मे हीं कहीं नहीं जाएगी।'

'तो फिर चले-चलेंगे माँ।'

दिन ज्यो-ज्यो निकलने लगे, मानिया की दशा त्यो-त्यो बद से बदत्तर होने लगी। आधी-चौथाई रोटी कभी कुतरली तो कुतरली नहीं तो उस ओर अरूचि दिखाते आँखे फेरलीं। कभी पानी जैसा दस्त लग गया और कभी पेट गुमशुम होकर तूम्बी की तरह ऊपर उठ गया। रक्त कम, शरीर लुगलुगा और चमडी पर पसरती सलवटे लगती थी असमय मे ही जैसे बुढापा उतर आया हो उसपर, आँखो से पीडा झाकती और चेहरे से उदासी। ढाँचा दिन-दिन धसता लगता।

उसकी ऐसी हालत देख, दुख मे डूबती डोकरी ने पूरी से कहा, 'बेटी, एक बात कहूँ?'

'कह दादी।'

'भाई को तू देख ही रही है ?'

'हाँ।'

'जीना-मरना तो हरि के हाथ है, पर है तब तक सेवा तो अपने को जी-जान से ही करनी होगी?'

'हाँ दादी।'

'पर बेटी करेगा कौन, माँ तेरी दो जीवो-से है, बेचारी। टेम अपना टसक-टसक कर निकालती है, बाप तेरा आटे-दाल की चिन्ता मे उलझा रहता है, और मैं पका पान, अपना किरिया-धरम भी मेरे से तो पूरा पार नहीं पडता। छोरे की सेवा करनेवाला सिवा तेरे, हमारे में तो कोई है नहीं। आगे-पीछे मुझे तो तू दिखती है। छोरा खडा होजाय किसी तरह तो, ढोल बजाएँ हम।'

उसने दादी की कही सब सुनली । अब वह पहले से सजग भी अधिक हो गई और चिन्तित भी अधिक।

यहीं किसी सयाने ने सलाह दी थी कि छोरे को बाजरे का दलिया चटाओ, नमक उसमे औसत से कुछ अधिक डालकर। ऐसा ही किया गया--एक बार नहीं कई बार। घोडे को पानी पर तो कई बार ले जाया गया, पर पानी के उसने मुँह भी न लगाया, सवार क्या करले? माँ-बाप और दादी सिर पटक-पटक कर रह गए पर छोरे पर कोई असर न हुआ। भाई की ममता मे पूरी भी कोशीश कर धापी, पर दलिए की तरफ न आँखे ही उठाता और न हाथ ही। उपाय ढूँढने में कसर उसने भी नहीं रखी, पर सूत्र कोई भी उसके हाथ न लगा। उसे उदासी ढकने लगी।

दोपहर का समय था और धूप थी चिलचिलाती। रोटी सबने खा ली। बहू सरकी मे लेटी थी। पास उसके मानिया पडा था नगी रेत पर नगधडग--उदास और अपने मे खोया। न वह करवट ही बदल पा रहा था और न कोई नींद की झपकी ही उतर रही थी उस पर। आँखें कभी सरकी की छत पर टगाए रखता, थक जाती जब बन्द कर लेता। बैचेनी अपनी वह अभिव्यक्त नहीं कर पा रहा था।

जगल के पेट मे पूरी ने तीन दिन पहले कई ऐसे खेजडे देखे थे जिन पर पीले खोखे झूल रहे थे। किसी-किसी के नीचे उसे पाँच-सात सूखे खोखे नीचे गिरे हुए भी मिले। उसने उठा-उठाकर कई खोखे चखे और तत्काल थूक दिए। खोखे एक अगले खेजडे के उसे लगे गुड की तरह बडे मीठे। उसने सोचा, इस खेजडे के खोखे दो-तीन दिन बाद सूखकर गिरेगे जरूर, तब मैं आऊँगी और चुन ले जाऊँगी उन्हे।

इस समय उसके मन पर सहसा बडी तेजी से रेगा, 'अरे, वे मीठे खोखे आज तो गिरे हुए वहीं मिलेगे खेजडे के नीचे। जल्दी से चुग लाऊँ उन्हे। मानू को एक खोखा खिलाकर कहूँगी, 'ले पहले इतना-सा दलिया खा ले फिर खोखे तुम्हे खूब सारे दूँगी।' इस लोभ मे दलिया वह थोडा-थोडा खाता रहेगा और खोखे दो-दो मैं देती रहूँगी। काम फिर बना ही समझो। भाई के रोग निवारण का सूत्र जैसे पा लिया हो उसने। उसे लगा ऊहापोह से अन्धियाती उसकी चेतना पर आशा की एक नई किरण फूट पडी हो। भाई का सुनहरा भविष्य उसके हृदय अजिर पर नाच उठा अप्रत्याशित और वह जुड गई उसके साथ

अभिन्न होकर।

वह तुरत उठ खडी हुई। पानी का लोटा लिया, तसला सिर पर रखा और दादी की बीमार जूतियाँ पैरो मे डाल जगल की ओर चलदी।

डोकरी उस समय सरकी से कुछ दूर एक खेजडे की छाया मे माला लिए बैठी थी। दीनू घडे से लोटा भर, पानी पी रहा था। छाया मे वह, दो घडी कमर सीधी करने की सोच रहा था।

'दीनू लोटा थोडा मुझे भी पकडा।' डोकरी ने कहा।

लोटा लिये वह माँ के पास आ बैठा।

पानी पीकर डोकरी ने कहा, 'दीनू हवा तो आज ताले में बन्द-सी लगती है? देख तू, खेजडे के पत्ते भी हिलते नहीं लग रहे?'

'तपेगा तभी तो बरखा की आश बन्धेगी माँ। आकाश पर तैरते बादलो के चूखे देख नहीं रही? गरमी दो दिन ऐसे ही और रही तो बरखा चूकेगी नहीं।'

'अरे भाई आज ही बरस जाय भगवान् तो हल समझले कल ही खडे होजाय। जेठी बाजरी और पहला पूत किसी तकदीरधारी को ही मिलते हैं।'

'बरखा माँ हलकी-फुलकी नहीं, कुछ जमकर होजाय तो मजूरी भी गाँव मे कल ही चल निकले।'

बाते करते-करते माँ-बेटा कब हुए 'निद्रा शरणम्' उन्हे पता ही न चला।

पूरी एक-एक करके कई खेजडो के नीचे गई। खोखा एक उठाया, चखा और चलदी। आखिर एक खेजडे पर रुकी। एक खोखा उठाया, चखा, होठो पर स्वत ही उछल उठा, 'हाँ यही। अरे गुड भी झख मारता है, इसके आगे।'

खेजडे के तल पर काफी खोखे पडे थे। दोनो हाथो से चुनती उसने कोई आध-पौन कीलो खोखे अपने तसले मे भर लिए। सोचा, 'इतने तो बहुत हफ्ताभर निकाल दूगी इनसे तो?'

डेरे से वह करीब एक कीलोमीटर निकल आई थी। प्यास लगने लगी तो पानी पी लिया, तासला उठाया और चलदी। धरती आग उगल रही थी। जूतियो के तले कई जगह से झाक रहे थे। उनमे से होता रेत का ताप, हर डग पर अपनी तीव्रता का बोध करा रहा था। इधर-उधर ताकती वह, कोई छाणा-लकडी भी तासले मे रख लेती। चलते-चलते ध्यान आया, अरे रेत भी तो डालनी है बापू के साथ, डग वह जल्दी -जल्दी भरने लगी।

डेरे आ पहुँची। देह पसीने से नहा उठी। खोखे रख दिए। पानी पीकर बाप के साथ काम मे जुट गई।

दिन दो-ढाई घडी ही और रह गया था। काम पूरा कर वे सरकी पर आगए। सबने खाया-पीया और अपनी-अपनी साथरी सम्हाल ली।

रात्रि के दस बजे होगे। सब नींद मे थे। केवल पूरी की आँखे जाग रही थीं। मानिया टसक रहा था। दम खिच-खिचकर आ रहा था उसे। दम के साथ-साथ कफ बोलता और गला रूधता लगता था।

वह उसकी छाती पर हाथ फेरती कहती, 'मानू नींद ले-ले सुबह खोखे दूँगी, सारे तुम्हे ही दूगी—बडे मीठे हैं—लापसी से भी ज्यादा मीठे, धाप-धाप खाना, सो जा।'

वह समझता जरूर था पर उसकी हाँ-ना कहने की ही नहीं, रोने की शक्ति भी लुप्त हो रही थी, और वह जाग रहा था यह उसकी विवशता थी। मौन और नगा रेत पर पडा था। हृदय पर उसके एक कोमल हाथ फिरता-फिरता कब ठहर गया, होठो पर उछलता प्यार न जाने कब सो गया, पूरी को इसका आभास भी न हुआ। थकावट ने कीलित कर रखा था उसे, न चाहते हुए भी वह नींद के वशीभूत हो गई।

सहसा आँधी आई। कई दिन पहले आई उससे भी भयकर। अन्धेरा गाढा था ही। सिवा तारो के और कुछ भी दिखलाई नहीं दे रहा था। एकाएक गर्द के बादल फैल गए और तारे निरकुश शासन मे सदुपदेशो की तरह ओझल होगए। कानो मे सायँ-सायँ के सिवा कुछ भी नहीं पड रहा था। जगह छोड कर कोई सरके भी तो कहाँ? खेस-चद्दर भी पूरे नहीं। साथरियो के किनारे कट-कट उड रहे थे। काया उनकी छीज रही थी। लगता था आँधी को इनकी यह रेतिया ऊँचाई भी पसद न थी।

घटाभर हो गया उसे चलते।

सरकी उड गई पता नहीं कितनी दूर और नींद भी सबकी उड गई, क्या ठिकाना उसकी दूरी का भी ?

सहसा गडगडाहट सुनाई पडी। सब चौके। सब उठ बैठे। बरखा शुरू हो गई। दीनू सरकी की ओर बढा पर सरकी हो तो? उसी क्षण बिजली चमकी। पीपा उसे लुढका दिखाई पडा । उसे सीधा कर, दीनू ने गुदडी रखी उसके सिर पर—चौलडी करके। बरखा वेग पकडने लगी। पूरी उठ गई। भाई को गोदी मे लिया, बोली, 'दादी कहाँ बैठाऊँ इसे?'

'कहाँ बताऊँ बेटी, भीगने के सिवा कोई उपाय नहीं।'

सारे बैठ गए। देह मानो मेह को सौंपदी हो।

इतनी देर रेत बरसी, अब बरसने लगा पानी। महीनो के अनधुले कपडो के धुलने का योग जैसे आज ही बना हो—वह भी अन्धेरे मे ?

मानिया की दशा दयनीय थी। ओढनी से ढँपे हुए को कुछ देर तो डोकरी ने रखा पर अब ओढनी तर होकर टपकने लगी थी, किसी विरहिन की तरह। ओढनी, ओढनी की जगह, वह खुद भी तो काँप रही थी अशक्त और अवश होकर। ओढनी हटा कर, उसे निचोने लगी किसी तरह, तो मानिया नग्न हो गया दिगम्बर-सा। पानी और पवन का दुहरा प्रहार वह अबोध अशक्त सह न सका। बुखार बनने लगा। सास उसके पहले से ही उखडते चल रहे थे। ऐसे मे पालथी पर लिटाए रखना डोकरी के वश का न रह गया था। काँपते होठो से उसने कहा, 'पूरी भाई को सम्हाल, मेरे से पार नहीं पडेगी।'

भाई का सिर पूरी ने अपनी जाँघ पर टिका लिया और शेष शरीर था उसका ठटी-भीगती रेत पर। वह भीग रही थी शरीर से कम, अन्त करण से अधिक। बादल रह-रह गरजते, बिजली कौंधती। चमक मे क्षणभर के लिए सारे एक दूसरे के सामने

होजाते। साथ मे भय भी सचरित होउठता, यह हम पर ही कहीं टूट न पडे?

बहू बेचारी न लम्बी देर बैठ ही सकती थी और न एक करवट लगातार सोई ही रह सकती थी। कभी लेटी, कभी करवट बदली और कभी उठ बैठी। नीचे गीली रेत, ऊपर बरसता आकश, देह अस्वस्थ और उस पर चिपचिपाते गीले वस्त्र। क्या निचोए क्या सुखाए, क्या कोई उपचार की बूद ही पल्ले पडे वहाँ ? बेचैनी बढ रही थी। समय कटना मुश्किल हो रहा था।

यही हाल दीनू का था। दियासलाई और बीडियाँ भीग गई थीं। कमीज खोलकर एक किनारे रख दिया उसने। कोछे टाँग लिए। धोती तर हो जाती तो आधी पहने रखता और आधी निचोडता। इस पहन-बदल से वह ऊबने लगा, पर बरखा थमने का नाम ही नहीं ले रही थी।

अदाज था, रात आधी से अधिक सरक चुकी है। बरखा पडने लगी धीमी और हवा हो चली शान्त। आकाश की ओर देखते दीनू ने कहा, 'माँ, आकाश का अफरा अब, बहुत-कुछ झडता लगता है?'

'निहाल होजाएँ भाई, बुरा हाल हो रहा है,' डोकरी ने धीरे से कहा। देखते-देखते बरखा बूदाबादी मे बदल गई। कुछ देर आकाश और टपका, फिर वह भी बन्द। सहसा पूर्वी क्षितिज पर कुकुम राग बिखर चला। किरणे हँसी और धरा आलोकित हो उठी।

पूरी की पालथी सो गई थी। टाँगे झनझना उठी उसकी, लगा, 'चला जाएगा कि नहीं?'

भाई से कहा उसने, 'मानू, उठेगा नहीं? देख, सूरज निकल आया ?'

एक उडते क्षण के लिए भाई की पलके उठीं–बहिन की ओर, और उसी क्षण गिर गईं वे। शायद इसी आवाज के प्रतीक्षा मे ही उनके उन्मेष का अन्तिम स्फुरण अटका था उनमे–फिर वे न हिलीं, न उठीं।

'मानू, खोखे दू, आँखें खोल,' भारी कठ से फिर कहा उसने।

पर उसके न होठ ही हिले और न पलके ही उठीं।

'दादी,मानू को देख तो, आँखे ही नहीं खोलरहा वह?' व्यग्रता से कहा उसने।

डोकरी आई, उसकी ठुड्डी दबाती कहने लगी, 'मानू, आँखे खोल बेटा, मुँह मीठा कराऊँ तेरा?'

उसने उसके पेट पर अपना ठढा हाथ रखा, छाती पर भी फिराया, उसके शरीर पर उसे मौत की छाया का अधिकार हुआ लगा, पर ऐसी मनहूस आशका वह एकदम से कैसे कर ले। अपना परीक्षण ही सदोष लगा उसे। मोहजनित उन्माद पसर उठा उस पर।

उसने दीनू को आवाज दी 'छोरे को देख तो रे, जी पापी है, कुछ और ही सोच रहा है ? शरीर ठढा लगता है, मेरे ठढे हाथो के कारण ही तो ऐसा नहीं?'

दीनू आ गया। एक मिनट भी न लगा उसे, समझ गया वह।

धीरे से कहा उसने, 'माँ, लोथ है यह तो ?'

'अरे यह तो मैं पहले ही जानती थी पोता रहे ऐसी तकदीर कहाँ? हे रामजी, यह क्या हुआ?'

एकदम से फूट उठी वह। शान्त वन प्रान्तर की नीरवता एकाएक टूट गई इस क्रन्दन से।

'अरे मानू अरे मेरा भाई,' पूरी फफक-फफक बुरी तरह रोने लगी।

माँ की क्यो पूछो, दुख मे दुख। चीखने के सिवा कुछ भी याद न रहा। रात को बरसा अचेतन आकाश, अब आँखों के अचेतन आकाश की बारी है—ऐसा लगने लगा। आँसू धरती पर और चीख हवा पर। पक्षियो का चहचहाट भी चीख मे ही योग दे रहा था। जगल की छाती पर करूणा उतर आई।

दस-बीस मिनट रो लिए वे, पर धीरज वहाँ कौन बधाए?

आखिर डोकरी को ही कहना पडा, 'बहू दोष किसको दे, करम अपने ही पतले थे, रो-पीटकर क्या कर लेगे हम? रोते रहो, लाख जतन करने पर भी वह तो अब आएगा नहीं।'

बहू तो चुप होगई किसी तरह पर पूरी का हाल बेहाल था। वह लाश की ओर झाक-झाक रोती कहती, 'अरे मेरा भाई, अरे मानिया? अरे बोलता क्यो नहीं, क्या हो गया तेरे? मेरा लाया, अरे एक खोखा तो चख तू?' पर राज इसका तब भी उसकी समझ पर कहीं भी रेग नहीं पा रहा था। वह सोच रही थी कि देखते-देखते प्राण उसके कैसे सरक गए? सरके किधर से? गए कहाँ? कुछ भी तो नहीं दीखा। शरीर सामने पडा है, वे ही आँखे, वे ही होठ, आवाज देने पर भी नहीं खोलता उन्हे। इस अनुत्तरित पहेली मे वह विस्मित-सी खोई थी। लाश पर आँखे गडाए बिलखती हुई वह कराह उठती, 'अरे मेरा भाई, अरे मानू?'

डोकरी ने समझाया, 'बेटी ऐसा न कर, सयानी है तू। भाई, तेरा होता तो रहता नहीं? बदला चूकने के लिए आया था, व्याज समेत सारा चूकलिया उसने। अपने माँ-बाप मे तो वह माँगता कम था, मेरे में उनसे ज्यादा, और तेरे मे सबसे ज्यादा। कितनी चौकसी रखी मैंने इसकी? कितनी तू फिरी गोदी मे लादे-लादे इसे? धोया, पोछा, साथ सुलाया, सब गया धूल मे, पर उपाय क्या? रो मत, जा पता लगा, सरकिया किधर उडीं?'

आज्ञा उल्लघन करना उसने सीखा ही नहीं था। सजल आँखे और भारी मन, वह सरकियो की टोह मे चल पडी।

डोकरी ने दीनू को डूबती आवाज मे कहा, 'बेटा, इस माटी को अब कब तक रखे रहेगे? ठिकाने तो लगानी ही पडेगी।'

वह तैयार तो हुआ, पर दिगम्बरो के गाँव मे धोबी कहाँ? कफन वहाँ कहाँ? उसने अपनी मैली और भीगी चद्दर का डेढ-दो हाथ का एक टुकडा फाड़ा, लपेटा उसमे और उठाया, फावडा लिया और चल पडा—बोझिल मन। भूरी भी चलदी उसके पीछे-पीछे। दीनू का उस तरफ ध्यान नहीं था। वह अपनी धुन मे बढा जा रहा था। डेरे से कोई डेटसौ-डग दूर वह आक और खींपो की ओट मे जा पहुँचा। शव एक तरफ रख दिया। एक आक की बगल मे गड्ढा खोद शव उसमे रख मिट्टी देदी, मिट्टी के प्रेमी पर। मिट्टी में बाहभर की आक की एक लकडी गाडदी—करीब आधी। उसे देख कोई भी आदमी समझले

कि यहाँ कोई बाल शव गडा है।

मिट्टी देकर एक बार वह वहीं बैठ गया--दो मिनट। सोचने लगा, 'धरती पर आकर इस बेचारे ने क्या देखा--सिवा भूख और पीडा के? जीभर तो यह माँ की छाती भी नहीं चूघ सका कभी? चूघता भी कहाँ से, लटकती-पिचकती चमडी मे रखा ही क्या था? पेट मे अन्न ही पूरा नहीं, तो दूध चमडी मे थोडा ही निपजता? रेत पर सोया, नग-धडग रहा, अन्न-पानी हाथ पडा तो ठीक, नहीं तो दो-चार फाके रेत के ही मार लिए। कभी हँसा नहीं, कभी मुस्कराया नहीं। किस पर हँसता? मुस्कराता किस पर? न पेट मे कुछ और न शरीर पर ही। दुनिया देखने आया था, देखकर धापगया तो चल दिया।' आँखे उसकी सजल हो उठी और वेदना तीव्र। फिर विचार आया, 'हमारी भी क्या दशा है? कफन का टुकडा भी दुर्लभ? कफन तो कफन की जगह, यदि माँ-पत्नी, कोई भी चल बसती इस समय तो लाश पर पिंड रखने के लिए पीपे मे पाव आटा मिलना मुश्किल हो जाता।' आक्रोश और अन्त पीडा से विक्षुब्ध हो उठा--मानस उसका पर प्याले मे तूफान का प्रभाव ही कितना? वह उठ खडा हुआ और चल दिया। दो-चार डग ही रखे होगे, भूरी की कू-कू उसके कानो से टकराई। आँखे उधर उठी। भूरी, शव पर चढी मिट्टी को पजों से कुरेदती दीखी उसे। वह उधर भागा, और उसके होठो पर उछला, 'अरे, तू यहाँ कहाँ से आगे आ ?' फावडा तानते हुए उसे भगाया। मिट्टी ठीक की। बडी मुश्किल से उसे अपने आगे डेरे आया वह। आकर माँ को यह सब बताया उसने।

डोकरी ने कहा, 'यह भी तो अपने साथ ही रहती है और साथ रहने से ममता हो ही जाती है--रोग इसके वश का नहीं, जानवर है तो क्या हुआ? एक-दो दिन, जब तक हम हैं यहाँ इसे रस्सी से बाँधे रख, थोडा भी मौका मिला इसे तो यह सीधी उधर जाएगी--क्या पता लाश को बाहर खींच लाए?'

और भूरी उसी समय बधगई, सरकी के एक खूटे के साथ।

पूरी आँखे इधर-उधर तरेरती बढती गई। चलते-चलते एक जगह वह सहसा रुक गई। एक बेरटी नीचे कोई पक्षी शावक मरा पडा था। एक कमेडी उड-उड़ उस पर घेरा डालती, कू-कू कर बडा विलाप कर रही थी ।

उसकी पीडा को आत्मसात करती वह सोचने लगी, 'मेरे भाई की तरह ही इसका बच्चा भी गया,' कमेडी की ओर झाकती वह भी द्रवीभूत हो उठी। वह वहाँ कुछ ही क्षण रुक सकी, आगे बढ गई उदास-उदास। पाँच-सात कदम ही चली होगी, उसने देखा, एक घौंसला औंधा पडा रेत चाट रहा है। वह समझ गई, घर इसी कमेडी का है। व्यथा उसकी फिर ताजी हो उठी। वह रुकी नहीं, चलती रही। दृष्टि सचेष्ट थी। कुछ ही कदम आगे सरकियाँ दिखाई दीं उसे। उनमे से एक, किसी मोटे आक के सहारे लगी थी और दूसरी को एक गहरी खींप ने रोक लिया था--आगे बढने से।

धूल झडका-झडका गोल करती सरकिया उसने समेटलीं। सिर पर रख उन्हे, डेरे आ पहुँची।

बाप-बेटी ने भिन्न डेरे को फिर वही आकार दे दिया जो पहले था ।

उदासी ओटते, पूरी ने डोकरी को कमेडी की दीन दशा का आँखो देखा हाल सुनाया।

डोकरी के होठों पर सहज ही फूट निकला, 'बडा बुरा हुआ बेटी, वह तो पडोसिन है अपनी। पो फटने से थोडा पहले मैं रोज उधर निकलती। डाल पर बैठी वह कू-कू कर अपनी सुरीली तान छेडती। मैं वहीं बैठ जाती और सुनती रहती उसकी राग-परभाती, बडी भाती मुझे। लोटा माजती तब तक सुनती रहती मैं उसे। मन करता कुछ देर और बैठी रहूँ वहाँ। कई बार मैं, आधी-चौथाई मुट्ठी बाजरी के दाने भी बिखेर आती–बेरटी के नीचे, मुझे देखते ही वह मेरी ओर ताकने लगती। वह मुझे पहचानने लगी थी। तेरी माँ की तरह वह भी तो माँ ही थी। अपने मुँह खोलते बच्चे को सेती-सहेजती वह कितनी राजी होती होगी, पर बेटी थी वह अपनी तरह अभागिन ही। बेटा गया और घोसला भी। घोसला तो खैर फिर बना लेगी पर बेटा कहाँ?'

'दादी उसकी आवाज मे बडी पीडा बिखर रही थी।'

'बिखरे तो बिखरे, रो-पीटकर अपने आप रह जाएगी । उसे धीरज बधानेवाला कौन? यह खासियत तो आदमी जात मे ही है बेटी, पर पशु हो चाहे पक्षी और हो चाहे आदमी सुख-दुख सबका एक ही जैसा है।'

दीनू भी इनके पास आ गया। सभी गुमसुम बैठे थे। खाने-पीने का मन ही नहीं तो चूल्हे की चिन्ता किसे?

आखिर डोकरी ने सोचा यो कब तक बैठे रहेगे? उसने सबकी ओर देखते अपना भोगा-परखा अतीत उधेडते कहा, 'लाडलो, कितना ही रो लो- धो लो चाहे, पेट की आग तो बिना उसमे कुछ डाले बुझेगी नहीं। काया तो पोखनी ही पडेगी। भूखे रहकर प्राण छोडदे चाहे, वह जीव तो अब आने से रहा?'

उसने पूरी की ओर इशारा करते कहा, 'उठ बेटी, यह रोना तो जीवनभर ही चलेगा, अब थोडा चूल्हा भी सम्हाल?'

वह उठकर ज्यो हीं जाने को हुई, डोकरी ने फिर कहा, 'बेटी चूल्हा तो बाद मे सम्हालना, पहले पीपा सम्हाल, पोने के लिए भी कुछ है कि नहीं उसमे?'

'पर दादी, पहले ईंधन तो बटोरू, छाणे थे वे तो बरखा मे गल-गल रेत होगए सारे?' पूरी ने सतुलित स्वर मे कहा।

'हाँ बेटी पहले ईंधन।'

पूरी तसला उठाए जगल की ओर चलदी।

गुदडी और खेस चद्दर झडका-झडका सूखने को डाल, सास-बहू भी धूप मे खडी होगई–अपने पहने हुए कपडे सूख जाए इसलिए।

अमावस्या थी। काम आज बन्द था। मजदूर कोई नहीं आया, लेकिन मेट अध-पहर दिन चढते-चढते रात मे हुए नुकसान का अन्दाज लगाने आ पहुँचा। उसे देखते ही सास-बहू तरकी से थोडा हट, शोक सतप्त मुद्रा मे सिमटती बैठ गई। दीनू के चेहरे पर उदसी थी ही।

मेट ने सहज भाव से पूछ लिया, 'दीनू रात तो बडी तकलीफ रही होगी?'

'तकलीफ मे ही जन्मे हैं साब, जाएँगे भी तकलीफ मे ही।'

'अरे, ऐसी क्या बात हैं ? आँधी-मेह की तकलीफ तो दीनू, घरो मे ही पीछा नहीं छोडती–यह तो जगल है?'

'तकलीफ आँधी-मेह की नहीं साब?'

'तो?'

'छोरा गुजरगया।'

'छोरा?' आश्चर्य बिखेरते उसने कहा।

'हाँ।'

'कब?'

'अभी सुबह–सुबह ही।'

'कैसे?'

'थोड़ा-बहुत बीमार तो वैसे रहता ही था। रातभर भीगता रहा, बुखार बन गया। बरखा और अन्धेरे मे जाते भी कहाँ? सरकियाँ भी किस्मत से–झझा मे कहीं दूर जा गिरीं। दम उठने लगा। हमारे पास तो सोठ का टुकडा भी नहीं, क्या देते? तकदीर की बात, माटी थोडी देर पहले ही देकर आया हूँ।'

'राम, राम, फिर तो बहुत बुरा हुआ दीनू,' उदास होते उसने कहा।

वह दो कदम आगे सरका और चुपचाप बैठी सास-बहू के पास जा बैठा। बैठते ही वे विलाप करने लगीं। डोकरी का क्रन्दन ऊँचा होकर फूटा, 'अरे, मानिया बिना कहे ही, कहाँ चलागया। अरे कहाँ खोजू तुम्हे?' बहू का क्रन्दन तो और भी करूणापूर्ण था, 'अरे, कल तक तो तू, छाती से चिपका हुआ था, आज कौन ले गया तुम्हे? छोरी किसे कहेगी, मानू, भाई मेरा?'

मेट द्रवित हो उठा। उसने धीरज बधाते हुए कहा, 'दादी, जाने के बाद, सिवा धीरज रखने के और कोई उपाय दुनियाँ मे है ही नहीं, चुप हो जाओ। यहाँ तो बदला अपना चूका और चला, नियम ही ऐसा है, किसकी ताकत जो इसमे जरा भी हेरफेर करदे?'

उसने उनके अधगीले कपडे और उन पर चिपकी अधगीली रेत देखकर कहा, 'दादी, यह तो हुआ होनहार का किया, पर तुम दोनो कपडे तो बदल लेतीं, बीमार पड गईं तो यहाँ टहल-चाकरी भी कौन करेगा तुम लोगो की?'

'पड जाएँगी तो ठीक है जजमान,धरती से भार हटेगा, भीड कुछ कम होगी?'

'पर दादी, जीवन म ऐसी निराशा भी क्या काम की कि गीले कपडे भी न बदलो, बीमारी जानबूझकर मोल लो? समझदार हो'तुम तो?'

डोकरी अपनी दुरवस्था का ससार मेट के आगे उजागर करना नहीं चाहती थी पर उसके बार-बार पूछने पर, उसके होठो पर बरबस आ उछला, 'जजमान बदले क्यो नहीं,पर आप जानते हैं कि अभाव भाठे से भी काठा (कठोर) होता है?'

समझदार को इशारा ही काफी। मेट इतने मे ही सब कुछ समझ गया। उसने सोचा,

'यह पूछकर गलती की मैंने?' वह आत्मग्लानि से भर गया, लज्जा से सिमटी, मिट्टी-सनी और जीर्ण-शीर्ण वस्त्रावृत्ता उन दोनो की ओर देखने लगा। ओढनियो पर कई जगह, गाँठे पडी दिखाई दीं उसे। उसे लगा यहाँ इनके पास बदलने के कपडे तो दूर, सूई-डोरा भी तो नहीं? आई हैं बेचारी दिन कट जाएँ किसी तरह? कितना खटते हैं, पर बदलने के लिए फटा-पुराना कपडा भी नहीं इनके पास? किसका कसूर है यह? इन्हीं का या राज और समाज का?

वह ज्योंही अपने मे उलझने लगा, डोकरी ने धीरे से कहा, 'जजमान, अब तो हम गाँव जाना चाहते हैं।'

'बालक चल बसा इसलिए?'

'नहीं, बहू सोनेवाली है।'

'तब तो जाना जरूरी है दादी, हफ्ता कल सुबह ही दिला दूगा।' उठते-उठते उसने चूल्हे की ओर देखा, वह भी उसे नख-शिख उदासी ओढे ही लगा। उसने सोचा, 'आज का दिन तो इन दुखी लोगो का आँसू पोछने मे ही बीतेगा, रोटियाँ ये क्या सेकेगे?'

उसने कहा, 'दादी, अभी रोटियाँ सेकने की तकलीफ मत देखना, मैं भिजवा दूगा।'

'रोटियाँ आपकी ही हैं जजमान, देर-सबेर हम सेक लेगे।'

'अरे नहीं, मैं भिजवा रहा हूँ।'

वह चल दिया।

रोटियाँ कुछ देर बाद आगई। आग पेट की बुझाली सबने। अगले दिन हफ्ता सुबह मिल गया इन्हे।

दस बजते-बजते सबने खा-पी लिया। पानी का लोटा भर लिया। धरती को नमस्कार करती डोकरी बोली, 'माता, तेरी गोदी मे दुख के दिन काट लिए, मेहरबानी मे तेरी कोई कमी नहीं रही—छोरा गया, यह हमारा करम, तू क्या करे? हे लछमनजी, आपने तो बडा हाथ रखा सिर पर, साँप-बिच्छू तो दूर, काँटा भी हमारे तो पास तक नहीं फटका।' और चल पडी वह लोटा लिए।

भूरी बन्धी थी, ज्योंही खोला उसे, उसने आँखे तरेरी इधर-उधर। उसे कुछ अभाव खला। मानिया जाग उठा उसकी स्मृति पर। कू-कू कर, जमीन सूघती वह, उसी स्थल की ओर चल पडी जिधर मानिया का शव गडा था। दीनू ने लठिया दिखा-दिखा अपने साथ किया। दादी-पोती सजल हो उठीं।

पीपा खाली, खाली ही एक डिब्बा और खाली ही एक शीशी उसमे। पूरी की गोदी भी खाली और उसकी खुशी भी। आँखे ही केवल भरी थीं उसकी। सिर पर पीपा था। वह चल रही थी उदास-उदास। दीनू ने तीन कपडे गठडी बना कर कन्धे से लटका लिए। एक गुदडी जर्जरित होकर बिखरने लगी थी वह वहीं डालदी उसने।

धूप तेजी पकड रही थी, पर हवा अभी उतनी गरम नहीं हुई थी। मार्ग मे कहीं-कहीं हल चलते दिख रहे थे।

डोकरी ने कहा, 'दरखा मे कित्ती तकलीफ पाए हम?'

'पूछ ही मत माँ?'

'पर देख, हल चलने लगे, हफ्तेभर बाद ही धरती हँसने लगेगी।'

'हाँ।'

'सपूत की कमाई मे सबका सीर, उसकी हँसी मे सबको सुख।'

'पर पहले उसने तकलीफ भी तो कितनी सही है—आँधी और गरमी की?'

'क्या ठिकाना है उसकी तकलीफ का? इस तरह क्या हम भी कभी तकलीफ की मार से उबरेगे?'

'क्या कहूँ माँ, यह सब तो रामजी को ही मालूम।'

'कहते हैं, दुख के बाद, सुख आया तो करता है?'

'सुना तो मैंने भी यही है।'

कुछ आगे चलकर, रेवड की टोकरियाँ सुन पडीं।

उसने कहा, 'टोकरियाँ सुन रही हो माँ?'

'हाँ, सुन रही हूँ।'

'कितनी सुरीली हैं?'

'हैं तो सुरीली, पर है टोकरियो मे बधी एक ही आवाज, किसी के सुख-दुख की पहचान उसमे नहीं।'

थोडा और आगे, तेजा की टेर टकराई कानो से।

दीनू ने कहा, 'माँ, कोई तेजा गा रहा है—हल पर हाथ रखे।'

'हाँ सुनाई दे रहा है रे।'

'कैसा लग रहा है।'

'इसमे हलवाहे की खुशी फूट रही है बेटा! वह धरती के रस से उपजा सुर है दीनू। इसे मिठास तो खैर है ही, पर धरती-माता से आदमी का लगाव भी कम नहीं है।'

माँ-बेटे का वार्तालाप पूरी के फलक पर अनायास ही अकित हो रहा था ।

तालो मे कई जगह पानी छितरा हुआ दीख पड रहा था। उधर देखते हुए डोकरी ने कहा, 'इस हिसाब से तो दीनू गाँव मे भी बरखा अच्छी होनी चाहिए ?'

'लगता तो यही है माँ?'

वहू उदासी ढोती धीरे-धीरे चल रही थी। शरीर मे शिथिलता, गर्भ मे बच्चा और सात कोस का लम्बा रास्ता । वह अपनी किस्मत को कोसती सोच रही थी, 'प्रभु, दुनियाँ भर का सारा कष्ट क्या एक इसी घर पर थोप दिया और सबसे ज्यादा इस दुर्भागिन पर?' पर उसे क्या पता, दुर्भाग्य की असली ऊँचाई तो अभी शुरू ही नहीं हुई ?

उदासी ढोते, धीरे-धीरे चलते, दिन ढलने से थोडा पहले, वे अपने झोपडे पर आ पहुँचे।

सात

आँगन इतने दिनो मे काफी टूट-फूट गया था। पपडा उसका उतर-उतर जगह-जगह

धूल चमकने लगी थी। गधो की लीद उस पर बहुलता से बिखरी थी। सूखा-अधसूखा गोबर भी कम न था। लगता था आँगन की छाती अवारा पशुओ ने कुचलने मे कोई कमी नहीं रखी।

किवाडी कोई ले गया था। झोंपडे की जड मे कुत्तों ने कई घुरिया करली थीं।

एक घुरी के आगे एक मरा कुत्ता पडा था। होगा कई दिनो का मरा, सूख भी गया होगा पर वर्षा से भीग जाने के कारण दुर्गन्ध वह बडी तीखी दे रहा था । एक अन्य घुरी पर किसी पशु की नोची-खरोंची टाँग पडी थी। 'उसे लेने के लिए कुत्ते आपस मे लडे होगे, एक ने हथिया ली होगी, दूसरे को मरना पडा होगा,' बुढिया अन्दाज लगा रही थी। लडाई तो मरी हड्डी पर भी बद नहीं होती, उसे आश्चर्य था।

आँगन का यह हाल देख, वह घिनौनेपन से भर उठी।

पूरी ने बाप का एक पुराना तौलिया नाक पर लपेटा, और ककाल फैंकने मे जुट गई। ददबू के मारे सिर उसका फटने लगा और दम घुटने।

झोंपडे के आगे काँटे वैसे ही लगे थे । उसे खोला । चूल्हे की राख आसपास बिखरी थी। छत बरखा मे चुई थी। फर्श अब भी सीला था । दो घडे, दो मटकिया और पाँच-सात भाडे जो भी थे सब फूटे पडे थे। ठीकर और ठीकरियो पर फादती कसारिया देख-देख डोकरी को रोना आ रहा था। वह ऊपर झाकी, बिल्लियो ने एक जगह रोशनदान बना रखा था। झोपडा उजाड और सामान सारा उजडा हुआ। श्मशानी शाति और स्तब्धता पसरी थी उस पर। वह सोच रही थी, इससे तो जगल ही अच्छा था।

खटियाएँ निकालीं। खूटी से एक गठरी उतारी। ओढने के कपडे थे उसमे। धूप मे लेजाकर खोली उसे। कसारिया उछल-उछल बाहर आने लगीं। धस्सा और कम्बल छनगए थे। एक खेस ही कुछ ठीक बचा था।

डोकरी पर पश्चाताप उतर रहा था। अपने आपको कोसती, वह मन ही मन कह रही थी कि कितने अभागे हैं हम? जगल मे तो वहा कपडो के दरसन को तरसते रहे और यहा इन्हें देख-देख रोना आ रहा हैं। हम चाहे रहे न रहे पर भूख, अभाव और आँसू, इस घर का आकाश शायद ही छोडे कभी।

घर को ढग का करने मे दो दिन पूरे लग गए। पूरी पानी लाती और गारा-गोबर भी वही करती। अलसाई हुई माँ तो उसकी सुबह-शाम भी बडी मुश्किल से ले पाती। एक-एक दिन वह उगलियो पर गिन-गिन कर निकाल रही थी और सास एक-एक ले रही थी पीडा के वक्ष-कूप से खींच-खींच न मालूम किस तरह, और छोड रही थी उन्हे निराशा से भर-भर गर्दिया आकाश मे गीली लकडियो से निकलते धुएँ की तरह।

अभाव नगा होकर, अलग से नाच रहा था घर पर। वह सोच रही थी, ज्यादा नहीं तो कम से कम पावभर देसी घी तो घर में हो ही। कुछ चाय, चीनी और कुछ गुड-गोंद-अजवाइन तो जरूरी है। कम से कम अधकीलो बनासपति की चिकनाई तो पेट मे उसके पडनी ही चाहिए। घाघरा और ओढनी भी तो उत्तर दे रहे हैं उसके। पाँच-सात रूपए और एक ओढना दाई भी तो लिए बिना कब मानेगी?' फिर घर को देख एक नए जाल मे इस तरह उलझ जाती कि निकलना उसे मुश्किल हो उठता। पानी के लिए दो घड़े, चूल्हे के लिए

दो हाडिया और छाछ-राबडी लाने के लिए एक-एक पारी और कूल्हड तो आज-कल मे ही लाने होगे।

ढिबरी के लिए थोडा किरासीन भी चाहिए,रात-विरात न जाने कब जरूरत पड जाए? रामजी यह सारी रामलीला कैसे पार पडेगी, यह सोचते मन पर भार उसके बढगया।

बहू की ओर देखती तो अनेक आशकाएँ उसे आ घेरतीं, 'लुटिया कहीं डूब गई तो सारा घर ही चौपट हो जाएगा।' और इसी के साथ उसकी सारी चेतना सिहर उठतीं, निराशा से घिर जाती वह।

दिन निकल रहे थे किसी तरह। निर्जला एकादशी आ पहुँची। पूरी सुबह-सुबह ही मुरलीदादा के घर गई थी। झाडू-बुहारी निकाल आई। गाय-बछी का कर घर जाने लगी, तो पडिताइन ने कहा, 'पूरी, दादी के तो आज उपवास होगा ए?'

'पता नहीं?'

'गजानन की माँ जीती थी कभी, तब तो दादी तेरी हर ग्यारस और हर पूनम रखती। आज तो बरस की सबसे बडी ग्यारस है। बडे-बूढो की तो बात ही छोड यह व्रत तो छोटे-छोटे छोरे-छोरियाँ भी रखेगे?'

'कैसे रखना होगा, दादीसा।'

'रखना यही है, आज-आज अन्न मत खाना।'

'राबडी भी नहीं?'

मुस्कान बिखर गई पडिताइन के होठो पर, कहा, 'पगली, राबडी मे तो आटा पडता है, वह अन्न ही तो है?'

'तब?' जिज्ञासा से झाकते उसने कहा।

'तुम्हे थोडा आमरस और सिघाडे की दो पूरिया दे दूगी।'

'रख लूगी फिर तो।'

'दादी भी कर लेगी, उसे भी दे दूगी ले जाना।'

वह घर चली आई।

दादी से कहा, 'दादी,उपवास रखेगी आज?'

'बेटी उपवास अपन तो आए दिन ही रखते हैं।'

'मुरलीदादा की बहू ने कहा है दादी को कह देना, उपवास रख ले, बडी ग्यारस है आज, उसके लिए फलाहार मेरे यहाँ से ले जाना।'

'कहा है तो रख लूगी बेटी।'

'मैंने भी रखा है?'

'अच्छा किया। गॉव मे लोग-बाग आज अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार पनिया घडे और मटकिया बाटेगे। ठढाई, और निकजी पिलाएँगे। कथा-कीरतन करेगे। हुए की बात है बेटी । होता तो हम भी कुछ बाँटते देते-दिलाते भी । पीहर और सुसराल, दोनों जगह ही अकाल, क्या खाएँ और क्या बाटे?'

'इसका मतलब दादी हम तो फिर कुछ भी पुन नहीं कमा सकते?

'बिना कुछ बाटे, पुन कैसे मिले?' क्षणभर रूक वह फिर बोली, 'कमा तो सकते हैं बेटी।'

'कैसे भला?'

'इस गरमी मे किसी पेड मे पानी डालकर, किसी अवारे और थके-मादे पशु को पानी पिलाकर—उसकी पीठ सहलाकर।'

'फिर तो पुन मैं भी लूटूगी दादी।'

'इसमे तो पैसे की भी जरूरत नहीं ?'

'पैसा नहीं, मन चाहिए बेटी?'

पूरी बडी राजी हुई।

ग्यारस रखने की इच्छा पूरी की माँ ने भी जताई पर डोकरी ने उसे यह कहकर मना कर दिया कि 'शक्ति सारू भक्ति', पता नहीं उसे कब सोजाना पडजाए?

पूरी ने रोटिया अधिक नहीं दो ही सेकीं। सवा-रोटी उसकी माँ ने खाई शेष कुतिया ने।

ग्यारस दीनू ने भी रखी थी। अपने मे से आधा-फलाहार डोकरी ने बेटे को दे दिया पर इस कतर-ब्यौंत मे पेट किसी का नहीं भरा।

आठ बजे थे रात के। मुहल्ले से रह-रह भजन-कीर्तन की आवाजें कानों में पड रही थीं। दीनू की इच्छा हुई दो घडी मैं भी सत्सग मे कहीं बैठ आऊँ पर खाली पेट की बेचैनी इच्छा को ढक रही थी । विचार उसने ढा दिया और लेट गया खटिया पर। तभी डग उतावले भरती डोकरी आई, बोली, 'दीनू भाग कर जा-तो, नीमा दाई को साथ लेकर आ—फुर्ती कर।'

वह उठा, पगरखिया पैरों में डालीं और चल दिया पर नीमा नहीं मिली, किसी दूसरे के यहाँ गई हुई थी। वह एक, दूसरी दाई को लिए आ पहुँचा। बात करने को समय नहीं था। दाई सीधी झोपडे मे गई। दिया जल रहा था। एक पुरानी कथा फर्श पर डाली और झोपडा बद कर लिया उसने। कोई दो-ढाई घडी बाद झोपडा थोडा खुला।

दाई ने कहा, 'काकी हुआ तो छोरा है लेकिन बहू के खून बद नहीं हो रहा है।'

'अरे, नाल काटने मे तो गडबड नहीं करदी कहीं।'

'काकी, मुझे तो खेल कमजोरी का लगरहा है, समझ नहीं पडरहा है क्या करू?'

'मुरलीदादा की बहू सयानी लुगाई है, बुलाऊँ तू कहे तो?'

'वह आ जायेगी यहाँ।'

'भरोसा तो यही है।'

'तो जल्दी कर फिर खतरा बढ रहा है।'

हडवडाती डोकरी ने दीनू को कहा, 'बेटा, मुरलीदादा की बहू को लेकर आ, ढील मत कर, रस्सी पैर तले से निकल गई तो चडस कुएँ मे गया ही समझ।'

दीनू पैर तेजी से उठाता हुआ चल दिया ।

फाटक खटखटाता हुआ, फटी आवाज मे बोला, 'दादी, ऐ दादी।'

पंडिताइन बाहर आई, 'कौन है रे?'
'दीनिया हूँ दादी।'
'तू इस समय?'
'बच्चा हुआ है दादी, खून बद नहीं हो रहा है। दाई ने हाथ पसार दिए, तू देखे तो मेहरबानी हो।'
'तू चल, आ रही हूँ मैं–तेरे पीछे-पीछे ही।'
'दादी समझले तेरी ही बहू है वह।'
'बहू मेरी और तू? घबरा मत, कह दिया आरही हूँ।'
'दादी, दीवार ढह गई तो घर गया समझ।'
'इतना अधीर मत हो, तू चल, कुछ दवा-दारू लिए मैं फटाफट आरही हूँ।'
वह चल दिया।
पंडिताइन, अभी, पाँच साल की अपनी दोहिती को लिए सोई थी। छोरी को ओरी (छोटी माता) निकली हुई है। उसने अपनी बेटी को जगाया, कहा, 'उमा, छोरी सोई है, तू आ जा इस खाट पर, मैं थोडा दीनिया के घर तक हो आती हूँ।'
'वहाँ माँ?'
'उसकी वहू कष्टी है ए, बालक हुआ है।'
उसने रूई, डिटोल और एक खुराक अम्बर की साथ ले लिए।
पडितजी बाहर, चौकी पर लेटे थे। नींद आँखो पर अभी उतरी नहीं थी उनके। पडिताइन उनके पगहाने जा खडी हुई। धीरे से कहा उसने, 'जाग रहे हैं न।'
'बोल?' वे खाट पर ही उठ बैठे।
'दीनिया की बहू के बच्चा हुआ है–अभी-अभी। गडबड अधिक है, वह आकर गया है, रूआसा हो रहा था–हो आती हूँ।'
'निर्जला है आज तो?'
'हाँ है न?'
'सुबह चली जाती?'
'अब क्या है?'
'कहा नहीं निर्जला है।'
'घोडी बनौरी की अन्न चाहिए, मालिक कहता है, सुबह ले जाना, क्या मतलब।'
'मतलब समझी नहीं, चमार का घर है–इसलिए कहता हूँ।'
'पीडा भी चमार होती है कहीं? यही पीडा मैंने भी तो भोगी है? वह पीडा तो बाम्हनी थी और यह पीडा चमारी? औरत की पीडा औरत ही समझ सकती है–आपको क्या मालूम है?'
अरे यह तो ठीक है, पर पुण्य तो कुछ न कुछ क्षीण होता है कि नहीं–धर्म-कर्म के ऐसे दिन, किसी अधम का घर धोकने से?'
'क्षीण होता है खोटा तोलते हैं उनका, मिलावट कर-कर लोगों को रोगी बनाते हैं

उनका, चोर, जुआरी-जारो का या गीता-भागवत बेचते हैं उनका या क्षीण होगा परिग्रही, पद-लिप्सुओं और हिंसको का। समझ मे नहीं आया, मेरा क्यो होगा?' उसकी आवाज में कुछ तीखापन था।

पारा पडितजी का भी ऊँचा चढने लगा। वे चिढते से बोले, 'अच्छा, अच्छा, सिर मत चाट, ज्ञान बन्द कर अपना, तेरे को तो सीख की बात कह कर आफत मोल लेनी है, जा-जा, पर नहाकर गगाजल तो लेगी या उससे भी कै होने का डर है ?'

'ले लूगी एकबर नहीं दोबर,' और वह तेजी से रवाना होगई।

राह मे वह सोचती जा रही थी। 'इस बेचारे का तो घर बाढ पर आ लगा है और पडितजी पाप-पुन का लेखा करने मे लगे हैं। पाप-पुन का तराजू मानो इन्हीं के हाथ में है ? कह दिया सुबह चली जाना, सुबह जाकर क्या लूगी वहाँ? झालर बजाऊँगी? निर्जला का दिन और यह बेला, ऐसा सुनहला अवसर तो खोजने पर भी नहीं मिलता। पहचान भी आदमी की ऐसे ही अवसर पर होती है। इसे तो आदमी को ईश्वर की अहैतुकी कृपा समझनी चाहिए।' मन पर उसके उत्साह तैरने लगा।

गन्तव्य पर आ पहुँची वह।

झोपडे में गई। दीपक के निमधे उजास में उसने देखा, प्रसूता अर्द्ध-चेतन अवस्था में है। उसके होठो पर कभी-कभार चीख उछल पडती थी, ज्यादा ऊँची नहीं, 'ओय मावडी, अरे मरी, अरे जी निकला', टीस भरे ये स्वर, झोंपडे के सडे-गले फूस को चीरते हवा पर तैर उठते। पीडा के मारे वह हाथ-पैर पटक उठती। न शरीर की सुध थी और न वस्त्रो की। उसे लगा, पीडा मानो शरीर धारण कर मौत से जूझ रही है। रक्तस्राव से भीगी कथा और एक तरफ पडे असहाय शिशु को देखती वह वितृष्णा से भर गई—विमूढता आ उतरी उस पर। समझ नहीं पा रही थी क्या करे वह? दाई को कुछ पूछा, उस बेचारी ने मुँह लटकाए अपनी असमझ स्पष्ट करदी। रक्त काफी निकल चुका था।

उसने ठंढे पानी की पट्टी रखी पेडू पर, डूश दिया ठढे जल का। सिरहाना कुछ नीचा कर दिया और पायताना कुछ ऊँचा। एक अच्छी-सी खुराक अम्बर की दी उसे। इधर-उधर के कई और यत्नो मे लगी रही वह। रक्तस्राव करीब-करीब रूक गया पर निर्मूल नहीं हुआ। आसार देखते लगता था आँधी निकल गयी, हवा अब अनुकूल चलेगी।

दीपक की टिमटिमाती रोशनी मे नवजात शिशु को उसने बड़े गौर से देखा। दुबला अवश्य पर, तीखा नाक, उन्नत ललाट, सिर पर विरल रोमावलि, पतले होठ, अधमूदी आँखें, न चपलता, न चिल्लाहट, लगता लम्बी समाधि के वाद, चेतना पर इसने अभी-अभी कदम रखा हो जैसे।

भाव-सिन्धु मे डुबकी लगाती वह सोचने लगी, 'एकादशी को धरती पर उतरा यह होना तो कोई महात्मा ही चाहिए। कहते हैं जन्म शाम का शुभ और मौत सुबह की। एकादशी और निर्जला—ऐसे मे देवजाति की आत्माएँ उतरती हैं, धरती पर। तभी तो इसकी सन्त लालसा ने सबसे पहले प्रभु के दर्शन किए, दीप ज्योति के रूप मे, स्तन-पान वह इसके बाद करेगा—सचमुच सन्त है यह।'

और अगले ही क्षण उस पर रेगा, 'महात्मा यहाँ कहाँ? क्या लेगा यहाँ ? भूख, रोग और अभाव के आँगन पर उतरा यह, सुविधा जहाँ सास लेने की भी नहीं ? उबासियो के सिवा और क्या खाएगा यहाँ? जहाँ छाछ का पानी दुर्लभ, वहाँ आँसुओ के घूट पीकर कोई कितने दिन निकालेगा? लगता है, केवल अपनी जोनि पूरी करने आया है यहाँ, कर लेगा दो-चार दिन मे या दो-चार घडी मे, क्या पता कब चलदे?'

फिर ध्यान आया, और तो और की जगह, इसका पोषण करनेवाली, जन्म देनेवाली इसे, आँखे बन्द करले सदा के लिए तो सुनहरी आशाएँ लेकर आनेवाला यह बाल मेहमान अपने आँगन की हवा भी न खा सकेगा, झोपडे मे ही पूरा होगा। धूप के दर्शन भी शायद ही कर पाए। वह सिहर उठी एक बार। आशकाएँ और अन्तर्द्वन्द्व उसके किसी एक निर्णय को पकड नहीं पा रहे थे।

पर शीशे मे नाचते चेहरे की तरह, उसे साफ लग रहा था कि प्रसूता बचनी मुश्किल है। खाने-पीने के नाम पर इस बेचारी को आखिर ऐसा मिलता ही क्या था ? वर्ष बीत गए मुझे देखते, दूध-दही मिलना तो दूर, इसने भर नजर उन्हे देखा भी तो नहीं होगा? जिस दिन साग-रोटी भर पेट मिल गए तो समझो, सौभाग्य उतर आया जीवन मे - दिवाली मनगई, वरना ठढी-बासी रोटी और माँगी हुई छाछ-राबडी, ये ही थे इसके बत्तीस भोजन और तेतीस तरकारी। रोटी है तो साग गायब, और साग है तो रोटी गायब। दिनभर खटना, न शरीर पर ही पूरे कपडे और न खाट पर ही। निर्भय नींद और निश्चित आराम थे ही कहाँ? तब भी दिनभर दौडा करती, मजाल है होठो पर उफ् भी उछले कभी?

खून शरीर मे पहले ही कम था। टूटता लड और टूट गया, रस्सी बिखरने पर आ उतरी। इसी ऊहापोह मे डूबती-निकलती ने बालक की ओर एक बार और देखा। उसके अधीर मन पर नाचा, 'लाख करो किन कोय, डाली टूटेगी, फूल झरेगा और घोसला चीख मे डूबेगा।'पीडा और निराशा उसकी साथ-साथ बढ रही थीं—एक ही वेग से। अपने मे खोई, अध मिनट वह गुमसुम बैठी रही। सहसा आशकाओ के ओसकणो को सोखता-समेटता अपनी आस्था का प्रखर सूर्य फिर चमका उसके धरातल पर, 'अरे, क्यो उलझती है—छोरहीन चिन्ता मे बेकार? जिसने इसे भेजा है, इन्तजाम भी उसका वही करेगा। यह न किसी की चिन्ता से यहॉ आया और न किसी की चिन्ता से यहाँ रूकेगा? यत्न करना चाहिए—चिन्ता नहीं, रखना धैर्य चाहिए—अधैर्य नहीं। उसे अपने दादा का कहा याद आया, धीरो के बसते हैं गाँव और अधीरो के खडे रहते हैं खडहर।' आश्वस्त होती वह बाहर आगई।

उसने डोकरी से कहा, 'गगी चिन्ता करने से तो कुछ होगा नहीं? कारी लगे न लगे रामजी पर छोड, अपना धरम तो कोशिश करना है ।'

गगी, अधगूगी की तरह सुन रही थी और फटी आँखो से देख रही थी उसकी तरफ।

कहने लगी 'मालकिन, दोस किसी को नहीं, किस्मत मेरी धापकर पोची है। आसारो की आवाज तो साफ सुनाई पड रही है कि वह धोखा देगी, दिया बुझेगा और घर पर

अन्धेरा उतरेगा।'

किस्मत अच्छी और पोची का पता, न किसी डाक्टर को लग सकता है और न किसी पंडित को। तुम्हे यह ज्ञान कैसे हो गया? आसारो की आवाज सुननेवाले कान तुम्हारे कब से होगए? आसार बडा कि ईश्वर? सगुन बडा कि श्याम? आस्था की धरती पर बहम नहीं उगाना चाहिए। दीनिया कहाँ है?'

'हाँ दादी,' दीनू ने नजदीक आते कहा।

'चल मेरे साथ।'

कहने की देर थी , वह साथ हो लिया।

पंडिताइन ने आकर उमा को जगाया, फिर उसे अपना मन्तव्य समझाया। उसने दीनू को पाव-डेढ पाव घर का घी, कुछ अजवाइन, सोठ और गुड देकर कहा, 'गगी को दे देना और सुन, पो फटने से कुछ पहले, कोई ऊँट-गाडा लिए गोपालपुरा पहुँच जाना । वहाँ सुमित्रा नरस है। चार महीने हुए सरकारी अस्पताल से नौकरी पूरी कर, घर आई हुई है। मेरा नाम लेकर उसे ले आ। वह यहाँ आजाए तो मुझे बुला लेना। ये ले सौ रूपए।'

आश्वस्त होता वह रवाना हुआ ।

पंडिताइन की पलके नींद के बोझ से भारी होने लगीं थीं। रोगिणी को उसने केवल दवा ही दी होती तो वह आते ही अपना बिस्तर पकड अबतक एक नींद तो अच्छी-सी ले ही लेती। पर रोगिणी के सघन उपचार मे उसे डेढ-दो घटे खटना-जुटना पडा। शरीर तो शरीर की जगह, वस्त्र भी उसके अदूषित न रह सके। नहा-धो कपडे उसने साबुन से धोए। इस चक्कर मे रात आधी से अधिक सरक चुकी, तब कहीं जाकर वह खाट अपनी पकड पाई।

बेटी जाग रही थी। उसने धीरे से पूछा, 'अब कैसे है माँ-दीनू की बहू के?'

'कैसे बताऊँ बेटी, अब तो भगवान ही मालिक है उसका। न उसके शरीर मे बल और न उसके घर मे। धरती पर कदम उसके, पडने और बाकी हैं अभी, तो खडी होजाएगी, नहीं तो मुश्किल है।'

'माँ, बच्चे का फिर?'

'और गगी का फिर? पूरी का फिर? दीनू का फिर? इस फिर का क्या अन्त है बेटी? किस पर, क्या बीत जाए, कौन कहे? बच्चा, माँ से पहले ही चलदे तो कोई आश्चर्य नहीं। भावी के लिए सब दरवाजे सब समय खुले हैं। तू भी सो, मैं भी सो लेती हूँ थोडा, सुबह जल्दी उठना है, एक बार और सम्हाल आऊँ उसे?'

इसी सोच मे आँखें उसकी लग गईं।

सुबह नर्स आगई। बीमार को कुछ दवा दी उसने। ताकत की एक सूई भी लगाई।

पंडिताइन को समाचार मिला वह उससे मिलने रवाना हो गई। पंडितजी उस समय, नहा-धो माला मे बैठे थे। हाथ उनका गोमुखी मे था और मन और कहीं। पंडिताइन जाने लगी, कानो पर उन्हे पदचाप का आभास हुआ। दृष्टि उनकी, उस जाती की पीठ पर पडी। वे तत्काल समझगए, सवारी यह कहाँ जा रही है? सोचने लगे, 'पगली और जिद्दी

औरत है, मुँह जिस तरफ कर लेती है, वापिस मोडना जानती ही नहीं।' एक बार तो जी मे आया उनके, टोकू इसे, फिर सोचा भजन का समय है, बेमतलब की खपत मोल लेकर, सिर चटाने मे क्या निकालूगा? समय और भजन दोनों से जाऊँगा–जाती है तो जाए। माला की चाल मे तो व्यवधान उन्होने आने दिया नहीं पर मन रूका नहीं, गया कहीं। वे झुझला उठे, सोचा, 'यह मन भी साला, पडिताइन की तरह जिद्दी ठूठ है ।'

वे माला मे लगे रहे, पडिताइन गई।

नर्स परिचित थी। पडिताइन को देखते ही उसने कहा, 'पधारो माँसा, शरीर मे इसके खून तो वहुत ही कम है। रक्तचाप मन्द और कमजोरी है अधिक । खून चढे बिना तो काम ही नहीं चलेगा। बडी अस्पताल ले जाने के सिवा और कोई चारा भी तो नहीं और वहाँ का खर्च आप जानती ही हैं ?'

'अरे पूछो ही मत, लगता है गरीबो के लिए अस्पताल कहीं है ही नहीं।'

'इसके पति का खून मेल खाजाए तो बडा सहारा लगे, वरना खून जुटाने के लिए वदोवस्त तो कोई न कोई करना ही पडेगा।'

'जरूर करना पडेगा।'

'हफ्ता-दस दिन वहाँ रहना भी पड सकता है ?'

'पड सकता है तो रह लेगी।'

'दवा, फल और दूध-चाय पर भी काफी कुछ लगेगा?'

'वह तो लगना ही है।'

'हम दोनो की रोटी-बाटी पर भी खर्च तो कुछ होगा ही?'

'क्या-क्या होगा, छोडिए इसे, आप तो मुझे केवल एक बात बता दीजिए?'

'वोलिए?'

'मुझे कितने पैसो का वन्दोवस्त करना है?'

'दो हजार तो एक बार कर ही दे।'

'ठीक है फिर, कल सुवह आप पधार जाएँ जीप लेकर, जीप आपके गाँव मे है ही?'

'हाँ है, आजाऊँगी मैं।'

'दयावती, आपने इतने खर्च बताए हैं तव भी मैं सोचती हूँ, इलाज इस गरीबिनी का जल्दी और सस्ते से सस्ता होगा।'

'कैसे?'

'आप वहाँ रही हुई हैं, आपकी जान-पहचान वहाँ ताजी है और आपका आदर है वहाँ। मेहनताना आपका मैं चुका नहीं सकती तव भी अपनी ओर से पत्र-पुष्प कुछ न कुछ आपको अर्पण करने की इच्छा रखती हूँ - अपने वूते के अनुसार।'

'मुझे देने का तो आप विचार ही छोड दे। अकेला जीव है मेरा, जोडू किसके लिए? आदत अब भी नहीं सुधरी तो कब सुधरेगी?'

'धन्यवाद आप तो केवल इतना-सा ध्यान रखिए कि यह घर दिन की रोटी का जुगाड तो किसी तरह बिठा लेता है, पर रात कई वार पानी पर ही काटता है।'

'अरे आप चाहे न भी कहे, मै तो लिफाफा देखते ही, सारे समाचार भाँप गई।'

न उसने फीस ली और न दवाओ के दाम। पडिताइन ने बडे निहोरे निकाले पर वह टस से मस नहीं हुई।

नर्स को बिदा करके पडिताइन घर आई तब तक, पंडितजी आसन पर ही जमे थे। न उन्होने ही कुछ पूछा और न पडिताइन ने ही कोई बात की। उन्हे दूध का गिलास पकडा कर, पडिताइन घर मे ही इधर-उधर पैसो की टोह मे लग गई। ढाई-सौ रूपए और ढाई-रूपए की रेजगारी मिले उसे। दस सिक्के थे विक्टोरिया छाप। उसकी सास ने दिए थे उसे पग लगवाकर कभी। अब, दिवाली पूजन पर ही काम आते हैं वे। उन्हें उसने नहीं छेडा। रूपए ढाई-सौ उसने लेलिए। वह सोचने लगी, 'इनसे तो छौंक भी पूरा नहीं लगेगा। दस-बीस दिन बाद लडका आएगा—आसाम से। अधिक नहीं तो दो-चार हजार तो लाएगा ही, पर यह तो बाद की बात है। घाघरा चाहिए होली पर, होली निकले वह किस काम का? कैसे करू? पंडितजी को कह कर बिना बुलाई आफत मोल लेनी है।'

दुविधा मे डूबी वह, किनारा ढूढने लगी।

सहसा उसकी आँखो के आगे उस नवजात शिशु का चेहरा घूम गया। विचार आया, 'कहते हैं बालक की माँ मर जाए और बूढे की बहू तो वज्र ढह पडता है दोनों पर। पर बूढा ठौर पडे भाडे की तरह उपेक्षित तो जरूर हो जाता है फिर भी नाव अपनी किसी तरह खे निकालता है। उसके पास अपनी वाणी होती है, अपना विवेक भी और अनुभव भी। पर एक दिन का यह बालक स्तनो के मुँह लगाना भी पूरी तरह नही जानता। ताकत ही उसे तो स्पर्श से मिलती है, धडकन ही उसकी रुदन पर चलती है। न बोलना, न चलना। उसकी माँ चल बसे तो उस पर क्या बीतती है? उसकी पीडा तो उसकी चेतना पर ही अंकित होती है। जानता-समझता केवल वही है। पीडा और अभाव मे मुर्झाता वह शीघ्र ही बुझ जाता है। अगर मैं इस बालक को उसकी जाती-माँ दिलाने में कुछ भी मदद दे सकू तो उस बालक के सुख की ऊँचाई का क्या अदाज और क्या अदाज उस माँ के सुख का जिसकी छाती पर चाँद-सा शिशु लेटा हो। इससे बढकर पुण्य न किसी अश्वमेघ में और न चारो-धाम की यात्रा मे भी।'

उसे याद आया, 'मेरी लडकी गुजर गई थी-बालक अपना दो ही दिन का छोडकर, पर आगे उसने तीन दिन ही मुश्किल से निकाले, चल बसा। सबने सम्हाला, रख-रखाव मे कोई कमी नहीं रखी, पर माँ का स्पर्श, उसकी गर्मी और वह छाती कहाँ?'

फिर उसे रूपयो का ध्यान आया, आज शाम तक कैसे जुटेगे वे ? कह दिया है तो करने जरूरी हैं। कम से कम दो-तीन चेहरे ताकने पडेगे। होसकता है काम तब भी पार न पडे और बेकार मे बात का बतगड बन जाय। विवेक ने कहा, 'घर मे नहीं अखत के बीन, बेटा खेले आखातीज, भावुकता मे क्या कह बैठी, घर तो सम्हाला होता?'

सशय उसका पसरने लगा और कलेजा सिकुडने।

उसे गजानन की माँ याद आई। आज वह होती तो गगी इस तरह मुहताज होती?

सवाल ही नहीं। घर फूक तीर्थ करनेवाली थी–वह औरत। आज उस जैसी औरत आँख पसार कर देखने पर भी नहीं दिखती–गाँव मे और मैं इतनी दुबली, इतनी गई-गुजरी कि उस मार्ग पर कदम रखती भी सौ-सौ सशयो पर झूलू? जड धन के पीछे आए दिन लोग जान मे हाथ धो बैठते हैं और मै जीवन्त धन बटोरने मे भी बौनी बन रही हूँ? बेल बच जाए किसी भी तरह और फूल हँसता रह जाए तभी जीवन का कुछ अर्थ है, वरना बेकार है, गाँव का घूरा उससे लाखगुना अच्छा। उसका निश्चय पुन प्रबल हो उठा।

उसकी दृष्टि अपने गहनो पर गई। मिनटभर वह उनकी ममता मे उलझी रही। सहसा हाथ उसका अपने गले पर गया और वहीं अटक गया। समस्या का हल जैसे उसके हाथ पर स्वत ही आ उतरा हो। ढाई-भरी की एक जजीर है गले मे उसके । हनुमानजी की एक पत्ती लगी है उसमे - मीना की हुई । एक दशक होगया, उसने गले से उसे कभी उतारा ही नहीं । ललाट पर वह रोज बिंदिया लगाती है और रोज ही शीशे मे झाकती है, एक बार नहीं, कई बार। दृष्टि हर बार जजीर पर अनायास ही पड जाती है। भीतर का मोद चेहरे पर आ उतरता है और आँखो पर एक अनाहूत शालीनता नाच उठती है। मरने से हफ्ताभर पहले यह माँ ने दी थी उसे। उसका अपना विश्वास है कि गले पर यह होती है तो माँ के प्यार से चेतना उसकी ढकी रहती है–घर पर मगल बरसता है। मोह ने जाल अपना एक बार और फैलाया पर अगले ही क्षण शिकार सतर्क होगया।

उसने अपने आपसे पूछा, 'यह जजीर गले मे धारण करने के बाद, क्या गला तुम्हारा कोयल की तरह सुरीला होगया? स्वास्थ्य पहले से अधिक नीरोग होगया? कल ही कोई इसे झटक कर तोड लेजाए तो क्या तुम्हारे घर के सारे मगलो पर पूर्णविराम लग जाए ? इसे आज नहीं तो कल छोडना तो पडेगा–यह है ही छोडने के लिए। मोह मे बध कितना उल्टा सोच रही हूँ मैं? गीता-रामायण का क्या यही पाठ करती हूँ मैं ? कल ही तो पढा है मैंने 'सो धन धन्य प्रथम गति जाकी', परीक्षा की घडी आई तो कल का पढा हुआ आज बासी होगया? बेकार गया?' उसका मोहपाश धूप खाई ओस की तरह हवा होगया । एक नया बल आगया उसमे।

वह तुरत दानजी की बहू के पास गई। एक बार तो सौदा जबान पर ही करना चाहा पार पडा नही।

सेठानी ने कहा, 'गुरआइनजी साच कहना सुखी रहना, पैसे मेरे तो हैं नही, छोरी के हैं, साल मे हजार-डेढ हजार उसे कर देती हूँ पर सच कहती हूँ, देती गिरवी पर ही हूँ।'

'ब्याज?'

'ब्याज [illegible]रो से तीन-साढे तीन ले लेती हूँ, आपसे ढाई ही लूगी।'

जजीर उसे देने पर [illegible] उसमे साढे-उन्नीस सौ ही मिले। पचास ब्याज के सेठानी ने अगाऊ काट [illegible]। [illegible] मे टाटा गीला पडितायन को बडा अखरा, पर विवशतावश, होठ उसने [illegible] नहीं।

[illegible] ले चुपचाप चली [illegible]। सोच लिया पचास घर मे से और मिला दूगी।

अगले दिन सुबह के पाँच बजने को थे। दीनू की बहू झोपडे मे पडी थी–खटिया पर कथा डाले। रक्तचाप घट रहा था और शरीर धीरे-धीरे पड रहा था ठढा। समझ बनी हुई थी। कभी झोपडे का ससार देख लेती और कभी बद होती आँखो मे शिशु को भर लेती। आँखों से आँसू निकल जाते पर शिशु उनसे निकल नहीं पाता। करवट के बल थी। ढीला पडता एक हाथ उसका बालक के सिर को स्पर्श कर रहा था, दूसरा था बेटे को अपने मे बाधने की मुद्रा मे। एक स्तन बालक के मुँह से लगा था दूसरे को बालक के नन्हे हाथ ने ढक रखा था–अनायास, पर दूध शायद दोनो मे ही नहीं था। रक्तचाप गिरता गया। एक बार हल्की-सी पीडा झलकी तार टूट गया–एक अधूरी-सी हिचकी मे और धडकन डूब गई शून्य मे। दस मिनट तक किसी को कुछ पता न चला।

'नरस आएगी, सचेत करदू बहू को' इस विचार से डोकरी भीतर गई। उसने धीरे से कहा, 'बहू कैसे है बेटी, शरीर सभाल थोडा, चाय ले-ले, नरस आने वाली है।'

पर बहू हो तो बोले?

उसने हाथ उसका झटका कर कहा, 'बहू?'

बहू लम्बी-गहरी नींद मे थी और छोरा उससे चिपका हुआ जीता-जागता। खडी हुई डोकरी के होठो पर चीख एकदम से उछली, 'अरे मै अभागिन लुट गई। अरे नाव डूब गई मेरी, निकालो रे कोई? अरे, यह बित्तेभर की जान, अब कैसे पलेगी? अरे, इसका क्या होगा? अरे, मौत पर मौत पता नहीं किसका घर उजाडा था मैंने? किसके बाल-बच्चे छीने थे? अरे, रामजी मुझे क्यो नहीं उठाया? अरे कुछ तो देखता?'

चीख सुन, एक-एक, दो-दो, होती मुहल्ले की औरते आने लगी। पूरी पानी का घडा लिए आई ही थी। एक औरत ने घडा उतरवाया उसका । दादी के विलाप को सुन, वह चीखती गिर पडी, 'अरे मेरी माँ, माँ कहाँ गई तू?'

एक वृद्धा ने उठाया उसे, कहा, 'बेटी, इस तरह न कर, माँ का साथ इतने ही दिन का लिखा था, पूरा होने पर कौन रहने देता यहाँ?'

उधर पंडिताइन, जीप की पतीक्षा मे थी, कब आए नर्स, कब सौंपू यह रकम? और कब हल्का हो भार मेरा?

सृष्टि को आलोकित करने वाले भगवान भास्कर क्षितिज से हाथभर ही ऊँचे उठे होगे, तभी एक जीप गगी के द्वार पर आ खडी हुई। नर्स उतरी और सामने देखा–आँगन मे औरतो का जमघट, और सुना छोरी और डोकरी का हृदय विदारक विलाप, कथा सारी समझ गई वह।

सोचा था कुछ और, देखा कुछ और, उदासी उसके मुँह पर भी उतर आई। दो मिनट वह भी औरतो मे जा बैठी और कहने लगी, 'मॉसा आदमी के हाथ मे तो केवल कोशिश है, फल तो भगवान ने केवल अपने ही हाथ मे रखा है। मैंने सोचा था, बडे-बडे डाक्टर-डाक्टरनियो से मेरी अच्छी जान-पहचान है, इलाज इसका मैं सस्ता और अच्छे से अच्छा करवाऊगी, धरा रह गया मेरा सोचा-विचारा। आपने भी ऐसा ही कुछ सोचा होगा, पंडिताइन का विश्वास तो पत्थर की लीक की तरह पुख्ता था, सब धूप मे रखे कपूर की

तरह उड गया। परमात्मा की इच्छा के विरुद्ध कोई कैसे करे, धीरज के सिवा कोई उपाय नहीं।'

हाथ जोडती वह चलदी।

पडिताइन के यहाँ पहुँची। पडिताइन बडी राजी हुई । दो कदम आगे बढ स्वागत करती कहने लगी, 'आगई, बडा अच्छा किया, बाट देख ही रही थी । पहले तो यह लो रकम सम्हालो अपनी, फिर मुड्डा लो और बैठो। इलाज कराओ बेचारी का, बडी आशीष मिलेगी, बिरवा आपका खूब फलेगा।'

कहते-कहते ज्योही वह रूकी, नर्स ने धीरे से कहा, 'पर माँसा वह तो चल बसी ?'

हैं। कब? रात एक बजे तक तो मैं थी उसके पास।'

'वहीं से तो आ रही हूँ मै।'

'गजब हो गया?'

'क्या बताऊँ? जब कोई उपाय नहीं तो छोडो इसे, पचास रूपए ड्राइवर का दे दे।'

कहते ही पकडा दिये पचास रूपये उसने, फिर पूछा, 'दूध-चाय कुछ?'

'अरे नहीं माँसा, ऐसे समय दूध-चाय उतरेगे गले से?'

हाथ जोडती चल दी वह।

पडिताइन मिनटभर स्तूप की तरह मौन खडी रही और तभी उसके होठो पर अनायास उछला, 'रामजी उस कली का अब? अब वह भी जाएगा माँ के पीछे-पीछे।' चेहरे पर उसके एक गाढी उदासी उतर आई और मन पर रेगने लगी चिन्ता की व्याली।

आठ

वह क्या गई जाते-जाते घर पर अप्रत्याशित आफत का एक सीमाहीन पहाड खडा कर गई। पेट के गाँठ दे-दे सात सौ दस रूपए बचाए थे–किसी तरह। न कपडे ही बनवा सके और न पूरे बर्तन-भाडे ही बसा सके। फटते कपडो मे से किसी की पीठ झाकती तो किसी की छाती। तवे-सी तपती धरती, पूरी को नगे पावो से नापनी पडती है। चौके मे न चींपिया, न चाकू और न चकला-बेलन ही। चैन अमावस्या के चाँद की तरह गायब हुआ और दुख दीर्घ ज्वार की तरह बढता घर की नाक तक आ पहुँचा।

सोचा था, सावन तो इतने से नजदीक ले ही लेगे, फिर चार-पाँच महीने मजदूरी चल पडेगी। गॉव छोडने का सवाल ही नहीं। दिन मे खटाई और रात को सुख की नींद, पर उल्टी गत गोपाल की होठो तक आया कौर छिन गया। लाए वह रकम तो चुटकियो मे गई–तवे की बूद की तरह। न स्वाद आया और न सुविधा ही मिली। उल्टा सात सौ के कर्ज का गट्ठड सिर पर और लद गया। आटा लाएँ या ब्याज चुकाएँ ? अधकार बढ रहा था दिशा कोई [illegible] दिखाई नहीं पड रही थी।

बारह दिनो मे सगे-सम्बन्धी आते रहे। आए हुए को एक-दो वक्त रोटी तो डालनी ही पडती साथ मे आधी-मुट्ठी शक्कर और ऊपर दो टीपनी वनस्पति भी। सब्जी कभी

आलू-प्याज की और कभी बडी-पापड की । यह बाहर से आए लोगो के लिए था। मुहल्ले के लोग भी आते। औरते गगी को ढाढस देती चल देतीं पर आदमी तो आदमी ही ठहरे ढाढस के बदले मे उनके आगे चाय-बीडी तो करनी ही पडती। नहीं-नहीं करते कीलो डेढ-कीलो चीनी के घुवा तो रोज लग ही जाता, दूध-चाय जाते पिलाई मे। बीडिया सौ-सवासौ के पास, धुख-धुखकर जहर अपना हवा मे मिलाती पूरी होतीं पर परम्परा की अधी धरती पर बैठे वे इतने से ही सतोष करले यह भी तो नहीं?

दसवे दिन भाई बिरादरी के दो-चार जठेरो ने दीनू से कहा, 'देख भाई ज्वान मौत है, बूढे-बडेरे तो जीमेगे नहीं, छोरे-छोरिया हैं या उससे छोटी कोई बहू-बेटी। कई गए हुए हैं बाहर। परसो है बारहवा, चावल-चीनी और चने करदे। तुम्हारी तो रह जाएगी नाक, भाईपे का उतर जाएगा भार और उस जीव को मिल जाएगी शांति।'

उसने माँ से सलाह ली ।

माँ ने कहा, 'बेटा हाथ तो तग है पर भाई-बिरादरी की उगाही रह गई तो रह गई ही समझ। समय की माटी चढती रहेगी उस पर, भाईपेवाले जल्दी से उसे मरने नहीं देगे। मैं पका पान हूँ पता नहीं कब गिर पडू? तब यही लोग काल की माटी हटाकर, सबसे पहले उस गडी लास को फिर से खडा करते कहेगे, माँ की बात तो याद मे करना, पहले वहू की बकाया चुका । भाई-बिरादारी का खाना ही आता है, खिलाना भी तो सीख? सुख से जीने देगे लोग? तू ही सोचले, उधारी होती है यह तो? इनमे बसते हैं तो चुकानी ही पडेगी इन्हे। हाँ, हम आज तक किसी के भी गए हुए नहीं होते तो बात दूसरी थी। हम तो जाते रहे हैं?'

'और तो कुछ नहीं है माँ, अपने घर की हालत है भी पानी से अधिक पतली और महगाई है कमर तोड ? कपकपी इसलिए छूट रही है?'

'सभी कुछ है, पर कल को किसने देखा है ? आज हो जाए उसकी होड़ नहीं। अभी तो पाँच सौ-सात सौ की बात है, बखत-जमाना देखते, महगाई का मुँह तो और चौडा होता लगता है, फिर? किया सो काम, भजा सो राम। कर-कराकर सिर का भार उतार, चक-चक करवाने से लाभ नहीं, बेटा, चक-चक से तो रामजी भी डर गए थे। मालूम नहीं सीता को फिर से वन भोगना पडा था?'

'ठीक है फिर बात तै हुई।'

एक ओर बैठी पूरी भी यह सब सुन रही थी। कर्ज और ब्याज का अर्थ वह अच्छी तरह समझती है। ब्याज के बदले उसने कई वार बेगारे निकाली है। कर्ज के मुलाहिजे मे अपनी ऊब और अपने आँसूओ को वह पीती रही है। उससे रहा न गया।

उसने कहा, 'दादी, करज करेगे तो ब्याज नहीं भरना पडेगा ?'

'ये बाते गहरी हैं बेटी, तू अभी नहीं समझती इन्हे ?'

'मेरे जूते दादी?'

डोकरी ने कुछ उखडते हुए कहा, 'तेरे जूते नहीं हैं, वे तेरे बिना कहे भी दिखते हैं मुझे, जोग आने पर वे भी बन जाएँगे कभी, अभी उतावल मत कर।'

उसने दादी के मुँह से ही सुना था कभी, 'दीनू ब्याज आदमी का लहू दिन मे भी चाटता है, और रात मे भी, इससे तो किसी तरह बचना ही चाहिए।' आज वह कहती है, 'चुप रह, तू नहीं समझती ये गहरी बाते, यह क्यो?'

आग उसकी न बुझी, और न निर्धूम ही हुई, सुलगती रही।

वह कुछ नहीं बोली, उठकर चलदी।

मृतक भोज होगया। सामान सारा बालजी सेठ के यहाँ से उठा । सेठ ने कहा, 'ब्याज देखले तीन रूपए सैकडा है, कोई गहना हो तो ला, दो ही लगा दूगा।'

'गहने की जगह मुझे रखले',उसने हाथ जोडते कहा।

इससे अधिक और क्या कहता वह? बहू के पीतल का एक बोरला था पूजा की सुपारी जितना, वह भी घिस-घिसाकर पूरा हुआ। अब उसकी जगह 'पूर' का रह गया था, हाथो मे दो-दो चूडिया होतीं, पहले लाख की फिर प्लास्टिक की। कभी माँगी हुई और कभी मोल ली हुई। उम्रभर उसके यही गहने रहे।

अब गगा मे अस्थि-प्रवाह का काम ही शेष रह गया था। वह अपनी सुविधानुसार कभी करो, भाई-बिरादरी की उसमे कोई दखल नहीं थी। मोटी समस्या अब बच्चे की थी।

डोकरी ने दीनू से कहा, 'भाई, छोरा रहता मुझे तो मुश्किल ही लगता है । रहना ही लिखाकर लाता तो माँ उसकी क्यो जाती? तब भी, है तब तक तो रख-रखाव की तकलीफ हमे ही उठानी पडेगी। मेरे से तो तवे पर धुखती रोटी भी पलटी नहीं जाती, न आँखो मे पूरी रोसनी और न हाथो मे पूरा सत, क्या कर लूगी मैं।'

आवाज देकर उसने पूरी को पास बुलाया, कहा, 'देख बेटी यह 'लट' है, जब तक रेगती है इसे धोना-निचोना और दिन मे दो-चार बार चुलू-चुलू दूध इसके गले उतारना तुझे ही करना है। दो हाजरी मेरी भी तू ही भरेगी। मैं तो पडा ठाव हूँ? दूध अभी तो सुवह-शाम पडिताइन दादी से ले आया कर, बाद मे तो बधी ही करनी पडेगी कहीं से। एक उफान दिलाकर दस-बीस दिन तो रूई भिगो-भिगो उसमे, मुँह मे उसके निचो दिया कर, बाद मे रबड की बींटली मगा लेगे। बेटी, तू इसकी बहन भी है और इसकी माँ भी। दिन मे तू काम करेगी तो पास बैठी थोडा हिला-डुला उसे मैं भी लूगी और तो मेरे से कुछ होगा नहीं।'

पूरी ने मौन और उदासी ओढे यह सब सुन तो लिया पर वह यह न समझ पाई कि, माँ, वह उसकी कैसे है? उठते-उठते उसने धीरे से यही कहा, 'दादी तू बताती जाएगी, वैसे मैं करती रहूँगी।'

पूरी दूध सुवह-शाम पडिताइन से ले आती। बारह दिन पूरे होने पर पडिताइन डोकरी से मिलने आगई। डोकरी आँसू ढालने लगी।

पंडिताइन ने समझाया, 'गगी रोने-धोने से तो कुछ होगा नहीं।'

'मालकिन मन मानता नहीं ।'

'मन तेरा है कि तू मन की ? मन के झझट मे तो पड़ मत, एक बकरी ले-ले तू।'

'पर हमे आटा, बकरी से भी पहले चाहिए, वह पार पड जाएगा तो भी बहुत है?'

'तुम आटे का कहती हो और बच्चे की जबान काम करती तो वह दूध का कहता और दोनो ही ठीक हो तुम।'

'दूध तो मालकिन, पाव-डेढ पाव बधी कर लेगे कहीं।'

'पर बधी का दूध भैंस का भी होगा, बासी भी होगा, देर-सवेर भी मिलेगा, पाव-डेढ पाव की बधी करता कोई नाक-भौं ही सिकोडेगा और सेत का रोज कोई देगा भी नहीं और मोटी बात है वह बच्चे के माफिक भी नहीं बैठेगा। एक बकरी मगा देती हूँ, दो घटे दिन मे पूरी चरा तो लाएगी उसे ?'

'चरा क्यो नही लाएगी ?'

'निचो भी लेगी उसे ?'

'निचो तो वह भी लेगी, और मरी-मरी होने पर भी निचो तो मैं भी लूगी।'

'तुम दोनो ही नहीं निचो सको उसे, तो लाओ मैं निचो दिया करूगी।'

'अरे नहीं, मालकिन यह क्या कह दिया आपने? पाँच मिनट ही तो नहीं लगते बकरी निचोने मे? पर एक अरज है मेरी?'

'कहदे?'

'मालकिन इतना झझट आप करेगी, बच्चा पलना तब भी मुश्किल लगता है मुझे। करज माँगता है, चूक लेगा कुछ दिन और।'

'इस तरह का हिसाब-किताब रखने का जिम्मा अपने ऊपर मत ले तू । कर्ज चूकेगा या चुकाएगा यह न किसी माँ-बाप को मालूम और न किसी बेटे-बेटी को । एक लख पूत सवा लख नाती वाले रावन को भी यह मालमू नहीं पड सका कि उसके उस विशाल परिवार मे दिया-बत्ती करनेवाला भी कोई नहीं बचेगा।'

'आप जो भी रास्ता सुझाएँगी, वही पकडलूगी मैं तो।'

'रास्ता यही है कि मन को कमजोर मत कर। इतने पर भी, बच्चा तुम से नहीं सभले तो ला मैं लेजाती हूँ उसे, दुनिया निगल तो नहीं जाएगी मुझे ? मोम की तो मैं हूँ नहीं, जो निन्दा की गरमी से गल जाऊँगी, हो लेगी चार दिन चक-चक, फिर बद हो जाएगी अपने आप।'

'आपका हाथ सिर पर रहेगा तो दुख की घडिया कट जाएँगी मालकिन—जैसे-तैसे।'

'अरे तू भी तो गजानन को गोद और कधे पर उठाए फिरी थी महीनों नहीं बरसो? मैं उसी गजानन की चाची हूँ, उसकी माँ शायद कर्ज तेरा न उतार सकी हो, तो ला मैं हल्का करू कुछ? तू इतनी घबरा मत, मैं कहती हूँ, बच्चा यह भागी है, नाम भी अपना साथ लेकर आया है।'

'कैसे मालकिन?'

'ग्यारस को हुआ है न?'

'हॉ।'

'ग्यान का रस लेकर आया है यह, हरियाली से ढक देगा घर तुम्हारा, सारी दरिद्रता

तुम्हारी धो देगा वह। तुम सब ग्यारसी कहा करो उसे।'

'कह लेगे आप कहती हैं तो।'

'सात-आठ महीने दूध मिल जाएगा इसे तो वह शरीर पकड लेगा, बाद मे इसे दलिया या छाछ-राबडी कुछ भी चटाते रहना चाहे।'

दीनू आया और हाथ जोडता, दो हाथ दूर बैठ गया ।

पडिताइन ने उसे कहा, 'सुना है रे, लछमन जाट के इन दिनों कई बकरियाँ बिआई हैं। तू जा, और देख-परख कर ढग की एक बकरी ले आ, लेन-देन की बात उससे मैं अपने आप कर लूगी। एक काम और करना है।'

'हुकम करो।'

'दो मन गवार और साथ मे दो बोरे पाला भी लेते आना । जगल से आई बकरी को कुछ चाहिए कि नहीं?'

'जरूर चाहिए।'

अपने पल्लू से खोल कर उसने रूपए तीन सौ उसे पकडा दिए और घर को चलदी।

बकरी अगले दिन आगई। साथ मे उसके मिमियाता बच्चा भी था। बिआई हुई वह पन्द्रह दिन की थी। एक वखत का दूध उसके सवा-कीलो करीब था। पूरी के लिए काम का एक नया क्षितिज और खुल गया। माँ मरने के बाद वह बडी उदास रहती। रात घटाभर सरकने से पहले ही वह उस नन्हे नवागन्तुक को लिए सोजाती। न वह पानी माँग सकता था और न मल-मूत्र विसर्जन के लिए होठ ही अपने खोल सकता था। पूरी बडा ध्यान रखती, दिन में ही नहीं रात में भी। रोते ही वह समझ जाती, दो चुल्लू पानी पिला उसे थपथपा देती। मल-मूत्र का आवेग ज्यो ही हुआ वह कर देता। उसके नीचे वह छोटी-सी एक कथा और कमर के चारो ओर लपेटा एक पोतडा रखती पतला-सा। मल-मूत्रमय उन वस्त्रो को वह धोती और नए तुरत लगा देती। प्रारभ मे तो नाक-भौं उसके कुछ सिकुडे, और एक अनइच्छा उस पर रही सवार, पर प्यार और कर्तव्य की वेदी पर चढ कर अनइच्छा अपना अलग वर्चस्व न रख, उसके अधीन हो गई।

पहले वह, दादी के साथ देर रात बाते करती। उसे दबाती भी थी कई बार। अब वह दिन मे ढाई -तीन मील बकरी के पीछे-पीछे चक्कर काटती है। रोटी-पानी, ईंधन और बुहारी-फूस मे उसे सास खाने को भी फुरसत न थी। दिनभर की थकी-माँदी भाई को लिए जल्दी ही सोजाती पर नींद बहुत कम ले पाती।

सोई-सोई की आँखो पर माँ अचानक आ उतरती। आँखें भर आतीं । पीडा और ममता ढकने लगती उसे। आँखे पोछती, ज्यो ही वे सूखने को होती, मानिया नाच उठता मन पर। कुछ समय उस छाया से घिरी-दबी रहती। इस तरह रोज नींद की कमी, रोज थकावट। चेहरे पर न उल्लास बिखर पाता और न शरीर मे स्फूर्ति का विस्तार ही।

वह एक नये सोच मे डूब जाती, 'भाई गया, माँ गई, दादी कहाँ बचेगी ? और बापू? वह भी जाएगा, मैं अकेली क्या कर लूगी? मुझे कौन रहने देगा? तब इस गीगले का क्या होगा ? हम नहीं बचेगे तो गीगा कैसे बचेगा?' मौत का एक नया ही भय, हर रोज उसमे

चौडा होता रहता, रात मे ज्यादा, दिन मे कम। जीवन उसे बुनता और मिटता लगता, जीवन को जैसे ढो रही है वह–थोपे हुए भार की तरह। अपने सोच के ओर-छोर मृत्यु और निराशा के सिवा उसे कुछ न दिखता। उदासी ने उसे पकड रखा है, या उसने उदासी को, यह विवेक उसमे उतरता ही न था। अज्ञान और आत्मग्लानि डराते-धमकाते उसे भीतर ही भीतर छेद रहे थे। वह किसे कहे और क्या कहे, समझ ही न पा रही थी। सुबह जल्दी ही उठ जाती और फिर उसी टेढे-मेढे रास्ते पर चल पडती।

बालक ने पंडिताइन के हृदय का एक सरस कोना पूरी तरह रोक रखा था। उसे वह निर्जला के जीवित महात्म्य-सा पवित्र लगता और अपनी सन्तति की तरह प्रिय। इसे देखते ही उसका मातृ हृदय द्रवित हो उठता। वह सोचती, 'मजा तो तब है, मैं इसे खेलता-कूदता देखू।' कम प्रिय उसे पूरी भी न थी, पर दोनो मे स्थिति भेद था।

एक दिन यह हुआ पडितजी फुरसत मे बैठे थे। मुद्रा थी शात, और मन था तनाव-मुक्त। पंडिताइन पास आ बैठी। अपना सशय मिटाने के लिए, उसे यह स्वर्ण अवसर लगा।

उसने उनसे पूछा, 'दीनिया के छोरे की भी वेला-पुल थोडी देखते?'

'इस हिसाब से तो तू बिल्कुल अनुभवहीन ही लगी मुझे?' उन्होने उसकी ओर देखते कहा।

'कैसे?'

'तो क्या वेला-पुल दिखाएगी उसकी?'

'क्यो, उसका जन्म नहीं हुआ?'

'जन्म शूकर-कूकर नहीं लेते?'

'तो यह उन्हीं की जोनि मे है?'

'उनसे भी बद-योनि मे।'

'कैसे भला?'

'अरे जिसके गले उतारने के लिए दूध तो दूर, दलिए का पानी दुर्लभ, तन ढकने के लिए हाथभर कपडा दुर्लभ, और सिर छिपाने के लिए छत पर फूस दुर्लभ। होते ही माँ चल दी, अब वेला-पुल मे क्या बाकी रह गया ?'

'परसो बालजी अपने पोते के लिए पूछने आए थे–ग्यारह रूपए और एक नारियल लिए। आप आध घटे तक पचाग के पन्ने टटोलते रहे। हिसाब फलाते रहे, इसीलिए न कि उनका पोता चाँदी का चम्मच लिए जन्मा है ? ध्यान रहे, सारे बालक एक ही पीडा में जन्मते हैं और मरते भी एक ही पीडा मे हैं पर ऊँचाई उनकी महल और झोपडी से नहीं आकी जाती। जेल के सींखचो मे जन्म लेनेवाले भी सूरज की तरह चमकते देखे जाते हैं और सुख सुविधाओ के सरोवर मे खिलनेवाले सरोज असमय मे ही सूखते हुए और आगे चलकर अनिष्टकारी भी।'

वह कुछ गरमागई। पलभर रूक, फिर बोली, 'मत देखो आप, देखने की जरूरत भी नहीं, आपके आकाशी नखतर पता नहीं दैत्य हैं, या देवता अथवा जड ? धरती के लोगो

से वे राजी-नाराज भी होते हैं क्या? किसी को कुछ देते-लेते भी हैं क्या? छोडो इस आकाशी कथा को, इसके नखतर तो इसी के भीतर हैं- इसके अपने ही आकाश मे। भाग्य इसका जुडा है इसके पुरूषार्थ से और पुरूषार्थ इसका है इसके बाहुओ मे—इसके विश्वास मे। परमात्मा ने यह सारी सामग्री इसे देकर भेजा है, न यह आकाशी नखतरो का मुहजात और न भाग्य इसका पचाग के पन्नो पर ही सोया हुआ।'

'नहीं सोया हुआ तो मेरा सिर क्यो चाटती है?'

'वह इसलिए कि मेरा सोच, आपके पचाग से मेल खाता है या नहीं यह देखने के लिए।'

इस आग्रह पर उन्होने पचाग कुछ टटोला।

बोले, 'इसके बीच घर मे गुरू है, शनि भी शुभ है, वेला-पुल के हिसाब से जातक नसीबधारी ही होना चाहिए, पर इसमे घर की स्थिति भी देखनी पडती है, वह भी काम करती है। तूने क्या सोचा, तू भी तो कह?'

'मैंने सोचा, आपने बताया उससे कहीं अधिक अच्छा, अधिक ऊँचा।'

और इसके साथ ही विश्वास-फलक उसका अधिक चौडा होगया। उल्लास बढगया सुनहरी आशाओ को गोद मे लिए।

पूरी कुछ छाछ लेने आई थी। पडिताइन ने उसे बैठा लिया, और पूछने लगी, 'पूरी, भाई दिनभर खटिया पर ही सोया रहता है?'

'हाँ।'

'पडा-पडा ऊब नहीं जाता?'

'क्या पता, बोलता तो है नहीं?'

'रोता तो होगा?'

'हाँ, कभी-कभी।'

'उसके लिए एक पालना दू तुम्हे?'

दे-दे।'

'उसे दूध पिलाती हो?'

'हाँ।'

'मुँह मे रूई निचोड-निचोड कर?'

'हाँ।'

'एक शीशी दू तुम्हे?'

'आपकी मरजी दे-दे।'

'पर उससे जितनी वार दूध पिलाओ, धोना पडेगा उसे गरम पानी से ?'

'धो लूगी।'

उसने उसे पालना और शीशी दे दिए। पालना उठाउ था। ग्यारसी अब पालने पर पौढने लगा। पालने को डोकरी छाया मे खडा कर लेती। झोटा देती उसे और वह घडी के पैंडुलम-सा गति पकड लेता।

पूरी कई वार उसे सोए हुए की ओर ताकती रहती और पालना सहज-सहज हिलता

रहता। वह सोचती, 'यह भी कभी आँगन मे उछलेगा-कूदेगा, इसके मुँह मे भी कभी मोती-से दूधिया दाँत चमकेगे? कहेगा बहन लोटी दे?'

इस तरह सोचते प्यार उसका चौडा हो जाता, सशय भी उतर आता उस पर और एक छोरहीन ममता भी उसमे पसर जाती भाई के पति।

अगले ही क्षण वह देखती अपने नन्हे भाई के होठों पर रह-रह पसरती मुस्कान—कपोलो पर गड्डे बनाती वह , किसी शान्त-निर्मल पोखरी मे उठनेवाले भँवर की तरह फैलती और उसकी मुखाभा में ही ओझल होती । नींद फिरी है उस पर, स्वप्न देख रहा है वह या इसके भीतर बैठा कोई हँसा-रिझा रहा है इसे ? उसे आश्चर्य होता और जिज्ञासा उसकी पबल हो उठती । उसने राज इसका दादी से पूछा।

दादी ने कहा, 'इसके भीतर बैठे हुए रामजी हँसा रहे हैं इसे ।'

पर इसके उसका सशय पूरी तरह साफ नहीं हुआ।

एक दिन उसने पंडिताइन से भी पूछा, 'दादीसा, यह नींद में मुस्कराता बहुत है?'

'रोज ही?

'मैं तो बहुत बार देखती हूँ?'

'तुम्हारी माँ तो चल बसी बेटी, फिर भी कभी-कभी वह तुम्हे याद आ ही जाती है?' पंडिताइन ने उसके सिर पर हाथ रखते हुए कहा ।

'हाँ।'

'क्योंकि तुम्हारा सम्बध उसके साथ बरसो तक रहा है?'

'हाँ।'

'इस बालक के हिरदै पर हमारा सबध तो अभी जमा नहीं, वह तो उम्र के साथ जमेगा?'

'हाँ।'

'पर पिछला सबध अभी इसका ताजा है—वह कहीं रहा हो चाहे?'

'समझ गई।'

'सुख की वे भोगी हुई घडिया इसकी याद पर आते ही यह मुस्कराने लगता है । इसकी यह नींद, नींद ही नहीं, ध्यान भी है—सन्त का-सा बडा सहज। इस ध्यान में क्या पता यह रामजी को ही देख-देख राजी हो रहा हो। है तपधारी, पर कहीं तप मे चूक रही है, इसलिए माँ से इसका वियोग हो गया पर लच्छन देखते, तू पक्का भरोसा रख, यह आया बडी ऊँचाई से है - खाली हाथ नहीं, भरी हुई झोली साथ लिए। तुम्हे बडा प्यार करेगा, तुम्हारे दुख-दर्द मे तुम्हारे साथ रहेगा, धरती पर सुगध फैलेगी इसकी—बडा शुभ है।'

पूरी बडी पसन्न हुई, भाई के लिए एक नई ललक उसमे जन्म लेने लगी।

सावन आधे के करीब आ लिया। आषाढ के जुते खेतो मे निदान आने लगा। मजदूरी चल पडी। दीनू सुबह-सुबह हल्का-सा जलपान कर मजदूरी पर निकल पडता। शाम को आता तब तक गहरा थक जाता। खा-पीकर बीडी पीता और फिर सोजाता।

एक शाम नींद आँखो पर उतर रही थी। तभी किसी ने आवाज दी, 'दीनू सोगया क्या?'

वह उठ बैठा, आवाज पहचानता बोला, 'कौन, नन्दू काका?'

'हाँ वही।'

पास जाकर बोला, 'फरमाओ?'

'दो दिन निदान तो निकलवा?'

'कल तक के पैसे तो ले रखे हैं।'

'परसो के तो नहीं?'

'नहीं।'

'तो ले पकड तीस रूपए दो दिन के।'

'रूपए पहले-पीछे की तो कोई बात नहीं, देते ही हैं तो फिर चालीस दे।'

'अरे एक घर का मुलाहिजा तो डाकिन ही रखती है, तीस थोडे हैं?'

'मैं अकेला तो लेता नहीं काका, सभी लेते हैं।'

'सभी की छोड़, बात तेरे और मेरे बीच मे है, तू जाने या मैं जानू। लेने कि नहीं?'

'एक से काका बीस लू और दूसरे से पन्द्रह मेरी आत्मा मानती नहीं।'

चौधरी इस पर गरमा गया, बोला, 'मेरी आत्मा की तो पटक कुएँ, तेरी आत्मा की सुन पहले।'

कहकर, ज्यो ही वह रवाना होने को हुआ, दीनू ने बडी नम्रता से कहा, 'चौधरी काका, अध-घटा पहले तो पहुँचूगा और अध -घटा बाद मे और खटलूगा, और तो मैं क्या कर सकता हूँ?'

'तू कुछ मत कर, छाया अपनी अपने पास रख, पैसे भी दू और अहसान भी सहू, आकाश तेरे ही कन्धो पर तो नहीं टिका, तेरे भाई और बहुत है गाँव मे?' कहता हुआ चल दिया वह। जाते हुए के होठो पर उछलता दीनू को साफ सुनाई दिया, 'चमार का सिर सूजगया, आकाश पर थूकने लगा।'

वात की कुछ भनक डोकरी के कानो मे भी पड गई । वह दीनू के पास आ कहने लगी, 'वेटा, यह क्या किया तूने? ले लेता ले, पाँच रूपए कम ही सही ? यह झगडालू भी है और लठुवा भी–कभी बिना ही मतलब पगडी न उछाल दे तुम्हारी समदर मे बसना और मगरमच्छ से बैर?'

'माँ , वीस के पन्द्रह ले ही लू चलो, पाच का घाटा ही सही, पर मोटा घाटा तो इस बात का है कि साथी मजूरो को यह मालूम पडे तो वे मेरे टक्के न गिनले? उठना-बैठना तो उनके वीच मे है?'

'वात तो तेरी ठीक है, पर गोगा वडा कि गुसाई? बडा तो गुसाई ही है पर साँपो से वैर कौन बाधे, वडा गोगा को ही कहना पडता है। चलो हुआ सो ठीक है, सोजा सुबह जल्दी उठना है।'

पूरी खा-पी वकरी को लिए जगल की ओर जारही थी। सूरज सिर पर आने लगा था। आकाश वादलों से ढका था और धरती ढकी थी हरियाली से। सूरज कभी बाद गे मे छिप जाता और कभी उनसे निकल चमक उठता, लगता, वादलो के साथ वह आँखमिच नी खेल

रहा है। हवा धीमी और सुहावनी थी।

बकरी के थनो पर कोथली पडी हुई थी। बच्चा उसका मिमियाता हुआ कभी उसके आगे हो जाता और कभी पीछे। पूरी के सिर पर तसला था और तसले में पानी का लोटा। हाथ थे उसके स्वतन्त्र। वह सहज गति से चल रही थी । पैर उसके धरती पर, आँखे बकरी पर, और मन तसले पर था। ज्यो ही वह गाँव से बाहर हुई, उसे सुनाई पडा, 'पूरी? रूकना पूरी।'

उसने मुडकर देखा, दो लडकिया उसकी तरफ भागी आ रही है। सामने के दो खेजडो पर झूले बधे हैं। लडकिया बारी-बारी से झूल रही हैं उन पर। लडकिया छोटी-मोटी बीस-बाईस होगी। सारी मुहल्ले की ही थी। वह रूक गई। एक लडकी ने पास आकर कहा, 'पूरी, आज सावनी तीज नहीं?'

'हाँ है।'

'झूला न झूलोगी—दो मिट?'

'देर हो जाएगी।'

'देर तो रोज ही साथ लगी रहेगी।'

'नहीं बहन रूकूगी, नहीं।' उदास होते उसने कहा।

'क्यो, ऐसी क्या कैद है तुम्हे?'

वह बोली नहीं, आँखे डबडबा आई उसकी।

दूसरी लडकी समझदार थी उनमे।

उसने कहा, 'अरे हमे ध्यान ही न रहा, तुम्हारी माँ गुजरी हुई है, झूलना तुम्हारा ठीक भी नहीं । अच्छा झूल मत, सुखिया ससुराल से आज ही आई है, दो मिट उससे तो मिल ले, बुला रही है तुम्हे?'

'बकरी दूर निकल गई तो?'

'निकल कर कहाँ कुएँ में जाएगी? यहीं मिल जाएगी चरती कहीं?'

वह चलदी उनके साथ। ज्यो-ज्यो वह बढती गई, उसके कानो से बडे सुरीले स्वर टकराने लगे

चम्पै री डाळी हींडो माड्यो
इण हिंडोळै ईसरजी पधारया
ले बाई गवरा नै साथ—हींडो माड्यो।

यह सहगान उसे बडा प्यारा लगा। कैसा होता, मैं भी इनके साथ गाती कुछ देर। एक देखती उठी और उदासी पीती वह वापिस वहीं बैठ गई। सभी लड़कियो ने झूलना एक बार बद कर दिया। वे खडी हो गई उसे घेर कर।

सुखिया ने कहा, 'पूरी याद है न, पिछले साल इसी दिन तू और मैं खूब झूली थी।'

'याद क्यो नहीं?'

'और तुम्हारी माँ ने ही कहा था, पूरी को भी झुला सुखिया ?'

'कहा था।'

'और हम दोनो को झोटे भी तेरी माँ ने ही दिए थे ?'

'दिए थे।'

'तो फिर आज नहीं झूलेगी, ज्यादा नहीं, थोडी देर ही सही ?'

'नहीं बहन।'

'देख वही झूला, वही तुम, वही मैं, और मौसम भी वही।'

उसके चिंतित होठो पर , 'नहीं बहन,' की पुनरावृति फिर वैसे ही उछली।

'अरे झूल ले भोली, तुम्हारी माँ, यहीं कहीं हवा पर बैठी, तुम्हे झूलती देखेगी तो कितनी खुश होगी ?'

उसने कोई उत्तर नहीं दिया, दुविधा पर बैठी उसकी ओर झाँकने लगी।

'तो नहीं झूलेगी।'

'घर जल्दी पहुँचना है।'

उसके कुतुबनुमे की सूई हर बार एक ही दिशा प्रकट करती।

'तो जा फ़िर।'

मन और मौसम, दृश्य और आग्रह उसे कोई भी रोक न पाया । वह फुर्ती से कदम उठाती, जगल की ओर चलदी। उसने सामने देखा, बकरी काफी दूर निकल गई है।

वह उसके पास जा, कुछ देर के लिए एक टीबडे पर बैठ गई।

ख्याल आया, 'लकडियाँ तोडनी है।' तोड़ लूगी, विश्राम कर लू थोडा।

पाँच मिनट भी नहीं हुए बैठे, माँ याद आगई उसे। पिछले साल उसने मेरे हाथो के मेहन्दी लगाई थी, लापसी बनी थी, कितना ख्याल रखती थी मेरा? आँखे बहने लगीं उसकी। गिरते रहे आँसू कुछ देर। उसने इधर-उधर देखा, कोई नहीं, वह अकेली ही है। 'कब तक रोऊँगी, माँ अब कहाँ ?'

वह उठ खडी हुई और ईंधन इकट्ठा करने मे जुट गई।

सावन-सावन तो मजदूरी अच्छी चली, भादौं मे वर्षा ने हाथ खींच लिए। हवा भी पाँच-सात दिन बेरूखी चली। धान पर उतरने लगा पीलापन, और किसानो के चेहरो पर फीकापन। गर्जन-तर्जन और मेघाडम्बर ने कोई कमी नहीं रखी पर वर्षा अध-घटा भी जमकर नहीं हुई कभी। एक बार थोडी छटवार हुई जिससे ऊपर की रेत भी पूरी न भीगी। शाक-पात कुछ चला। कार्तिक लगते ही खेती समेटने लगे लोग। दो-तीन महीने निकलने लायक अनाज हो गया लोगो के और ऐसा ही कुछ घास-फूस और चारा भी।

दीपावली को अधिकतर लोग घर आगए।

दीनू के परिवार ने भी दिवाली धोकी। शकुन के नाते घर को कुछ लीपा-पोता भी। दो दीपक भी जलाए पर घर की उदासी उस प्रकाश मे भी पसरी रही।

दूसरे दिन दीनू ने कहा, 'माँ, मजूरी अब गाँव मे तो है नहीं, और घर बैठे काम चलेगा नहीं, बाहर जाऊँ कहीं ?'

'जाना ही है, सोचना इसमे क्या है? सोचने की बस एक ही बात है।'

'वह? '

पेट भी निकालना है, कर्ज लिया है तो साख भी रखनी है पर इनसे भी मोटी वात है, घर फिर से बसाने की।'

'घर तो मा जैसा है बसा हुआ ही है?'

'बसा हुआ ही था कभी तो, अब तो उजडा हुआ ही समझ, पाए इसके फिर से नहीं लगाने?'

वह माँ की ओर देखने लगा।

डोकरी कहने लगी देख, मैं तो हूँ पीला-पान, बस एक हलके से झोके का काम है, क्या ठिकाना कब आ जाए वह? छोरी ज्यादा से ज्यादा तीन साल और रह लेगी, फिर तो किसी न किसी खूटे पर इसे बाधनी ही पडेगी। फिर तू रहेगा और रामजी ने रखा तो तीन-साढे तीन साल का यह छोरा। कब नौ मन तेल हुआ, और कब राधा नाची? कव वह बीस साल का हुआ और कब उसके बहू आई? सोलह-सतरह साल, कौन तेरी रोटी सेकेगा और कौन निकालेगा झाडू-बुहारी? कौन पानी लाएगा? मजूरी पर भी जाएगा कि नहीं? कोई बटाऊ आगया, छोरी की पहली सवाढ हुई, तू क्या-क्या कर लेगा? बिना औरत के पार पडेगी? टाबरिया घर साभै तो बाबो बुढली क्यो लावै? नाते की विध तो कोई न कोई बिठानी ही पडेगी—लाडेसर?

'तू जाने।' दीनू ने अन्यमनस्क होते धीरे से कहा।

'मैं जान्ती हूँ तभी तो कहती हूँ । हाथ-पग तेरे नीरोग रखे रामजी, सालभर के भीतर-भीतर यह काम तो किसी तरह करना ही है—गाँठ बाध ले इसे।'

'ठीक है अभी तो एक बार जाऊँ मैं, खरची एक-दो बार मैं भेज दूगा किसी के हाथ। चार-साढे चार महीने की वात है, होली पर तो मैं आ ही जाऊँगा।'

माँ के धोक खाकर वह चल दिया।

नाते की कुछ भनक पूरी के कानों मे भी पड गई थी।

पंडिताइन कई बार पूरी की ओर देखती । हर बार उसे वह अलसाई और उदास छाया से घिरी लगती। वह सोचती, 'छोरी का चेहरा हँसते चाँद-सा होता, अब लगता है ग्रहण लग रहा हो जैसे। ग्रहण होता है दो-चार घडी का और यदि यह ढकी रहती दो-चार दिन ही तव भी कोई दात होती ? इसे तो महीने होगए उदासी इसका पीछा ही नहीं छोड रही? मुरझाती हुई यह असमय मे ही बुझ न जाये कहीं? डोकरी की हालत फिर ? और बच्चे की ?'

एक अनुत्तरित अधकार, पीछे अपने परेशानी, पीडा, अभाव और अधविश्वास, बेरोजगारी और ऊच-नीच की बीमारी जैसी लम्बी कतार लिए श्मशानी सूनापन बिखेरता झोके की तरह निकल गया उसके आगे से। वह सिहर उठी अपनी ही उपज से पर अगले ही क्षण वह सभल भी गई। उसकी सर्वतोभद्र प्रकृति पुन जाग उठी। उसके शिथिलाते चिन्तन पर कर्तव्यबोध की नई ऊर्जा आ बैठी।

मगलवार का उपवास था उसके। मुरली महाराज बेटे की बहू को उसके पीहर छोडने गए हुए थे। बहू का बाप ज्यादा बीमार था। उन्होने सोचा, 'एक पथ दो काज, इस मिस मैं भी मिल आऊँगा।'

आठ बजे थे सुबह के। पंडिताइन दीनू के यहाँ आई। डोकरी बैठी धीरे-धीरे पालना हिला रही थी। पडिताइन को देखते ही वह अगवानी करती बोली, 'पधारो आज सुबह-सुबह ही ?'

'उपवास है आज, रोटी तो सेकनी थी नहीं, बहू का बाप बीमार है, ससुर वहू वहाँ मिलने चले गए, मैं दो घडी इधर चली आई।'

'बडी किरपा की।'

'ग्यारसी कैसे है?'

'ठीक है, सोया पडा है पालने में।'

'पूरी कहाँ है?'

डोकरी ने पूरी को आवाज दी। झोपडे से निकल, वह आ खडी हुई।

'बैठ जा,' पडिताइन ने कहा।

दो हाथ दूर सामने ही बैठ गई वह। अपने मन की व्यथा उसके चेहरे पर साफ झलक रही थी।

'पूरी?'

'हाँ दादीसा,' दृष्टि नीचे रखते उसने कहा।

'एक बात पूछू, बताएगी?'

'हाँ।'

'तू आजकल बडी बुझी-बुझी रहती है शरीर मे कोई गडबड तो नहीं?'

'नहीं ?'

'शरीर मे नहीं तो फिर मन मे है?'

वह उसकी ओर अपलक देखती सोचने लगी, क्या कहूँ? उत्तर कोई सूझ नहीं रहा था उसे।

'भाई चल वसा, माँ भी नहीं रही, बुझी इसलिए रहती हो ?'

पूरी ने गर्दन झुकाली और नजर गाड़दी धरती पर।

'अरे भोली, है सो उगलदे, भार हो जाएगा हल्का और तू हो जाएगी नीरोग। यहाँ न किसी से डरने की जरूरत और न किसी से सकोच करने की। अरे, तूने चोरी थोडे ही की है किसी की?'

उसने होठ खोलकर तो हाँ नहीं भरी,गर्दन झुका कर हाँ का सकेत अवश्य दे दिया।

'भोली चिन्ता मरे हुओ की थोडे ही करनी चाहिए, चिन्ता कर जिदा हैं उनकी, उनके शरीर की नहीं, उनकी सेवा की। सेवा से दोनो वसते रहते हैं, करानेवाला और करने-वाला। तू ही वता, अब माँ तेरी, तेरा क्या भला कर देगी, और तू माँ की क्या मदद कर देगी-वह जव है ही नहीं? कर देगी कुछ?'

'नहीं।'

'है ही नहीं, उससे क्या नाता, क्या उसकी चिन्ता? मेरी लडकी चल बसी तुम्हे मालूम है?'

'हाँ।'

'मैं उसे याद कर-कर रोऊँ, आवाज दूं उससे उस पर असर होगा कुछ भी?'

'नहीं ।

'पहले तो यह बता, मैं गलत कहती हूँ कि ठीक ?'

'ठीक।'

'दादी है बूढी, भाई है नन्हा ?'

'हाँ ।'

'सेवा दोनो को ही चाहिए ?'

'हाँ।'

'इनकी सेवा मे सुख ले, दादी राजी होगी आशीष देगी, भाई को पालने मे झुला, गोदी मे उछाल, तू हँस इसे हँसा । लोरी आती है कोई ?'

'नहीं ।'

'सीखेगी ?'

'सीख लूगी ?'

'सुनाऊँ ?'

'सुनाओ ।'

'देख, यह चिडिया फुदक रही न आँगन मे?'

'हाँ।'

'कितनी मस्त हो रही है?'

'हाँ।'

'भाई को देख, जाग रहा है कि सोया?'

उसने पालने मे देखा, बोली, 'जाग रहा है दादीसा—आँखे छत पर लगाए।'

'ला मुझे दे।'

गोदी मे ले लिया उसे। चिडिया की ओर मुँह करके खडी हो गई वह। होठो पर उसके फूटा

गीगै नै खेलाई ए चिडकली,
गीगे नै खेलाई,
गीगो रोवै च्याऊँ-म्याऊँ,
गीगै नै हँसाई-ए चिडकली—गीगै नै सेनाई
पगाजक बाधू घूघरणा थारे,
गळ मोतीडा रो हार
चाचडली थारे हिंगळु ढोळू,
पाखडल्या से रस गी धार—गीगै ने खेलाई
आगण छिडकू बाजरी ए,
नित उठ चुगवा आय

फुदक-फुदक कर नाच मोकळी,
गीगे नै समझाय-रिझाय
गीगै नै खेलाई ए चिडकली, गीगे नै खेलाई-ए

यह सुरीला गीत सुन पूरी का मन थिरक उठा। उसके मन पर मडराती काली छाया, ओझल हो गई। नया स्नेह और नई रूचि उसकी धरती पर अकुरित हो उठे। डोकरी पर भी नया उल्लास उतर आया।

'क्यो पूरी, अच्छा लगा तुम्हे यह गीत ?' पंडिताइन ने पूछा।

'बडा अच्छा लगा दादीसा।'

'तू भी गाया करेगी कभी ?'

'रोज गाऊँगी—भाई को लिए।'

'शाबाश, फिर देख तेरा भाई कितना जल्दी तैयार होता है। एक-दो बार तू और सुनेगी तो याद हो जाएगा तुम्हे।'

'हाँ।'

डोकरी ने पूरी से कहा, देख बेटी, तेरा तकदीर? कैसी तो तेरे को सीख दी मालकिन ने और कितना मीठा गीत सुनाया तम्हे ? माँ भी नहीं करती इतना तो, खूब राजी रहा कर।'

पंडिताइन घर चलदी।

पूरी चूल्हे पर जा बैठी। आटा गूदती धीरे-धीरे गुनगुनने लगी, 'गीगै नै खेलाई ए चिड़कली ।'

नौ

मिगसर आया। पूष और माघ भी आए। कपाती ठढ और हड्डियो तक मार करती हवा, बरखा और कुहरा सब आए। यहाँ तक कि अपना वादा तो वसन्त भी नहीं भूला—नहीं आया तो केवल एक दीनू ही। न एक पैसा ही भेजा और न कोई समाचार ही। दाल तो पडी भट्ठी मे, आटा-नमक की भी मुश्किल हो गई।

घाव मे घोवा, आधे पूष, ग्यारसी बीमार और पड गया। निमोनिया था। बचने की उम्मीद भी वुझने लगी थी। चिन्ता, उदासी, और अभाव घर पर घेरा डाले हुए थे। दादी-पोती दोनो ही नि शस्त्र—दोनो ही निराश, तब भी वे जी-जान से लगी थीं—किनारा खोजने मे।

वालक खटिया पर दुवका हुआ था। कफ की परत पार करता सास, यात्रा अपनी अटक-अटक कर पार कर रहा था। डोकरी मुह लटकाए पास बैठी हाथ कभी उसकी छाती पर फिराती, कभी आँखे उसकी, उसके मासूम चेहरे पर अटक जातीं। कभी वह चिन्ता से घिरती, मौत के पदचाप सुनने मे डूब जाती। अकेली थी, इसलिए सारे पुराने घाव उसके फिर से हरे होने लगते। इतना ही नहीं, एक नए घाव की सम्भावना उनमे

'तो क्या करू और कोई मारग ही नहीं सूझता?'

पूरी की हालत इससे भी बदतर थी। रात जागते कटती, और दिन [illegible] भरी कभी खाली, देह टूटती और आराम खोजती, मन कभी खाली और [illegible] हिला-हिलाकर भरा।

पंडिताइन दिन मे भी आती और एक बार रात को भी। माला और [illegible] हाथ से देती। पान, अदरख और शहद अपने घर से लाती। छाती रुई से [illegible] रखती। उबला हुआ पानी, दो-चार चम्मच चाय बता रखे थे। आती-जाती पूरी को समझा जाती, बेटी, बीमारी इस पर आकाश से नहीं टपकी। यह तो अबोध है [illegible] तो हम सयानों से ही हुई है कहीं-न-कहीं? दुख यह तो पा ही रहा है, कम हम भी [illegible] पारहे? सर्द हवा मार करगई इसे, जहर उसका उतरता-सा उतरेगा। रोने और चिन्ता करने से तो उतरेगा नहीं?'

पूरी कुछ आश्वस्त तो अवश्य हुई, पर चिन्तामुक्त नहीं।

मुरलीदादा, एक दिन बाहर के कमरे में बैठे हुए थे। छींके का गिरना हुआ और बिल्ली का आना, उन्हे पंडिताइन आती हुई दीख पडी। वे उसे सहज-सहज मे ही पूछ बैठे, 'कहाँ से आरही है सवारी?'

'दीनिया के घर से,' पास पडे आसन पर बैठते उसने कहा।

'क्या है वहाँ? अप्सराएँ नाचती हैं?' स्वर मे उनके उत्तेजना थी कुछ।

'आपको क्या लगता है वहाँ?'

'मुझे लगता है, वहाँ अपने घर की मिट्टी मे मिलती इज्जत और नगी होकर नाचती निदा।'

'वहाँ किसी कुकर्म की बदबू आती है आपको?'

'चमार के यहाँ जाने का यह भी कोई ढग हुआ? घर मे किसी के कुछ गडबड है तो आँख ही नहीं उठाती तू, और वहाँ सुबह भी और शाम को भी? फिर आती ही क्यो है, खा-पी वहीं लिया कर, और सो भी वहीं जाया कर? अरे गरीब है तो फटा-पुराना कोई कपडा देदिया, हारी-बीमारी आ पडी तो दस-पाँच की मदद करदी। लोग चर्चा करते हैं, मैं किस-किस का मुँह बन्द करू और किस-किस को समझाऊँ? नीचा मुझे ही देखना पडता है, और तेरे चिकने घडे पर समझ की एक बून्द भी नहीं ठहरती?'

पडितजी ने आक्रोश मे न कही जानेवाली बाते भी उगलदीं ण्र पंडिताइन बिल्कुल भी उत्तेजित नहीं हुई।

उसने धीरे से कहा, 'बताओ तो सही, चर्चा मे आखिर ऐसा क्या कहते हैं लोग आपको?'

'कहते हैं गुरूदेव, आप तो हैं पहले दर्जे के रामायणी और कर्मकाडी पर पडिताइन का एक पैर तो रहता है अपने घर मे और दूसरा होता है दीनिया चमार के यहाँ? वह आधी ब्राह्मणी है और आधी चमारी?'

'बस इतना ही कि और भी कुछ?'

'राड से अधिक कडवी गाली और कौनसी होती है, यह कम है?'

'चुनाव के दिनो मे आपके नाती-पोते चमारो के घर दिनो डेरा डाले पूछ हिलाते रहते हैं, ठुड्डियाँ उनकी हथेलियो पर तोलते हैं, और आप देखते हैं, पर कभी किसी पर जबान नहीं हिलाते और मेरे पर शेर बनकर गर्जते हैं?'

'मेरी खुद की पीठ ही मुझे नहीं दिखती तो औरो के लिए नाहक मे कडवी तूम्बी मैं क्यो तोडू? आ बैल मुझे मार, क्या निकालू इसमे?'

'गाँव के पडित होने के नाते नीतिगत बात तो समझा ही सकते हैं आप? पर समझाने मे साहस भी तो चाहिए कुछ? चलो छोड़ो इसे, यह तो बताओ, झूठी बडाई सुनना पाप कि पुण्य?'

'पाप।'

'आपको वे रामायणी कहते हैं, इस सरासर झूठ को सहज-सहज आप सुन कैसे लेते हैं?'

'झूठ क्या है इसमे?'

'आप वशिष्ट से तो बडे नहीं शायद?'

'नहीं, फिर?'

'परसो आप पढ ही नहीं, सुना भी रहे थे-राम सखा मुनि बरबस भेटा। ऋषि ने निषाद को अपने भीतर के सारे सकोच सारे बन्धन तोड, बाहो मे भर सीने से लगा लिया।'

तो वह नहीं, तब भी देखनेवाले को वह अनायास ही आकर्षित कर लेता है। घुटनो के बल पर चलता, अब वह पैरो पर भी थमने लगता है। पूरी, अपनी हर कीमत पर इस बात का पूरा ध्यान रखती है कि जीभ उसकी धूल के स्वाद से अछूती रहे।

वह दो जगह गोबर पाथने जाती है। महीने मे बीस-तीस की लकडिया बेच देती है—गुजर-बसर किसी तरह चल जाता है। बकरी छ महीने रखली, टलने पर बेचदी, रूपए घर मे लग गए। पडिताइन के दो गाएँ बिआ आई, पाव-पाव दूध सुबह-शाम वहाँ से मिल जाता है।

मजदूरी पर बाहर गया कोई भी मजदूर गाँव आता है तो पूरी बापू के समाचार पूछने बडी ललक लेकर जाती है। नकारात्मक उत्तर, सुन-सुन उस पर उतरने लगती है उदासी और डोकरी पर गहरी चिन्ता।

दस दिन बाद होली आएगी। घरो मे लिपाई-पुताई शुरू होगई। सूखे तीन रूपयो पर कभी-कभी पूरी भी गारा लीपने चली जाती है। मुहल्ले की कई लडकिया और भी होती है उसके साथ। लीपती हुई वे गाती हैं

आयो-आयो, ए बहुअड फागण मास
बहुअड फागण मास।
घर-घर होयरयो लीपणो
उतर्‌यो-उतर्‌यो ए बहुअड
खुडिया रो लेव।

इनके स्वर मे स्वर मिला पूरी भी कुछ समय के लिए सरस हो उठती।

अगले दिन हाडी-वेला थी—शाम को। पूरी ने हारा धुखाकर, हाडी छाणो पर टिकादी। पानी गर्म होने लगा। बाजरी कूटने पडोस की ऊखली पर जाने लगी, तभी मगरू काका की माँ—लठिया टेकती डोकरी के पास आ बैठी। आँखे उसकी गीली थीं और चेहरा उदासी मे गहरा डूबा हुआ। वह अपनी कलाई दिखाती बसबसाती कुछ कहने लगी। पूरी ने उसकी ओर देखा, जिज्ञासा उसकी बढ गई। रूककर कुछ सुनना चाहती थी पर ज्यो हीं हाडी का ध्यान आया, वह उतावली होकर चलदी।

वापिस घर आ, दादी से उसने पूछा, 'दादी, मगरू काका की माँ क्यो रो रही थी?'

'बेटी, मगरू की यह दूसरी बहू आई है न—नाते की?'

'हॉ।'

'बडी करकसा है।'

'कैसे दादी?'

'मगरू की पहलेवाली औरत तीन टाबर छोड गई है न।'

'एक छोरा और दो छोरिया ही तो?'

'हॉ-हॉ, उन बेचारो को यह आए दिन पीटती है पर रो-धो कर रहजाते हैं—करे क्या बेबसी में? आज सुबह उसने डोकरी के भी चीपिया दे मारा, कलाई पर सोजन है और

प्यार के इस उद्वेग मे भाई को उसने सीने से लगा लिया और ...
पर उभरा, 'माँ, तू क्यो चली गई एक-दो साल तो और रहती?' नीद ...
होगई उस पर उतरी ही नहीं।

रात के पिछले पहर आँखे उसकी अनायास ही कुछ लगीं। उसे माँ दीखी। ...
पर एकदम से फूटा, 'माँ, मेरी माँ, आ-माँ', वह ज्योंही उस ओर लपकी ...
खुलगई।

डोकरी की आँखे वैसे ही अधखुली थीं। वह खटिया से उठ खडी हुई ...
आकर बोली 'क्या हुआ बेटी? ऐसे क्यो किया? हाथ तो कहीं छाती पर नहीं ...
अब न माँ है, न भाई राम-राम कर।'

पूनी हडवडाई-सी उठ बैठी। सावधानी पकडते उसने कहा 'दादी माँ दिख गई।'

'मन का जजाल है बेटी–सपना है। सपने मे लड्डू खाने से पेट भरता है किसी का? ...
निकल गया लीक का क्या करे कोई? सपने की माँ का क्या करे हम? पानी पी ले
दो घूट लो-जा कुछ देर–शरीर हल्का हो लेगा।'

दो घूट पानी के उसने ले लिए पर सोई नहीं कुछ देर के लिए दादी के पास आ बैठी।

अब उससे रहा नहीं गया, अपनी उलझन उसने दादी के आगे रखदी, बोली, 'दादी हमारे भी नई माँ आएगी तो हमे भी पीटेगी और मगरू काका की माँ की तरह तुम्हे भी?'

'बेटी सभी औरते एकसी तो नहीं होतीं? नाता तो जगू ने भी किया है, उसकी बहू तो वैसी नहीं?'

'वह तो दादी उससे भी खराब है।'

'कैसे भला?'

'उसे तो मिरगी आती है दादी, बडी देर तक पडी रहती है। बहुत बार चूल्हा मैं जगू काका को फूकते देखती हूँ। वह देख-परख कर लाया होता उसे? दो पैसे की हाडी भी लोग बजा के लाते हैं?'

'कहना तेरा ठीक है बेटी, पर देख के लाता तो काम उसका दो हजार मे भी नहीं बनता और इसमे रीत-भात का उसे हींग लगी न फिटकडी काम बन गया उसका आसानी से।'

'यह तो दादी, और भी गलती की उसने, जानते हुए भी कीचड मे पड गया, गले से पत्थर बाध लिया? अब ऊमर भर रोएगा नहीं?'

'बेटी तकदीर मे लिखा ही ऐसा हो तो उसे मेटे कौन?'

वह सोचने लगी, 'तकदीर का यह खत कौन तो लिखता है और कौन पढ सकता है उसे?' इस पहेली को वह समझ नहीं सकी।

उसका निश्चय था, नाता, बापू ने पैसे लगाकर किया तो आएगी हमे मारनेवाली कोई करकसा और बिना कानी-कोडी के किया तो आएगी बीमारी कोई, हमारी मौत तो दोनो ही तरफ है। भावी मार और आफत का भूत, उसकी सरल चेतना पर मडराते रहे वैसे ही।

उठते-उठते डोकरी ने कहा, 'नए दिन पर अब अपना घर भी तो लीप-पोतले दो दिन?'

'लीप लूगी दादी।'

भोर होने लगा, भाई जग गया। वह उसकी परिचर्या मे लग गई।

शाम के पाँच बज रहे थे। पूरी हारे पर लगी थी और डोकरी पोते को लिए बैठी थी। उदास और टूटती हुई।

सोच रही थी, 'होली तो कल ही है, पैसा एक जहर खाने को भी नहीं, बेटे का कोई अता-पता नहीं, मेरे से कुछ होता नहीं, यह छोरी न हो तो बिना अन्न पैर सूजकर मरना पड़े और यह बेचारी करके कितना करे? आटे का जुगाड कर लेती है किसी तरह, यह कम है? पर जीवन केवल आटे से ही तो नहीं चलता? भला हो भागवाली उस पडिताइन का, उसकी छाया नहीं होती सिर पर तो यह पालने का फूल भी, कभी का झड गया होता? मैं भार, छोरा भार, घर का भार और छोरी अकेली? गाडी एक चक्के पर किते दिन चलेगी?' वह निराशा और आशकाओ से भरगई। उसे लगा खोपडी कभी फटाके की तरह फट न जाय?

पूरी किवाडी के पास खडी देख रही थी—सूरज छिपने मे अन्दाज कितनी देर और है? तभी सहसा उसकी दृष्टि अपने बाप पर पडी, वह दौडी 'दादी, बापू आगए हैं।'

डोकरी के होठो पर उछला 'दीनू।'

'हाँ माँ।'

वह इस तरह उठ बैठी मानो किसी मरणासन्न ने नई ऊर्जा पा ली हो।

माँ के पैर छूकर बैठ गया वह।

'दीनू पैसे तो भाड मे गए राजी-खुशी का समाचार तो भेजता? मैं तो रोज यहाँ कौए उडाती, आँखे फाडे किवाडी की तरफ झाकती रहती न रोटी भाती और न सुख की नींद ही आती कभी।'

'माँ कुछ दिन तो सूरतगढ रहा। वहाँ मलेरिया ने दबोच लिया कमाया वह वहीं लगगया। वहाँ से आगया अनूपगढ पटडी वहाँ भी जमी नहीं कुछ दिन ठीक, कुछ दिन बीमार तोला-माशा करते दिन काटे किसी तरह, अबकी उधर मुँह ही नहीं करूगा।'

'तो किधर करेगा फिर।'

'एक ट्रकवाला मिलगया कोई—पुरानी जान-पहचान का। उसके साथ रहूँगा। ईटे भरनी और खाली करनी। पचास-साठ रूपए रोज हो जाएँगे। चाय-बीडी मुफ्त।'

'तू जाने कहीं रह कहीं कमा राजी-खुशी के समाचार तो भिजवा दिया कर, हम चिन्ता मे तो नहीं सूखे—हर पहर मेरी नींद तो कम से कम न उचटे?'

'यह गलती अब नहीं होगी माँ, बेफिकर रह तू।'

ढाई सौ रूपए लाया था। सौ देदिए माँ को सौ जमा करवा दिए बालजी को—ब्याज पेटे, और पचास रख लिए अपने पास वापिस जाने के लिए।

होली धोकन्दी। अगले दिन इधर-उधर राम-रमी करली। पडिताइन के घर धोक खा, घर की सारी व्यथा-कथा उसे समझादी।

दूसरे दिन माँ से कहा, 'जाऊँ माँ?'

'जा तो भले ही पर बात सुन, हवा मे नहीं कान देकर।'

'कहदे।'

'देख बात सीधी-सी यह है कि मैं तो एक-एक पल निकाल रही हूँ गिन-गिन, बैठी-बैठी पता नहीं कब लुढक जाऊँ? चार महीने और समझ सावन आने मे, हीरा की बहु है न।'

'हाँ है।'

'उसकी भतीजी है उसके हाथ पिछले महीने ही खाली हुए हैं। दो टाबरो की माँ रही है वह। बाईस-तेईस साल की है कद-काठी ठीक सुलझी धीरी और खटकर खानेवाली है। आते ही घर सम्हाल लेगी।'

दीनू ने कान अपने रोपदिए माँ के बोलो पर और आँखे रोपदी माँ के चेहरे पर कारण उस औरत को उसने दो साल पहले अपने एक साथी के साथ देखा ही केवल नहीं था कुछ देर उसके पास बैठना भी पड गया था। चेहरा सावला पर पानी उसका शीशे की तरह

साफ, पतले होठ और उन पर नाचती नपी-तुली वाणी और रह-रह उनपर पमरती मुस्कान, विरल दाँत, धीरज से गाडे गए मोतियो की तरह चमकीले, तीखा नाक स्वाभिमान की तरह ऊँचाई लिए, बडी-बडी आँखें जिनमे काजल, काजल से उठती कान्ति और कान्ति मे सोई लज्जा और निश्छलता। सुघड और सहज कद-काठी। इस सम्मोहक रूप राशि से अभिभूत हुआ कुछ क्षण वह राग की दासता और मन के दुराग्रह मे खो भी गया था। उसने उसे बून्दी का लड्डू और थोडी नारियल की चिटकी का प्रसाद दिया था। उसे वह खा, दो घूट पानी के ले चल दिया था। चलते-चलते उसने सोचा था, 'वह आदमी कितना तकदीरधारी है जिसके घर यह औरत है।' इसके बाद वह चित्र उसकी स्मृति-परतों जा, पता नहीं कितना गहरा चला गया होगा?

इस समय प्रसग की हवा पा, वह हटात् ऊपर आगया और उसकी हृदय पोखरी पर बडी तेजी से तैर उठा। राग के उद्वेलन मे वह बीच मे ही बोल उठा, 'माँ, वह लुगाई तो मेरी भी देखी हुई है—बहुत भली है।'

'भली और देखी हुई, फिर चाहिए ही क्या? मैं राजी, मेरा राम राजी, गाडी तुम्हारी दौडती चलेगी। अब ढाई आखर की बात यह है कि दो हजार तो रीत के और पाँचसौ-सातसौ कपडे-लत्ते के, रकम तीन हजार के आस-पास जुटानी पडेगी। हीरा की बहू बीच मे है, लुगाई मरद है—बोलपर मरनेवाली, काम बना ही समझ।'

'क्या कहती है वह?'

'कहती है दादी सारा सौदा मेरे पर छोड, कह दिया उसमे फरक नहीं, पत्थर पर लीक समझ। अपने को और क्या चाहिए? बहू घर आई देखलू बेटा, तो समझले मैं तो जीती ही सोने की सीढी चढती सरग चली गई। आगे-पीछे बस, इत्ती-सी लालसा है, पूरी करदे रामजी। खून-पसीना एक कर, तू रकम का जुगाड कर किसी तरह।'

'करने-करानेवाले तो रामजी हैं माँ, खटने मे कसर मैं नहीं रखूगा, हाड पग निरोग रहे तो चार हजार, चार महीनो मे ही कर लूगा।'

पूरी और ग्यारसी के सिर पर हाथ फिराया उसने। पूरी की आँखे भर आई, होठ उसके नहीं खुले।

उसने कहा, 'पूरी सयानी होकर, आँखे भरती है? ऐसे करेगी तो घर की गाडी कैसे चलेगी? दादी तो जीती ही तेरे पर है? अबके आता तेरे लिए जूतियो की जोडी लाऊँगा, बढिया।'

माँ के पैर छू, आशा और इच्छाओ का सुनहला जाल बुनता, वह चल दिया।

दस

आपाढ की शुरूआत थी। एक जाट ठेकेदार के हाथ दीनू ने दो सौ रूपए भेजे थे। खबर पडते ही डोकरी लेने जा पहुँची। रूपए लेकर उसने कहा 'जजमान तीन महीने हो

गए—दुविधा के कीचड मे धँसते-निकलते, न मौत हुई न छुटकारा ही मिला, आपने आज राजी-खुशी के समाचार सुनाकर एक नया जीवन देदिया मुझे, भगवान् आपका भला करे।'

पलभर रूक उसने पूछा, 'किस मुकाम मे है वह?'

'मुकाम तो मैंने पूछा नहीं गगी, मुझे तो वह भागता-दौडता-सा मिला था खाजूवाला मे। एक ट्रक से उतरा दो मिनट बात कर, फिर उसी मे जा बैठा, ट्रक चल पडा। ये रूपये माँ को दे-दे, यह कहा।'

'शरीर से थका हुआ तो नहीं था?'

'मुझे तो सदा जैसा ही लगा।'

'आने-जाने का कुछ नहीं कहा?'

'चलते-चलते इतना ही कहा, अनूपगढ जा रहा हूँ अभी तो, गाँव अगले महीने आने की सोच रहा हूँ।

रूपये लेकर वह घर आगई।

वर्षा होगई। खेत जुत गए। सावन किनारे आ लगा। खेतो पर हरियाली पडने लगी। शकुनी शकुन देख सुकाल का निश्चय करने लगे। तभी भादौं ने दस्तक दी अपने आगमन की—गूजते आकाश के साथ। खुशी मडरा उठी गाँव पर। निदान ऊपर आने लगा। मजदूरी चल पडी—दौडती-कूदती। राग और रोटी एक साथ नाच उठे। मुँह सबके खेतो की ओर। हाथो मे सबके चुस्ती और पैरो मे फुर्ती। कन्धो पर कसिये लिए स्त्री-पुरुषो की टोलिया खेतो की ओर जाती दिखाई देने लगी। काम युद्धस्तर पर होने लगा। जवान मजदूरो की माँग बढ गई। गाँव का कोई मजदूर बाहर नहीं रहा—रहा तो केवल एक दीनू ही। सारे गाँव पर एक नया राग आ उतरा—केवल एक ही घर ऐसा था जिस पर आग बरस रही थी वियोग और बैचेनी की और वह था गगी का घर।

डोकरी आकाश को ताकती सोचती 'हजारो मील की जातरा करते बादल आते है—खाली नहीं मोतियो का खजाना लेकर और सारा का सारा धरती पर औंधा कर देते है धरती कितनी राजी होती है—वह सबकी माँ है। माँ मैं भी तो हूँ अभागिन, बाट देखते-देखते नजर ही धुधली करली कमाई नहीं तो न सही, खाली हाथ ही, आ तो जाता, और नहीं तो कम से कम समाचार ही भेज देता? रात-दिन की इस चिन्ता से चिता अरथी—वह भी पता नहीं कब नसीब होगी? इस अभागे घर से उदासी लगता है जाने की ही नहीं। न पंखे न पैरो मे जान बिना पते समाचार ही कहाँ भेजू? जाते समय कितना समझाया था पर उस चिकने घडे पर कहीं कुछ ठहरा भी तो नहीं? जी-मे-जी डालने से तो मैं रही? दीर्घ सांस लेती वह एक गहरी उदासी मे डूब गई।

हीरा की बहू कुछ दिन पहले मिली थी। हाथ जोडते डोकरी ने उसे कहा था 'इतने दिन रही तो थोडी और रुक बहू अब तो उसे दो-पाँच दिन मे आया ही समझ।' उस बात के बीते महीना निकल गया आज वह फिर आगई। उसे देखते ही डोकरी पर तो पानी के सौ घडे एक साथ ही पड गए। वह भीतर ही भीतर जडता से घिर गई।

वह बैठी तो बाद मे, कहा उसने पहले, 'दादी क्या हुआ, दो-पाँच दिन तुम्हारे अभी पूरे हुए कि नहीं? समाचार कुछ तो आया होगा?'

क्या कहे और क्या नहीं, कुछ समझ मे भी तो नहीं आरहा था उसके। तब बात की गिरती डोर को सम्हालते उसने कहा, 'बहू, क्या कहूँ, ऐसा तो सपने मे भी नहीं सोचा था कि कभी बुढापा मेरा, लाठी और भीत के बीच मे इस तरह घिरेगा कि न वह आगे ही बढ सकेगा और न पीछे ही सरक सकेगा? न मान, न जबान, कचरा अच्छा मेरे से, जलकर ताप तो दे ही सकता है?' और फिर वह, मुँह लटकाए उसकी ओर देखने लगी।

'दादी, कोयलो की दलाली मे काले हाथ, न तो मिली आसीस तुमसे और न शाबासी उनसे। मेरे मे तो यह हुई कि बाबाजी, बिल्ली भीतर आगई, तो बन्द करदे बेटे, अगले घर से तो रह ही जाएगी। भाई मेरे पास दो बार आ लिया, कहने लगा बहन दाता से सूम भला, चटके उत्तर दे, हम बाट आखिर कब तक देखे, कई सगे-सम्बन्धी घर आ-आकर चक्कर काटते हैं, हाँ-ना कुछ तो कह? आज शाम को समाचार भेज रही हूँ दादी कि घर-वर तुम अपना और कोई देखो, इतने दिन मैंने तुम्हे बाधे रखा, यह मेरी भूल समझो, भोले बाम्हन ने भेड खाई, फिर खाए तो राम दुहाई, आगे के लिए सीख आई। समाचार करनें से पहले, बात एक बार तुम्हारे कानो मे से और निकाल दूँ, बस, इसीलिए चली आई।'

'बहू ठीक कहती हो तुम, तेरे जैसी मरद लुगाई गाँव मे खोजने पर भी मुश्किल से मिलेगी कोई? तुम इस आफत मे पडती ही क्यो? कौनसा, तुम्हारी बेटी का ब्याह बिगड रहा था? और यहाँ ऐसे कौनसे पलग बिछे थे, आते ही जिन पर तुम्हारी भतीजी सुख की नींद सोती? तुमने तो मेरे डगमगाते ढाँचे को देखकर, अपनेपन मे आँखे जानते-बूझते बन्द करली थीं। सोचा था, अच्छा हो, दो दिन बेचारी डोकरी के सुख से निकले, पर बहू घर की तकदीर पर दुख के सिवा, तीसरा आखर ही तो नहीं लिखा-विधाता ने। आँगन मे फिरती-घिरती बहू को मैं फिर से देखू, पर फूटे नसीब मे इतनी जगह ही कहाँ? इन्तजारी मे तुम कितने दिन और अटकाए रखोगी, जवाब भेजना ही पडेगा-भेजदो।'

'ठीक है फिर।'

हीरा की बहू उठकर चलदी।

गगी को लगा, किवाडी तक आई बहू, रूठ कर जैसे वापिस लौट गई हो। किसे कहे, इच्छाएँ बुझने लगी, जीवन निराश हो उठा-अन्धकारमय।

आसोज बीता तो सही, पर एक-एक दिन हिमालय की तरह दुर्लंघ्य होकर। न दिन मे रोटी भाती और न रात को नींद ही आती। मन और माथे पर बोझ बढता रहता। सौ-सौ सशयो मे झूलती वह सोचती, 'ऐसा तो हो ही नहीं सकता कि वह हो और आए नहीं? या फिर बिल्कुल एकान्त सेता, अकेला खाट पर पडा कराह रहा हो और समाचार भेज ही न सके, यह भी हो सकता है।' वह काँप जाती। आँखो के आगे अन्धेरा नाचने लगता।

फिर सोचने लगती, 'भट्टो पर एक-दो बिगडेल तो मिल ही जाती हैं। वे शिकार की

टोह मे तैयार रहती हैं। शराब की उधर कमी नहीं। किसीके साथ खाने-पीने लगगया हो, और घरबार फिर ताक पर रखदिया हो, पर वह इतना बेपरवाह होजाए, मन मानता नहीं। हाँ बात-बात मे किसीसे उलझ गया हो, जिद्दी तो कुछ है ही नहरी इलाका है, सुना है लोग वहाँ, मिनख मार कर भी हाथ नहीं धोते, आदमी को काट कर, केले के छिलके की तरह फेंक देते हैं नहर मे। बैर-विरोध किसीसे गाँठ लिया हो और मौका पा, अकेले मे गडासा मार दिया हो किसीने, क्या पता?'

उसके आगे सशयो की एक अन्तहीन श्रृखला खडी होजाती। न मन ही किसी पर टिकता और न सशय ही मिटता। जाल से निकल नहीं पा रही थी, बडी दुविधा थी।

घर से निकल पंडिताइन के पास चली जाती। बात पीछे करती, आँखे पहले भरती। पडिताइन कहती, 'रो-ले पहले, जितना रो सकती है, रोटी छोडदे, पानी भी मत पी और नींद भी मत ले। क्या होजाएगा इससे? वह मरा या नहीं तू तो मर ही जाएगी, मौत से नहीं–बेमौत। मरी नहीं तो पागल जरूर होजाएगी–फिर गलियो मे भागेगी, छोरे पीछे हो लेगे तू उन पर ककड फैंकेगी धूल उछालेगी, वह मौत से भी बद होगा, पर तू ऐसा होने मे ही सुख समझती है तो कर।'

वह पडिताइन के सामने देखने लगी।

पडिताइन ने कहा 'डाली जाटनी याद है? दस ही साल तो हुए हैं उसे मरे।'

'हाँ याद है।'

'पागल नहीं होगई थी?'

'होगई थी।'

'क्या करती थी घूमती हुई?'

'आदमी तलवार होगया, आदमी बन्दूक होगया।'

'इकलौता बेटा था, उठता जवान खेत मे सोए को मार गया कोई। वह मर गया, वह पागल होगई–अति मोह मे। घर और खेत-खला सब धरे रहगए।'

अबोध की तरह वह फिर सामने देखने लगी।

पडिताइन के होठ फिर गतिमान हो उठे। उन पर उछला, 'गगी, रोने से इतना ही मोह है तुझे तो रामजी के आगे रो।'

'उन्हे बिना कुछ कहे-सुनाए ही रोने लगू?'

'सुना उन्हे प्रभु मेरे तो सब कुछ आप ही हैं, केवल आप। आपको छोड कहाँ तो मैं जाऊँ और किसे सुनाऊँ–रोना अपना? रोना सुनना भी तो कौन चाहेगा–सिवा आपके? मुल्ले की दौड मस्जिद तक सिवा आपके न मुझे कोई सुननेवाला दिखता और न आपसे बढिया मै और किसी को जानती भी। न पढी-लिखी और न ज्ञानी-ध्यानी। रोने के सिवा और कोई तरकीब भी मुझे नहीं आती–वह भी पूरी नहीं आधी-अधूरी। और लगादे आँसूओ की झडी। हर आँसू तुम्हारा मोती लेकर उगेगा दुख और पीडा तुम्हारी हँसी मे बदल जाएगी बीमारी मिट जाएगी मुक्त होजाएगी तू। रोनेवालो के आगे क्या रोती है रोना मेटनेवाले के आगे रो–ससार तो रोनेवाला है।'

वह कुछ पकडने की चेष्टा मे थी पर पहेली कुछ अनसमझी लग रही थी उसे, इस तरह कोई रो भी लेता है क्या? इस असमजस से निकल ही नहीं पा रही थी। जिज्ञासु आँखें उसकी पडिताइन की ओर झाक रही थीं।

पटिताइन भाव चितेरी थी। सोच रही थी, 'लगता है, धरती ने बीज अभी पकडा नहीं?'

उसने फिर कहा, 'असुवन जल सींचि, पेम बेलि बोई? तूने सुना है कि नहीं कभी?'

'सुना है कितनी ही बार।'

'तो मीरा नहीं रोती थी।'

'रोती तो थी।'

'पर वह तेरी-मेरी तरह रोती तो उसकी दुर्दशा नहीं होती?'

'होती।'

''तो दुनियादारी का रोना छोड, अब कुछ पेट-पूजा भी तो करले।'

'भूख की तो मन मे ही नहीं मालकिन।'

'बस, रोग शुरू ही मन से होता है, उसकी सुन ही मत, खा ले, विश्वास रख मरेगी नहीं?'

एक फुलका, कुछ खिचडी-कढ्ढी खा लिए उसने। दो घूट पानी पी लिया उसने।

पडिताइन ने सहज भाव मे कहा उसे, पेट पर हाथ फेरले, डकार आती हो तो ले-ले, नहीं आती हो तो जाने दे।'

गगी का उखडता धीरज एक बार फिर जमगया। उसकी समझ मे और कुछ आया या नहीं, पर वहा जाने पर इतना वह जरूर समझगई कि ससार के आगे रोना वृथा है।

पडिताइन ने कहा, 'गगी, अब सुन काम की एक और बात।'

'फरमावो।'

'अनूपगढ, खाजूवाला की तरफ से कोई आए, या उधर जाए तो तू भी ध्यान रख और मैं भी रखूगी। होना है वह तो होगा ही, तू धीरज मत छोड।'

गगी इस समझ पर कुछ टिकी रहती।

कार्तिक के दो दिन निकल गए। डोकरी को पता लगा, गुलामू ढोली मागता-खाता नहरी इलाके की तरफ से आया है। ग्यारसी सोया था। उसकी ओर देखते उसने सोचा, 'यह जागेगा इतने मैं गुलामू तक हो आऊँ, वह कुछ खबर दे तो?'

घुटनो पर हाथ रखती वह उठी। पैर सोगए थे। वे झनझना उठे। ढाँचे का भार वे सम्हाल न सके। वह वापिस बैठ गई और पिंडलियो पर हाथ फिराने लगी। सोचा, 'थोडी देर बाद अन्धेरा उतरने लगेगा, पर उसका गाँव के किनारे पर है, पहुँच भी जाऊँगी किसी तरह तो वापिस घर लेना मुश्किल होजाएगा। सुबह ही बात।' हिम्मत हारदी उसने।

सूरज छिपगया। अन्धेरा उतरने लगा। पूरी आ पहुँची। सिर पर उसके खारिया था। उसमे कुछ टींडसियाँ, पाँच-सात कीलो काकडिए, और दो वडे-वडे मतीरे थे।

खारिया उतरवाते गगी ने कहा, 'पूरी, भार ज्यादा नहीं?'

है तो कुछ ज्यादा ही दादी, पर मर-पच कर ले आई किसी तरह।'

'गरदन जकड नहीं गई?'

'हाथ तो नहीं जकडे दादी, दबा लूगी उनसे।'

पैर भी तो थक गए होगे बेटी।'

'सोकर उठूगी तब तक वे भी तैयार होजाएँगे।'

'काकडिए दो-चार कम ले आती?'

'छीलकर सुखोलेगे दादी, खेलरिया होजाएँगी, लप-छाछ भी कभी हाथ नहीं आई तो, काम इनसे ही निकालेगे।'

'दलिया हारे पर चढाया हुआ है, कडछी फिराकर मैं देखती हूँ, तू इत्ते एक काम कर बेटी थकी हुई तो तू है, तकलीफ तो होगी तुम्हे?'

'बोल दादी?'

'गुलामू ढोली आज नहरी इलाके की तरफ से आया है, दीनू का भी कोई समाचार हो तो उसे पूछ आती बेटी।'

पूरी आई वैसे ही फिर चलदी। थकी, भूखी, सिर पर उतरता अन्धेरा और पैर नगे। जूते पहनने का मुहूर्त पता नहीं कब उतरेगा भाग्य के आकाश से?

आने-जाने मे करीब आध-घटा लगा उमे । सूखा जवाब लिए वह वापिस आगई । डोकरी क्या करती छाती पर शिला रखते सुन लिया चुपचाप। खा-पीकर खटिया पर आडी होगई।

पूरी ने कहा 'दादी, छुरिया कहाँ है, काकडिए छीललू।'

'थकी हुई है सोजाती।'

'दो घडी का काम है दादी।'

'चूल्हे के पीछे होगा देख।'

वह उठी ले आई छुरिया बोली, 'मिल तो गया दादी, पर है नगा।'

'नगा-टका जैसा भी है बेटी, काम निकाल ले। हत्था था आधा-अधूरा, किस्मत को वह भी नहीं सुहाया। उसे भी चूल्हा चाट गया-आज सुबह।'

'ऐसे कैसे दादी।'

'दूध गरम करते चूल्हे की लौ कब लगी उसके, मुझे तो पता ही न लगा।'

डोकरी लेटी रही । पूरी काकडिए छीलती-छीलती बोली, ' दादी , अब तो छुरिए की धार भी भोथरी होचली, चलता मुश्किल से ही है।'

'बेटी इस बेचारे को क्या दोस दस बरस पहले, गॉव मे लुहारो का एक गाडा आया था। लुहारी कोई भली मिल गई उसे एक दी अठन्नी और दो तगारी छाणे। हत्था लगाया रामू खाती से दो-चार घडी हाजरी उसकी भी भरी। दस बरस मे तो बेटी मोटर ही घिसजाती है-यह तो छुरिया है अब तो नई काया नई माया, दूसरा ही लेगे।'

डोकरी दिन बडी मुश्किल से पूरा करती और रात और भी मुश्किल से। एकदिन अखबार पढते-किसी से सुन आई ' बिरदवाल हैड पर स्नान करते दो मजदूर डूब गए।'

उसने बडी गहरी जिज्ञासा जताते कहा, 'बेटा, इसमे मजदूरो के नाम भी तो दिए होगे, पढ तो?'

'नाम तो इसमे नहीं दिए गगी।'

'आगे और देख तो, ऐसी खबर और तो नहीं कोई।'

पन्ना पलटते उसने सुनाया, 'ट्रक-ट्रोली की भिडन्त मे चार मजदूर मरे, दो की हालत गभीर।'

'कहाँ हुआ यह हादसा?'

'गगानगर के पास।'

'मरनेवालो के नाम दिए है?'

'नाम तो नहीं दिए, गगी।'

'तब कैसे पता लगे? दीनिया भी उधर ही गया हुआ है। उधर जानेवाला कोई हो तो कुछ पता तो करवाओ रे भाई, मेरे तो तुम्हीं बेटे हो?'

'वचने का दरिद्रता,' 'कराएँगे गगी।' ऐसी होठी-सहानुभूति से पलभर का ढाढस तो उसे मिलता ही।

उसकी व्यग्रता भीतर ही भीतर कुहराम मचाने लगती तो ऊबी हुई कभी वह भैरूजी के थान जाकर गूघरी चढाती और कभी भोमियाजी के थान, पाँच बताशे रख आती। हाथ जोड करूण कठ से कहती, 'अरे कुछ तो सहायता करो, धन नहीं माँगती, रोटी-पानी के लिए भी नहीं सताती, राजी-खुसी छोरा घर आजाए—खाली हाथ ही हो चाहे, बस और कुछ नहीं माँगती।' फेरी देकर आजाती।

जी मे आया, भोपे के पास जाऊँ। बाजरी घर मे कीलोभर ही थी। कल शाम तक काफी थी। कल की कल देखी जाएगी? विचार प्रबल हो उठा, वश मे न रहा। कीलो मे से, अन्दाज आधी, एक डलिया मे लेली और चलदी उधर।

थान माताजी का था। भोपा आसन पर जमा था। बाजरी थान के आगे डालदी उसने। हाथ जोडती के होठो पर बडे आर्तभाव से फूटा, 'हे माता किरपा करो, दीनिया को बुलादो, जागरण कराऊँगी तुम्हारा—नत्थू नायक के डमरू पर।'

ऊँघते भोपे ने दो-चार उबासिया लीं, फिर कहा, 'जा, चिन्ता मतकर, आज से सातवे दिन दीनिया तेरा घर आया रहेगा, एक फेरी मेरी रोज दे दिया कर।'

'राजी-राजी दे दूँगी माता,' और दडवत् होती पसर गई भोपे के आगे, धीरे-धीरे उठती बोली, 'आपके मुँह मे बाबा, घी-शक्कर, जीभ फले आपकी।'

थान की परिक्रमा कर घर आगई। भीतर का कोलाहल कुछ कम हुआ।

दिन सात ही नहीं दस निकल गए। दीनू का आना तो दूर, कोई समाचार भी तो नहीं उसका। ज्ञान आया गँवाने के बाद, बाजरी न पेट मे डाली और न किसी खेत मे, चिडियाँ चुगतीं तब अच्छा था, अकारण गई—पत्थर तले।' अपनी गलती पर बडी पछताई वह।

किसी ने कहा, 'गगी, अपने गाँव मे तो ठाकुरजी के पुजारी से सब नीचे हैं, उसे पूछ तू कभी।'

उसने कभी का सुन रखा था, 'पडित को खाली हाथ कभी नहीं पूछना चाहिए। खाली हाथ का फल भी खाली होता है।'

घर मे पूजी थी वह उससे छिपी नहीं थी। डेढ रूपया था केवल। डेढ शुभ नहीं। चवन्नी का नमक लेकर, अठन्नी भुनाली उसने। सवा रूपया लिए पुजारी के यहाँ पहुँची।

सूरज पश्चिमी ढाल पर लटकने लगा था। मन्दिर के चबूतरे पर पीपल की छाह पसर रही थी–सज्जनो की मैत्री की तरह। पूजारीजी एक ऊनी आसन पर बैठे नसवार सूघ रहे थे। पास मे उनके दो भक्त और बैठे थे। आगे पचाग रखा था। डोकरी ने दूर से हाथ जोडे, और छाया मे बैठ गई चबूतरे से नीचे।

'क्यो गगी, बोल नीचे क्यो बैठ गई, चबूतरे पर आजा।'

चबूतरे पर, एक तरफ बैठती ने कहा 'महाराज, बादल हो आप सब पर बरसते हो, कुछ किरपा मेरे पर भी करो।'

'बोल?'

'समय सात महीनो से अधिक निकल गया, पर दीनू का न समाचार और न कोई अता-पता। जाऊँ भी कहाँ पूछू भी किसे? आप पतडा अपना अच्छी तरह टटोल कर बात है जैसी बतादे, न नींद आती है और न रोटी ही भाती है, आपके जूतो की चाकर हूँ–आज की नहीं आई जबसे,' और सवा रूपया उनके आगे सरका दिया।

'अरे यह तकलीफ क्यो की–उठाले-उठाले।'

'कहते हैं बापजी, खाली हाथ पूछना शुभ नहीं होता।'

पास बैठा एक बोला, 'डोकरी गुरूजी, कोई घूरे की बेल नहीं है, वर्षों इसने चन्दन की शाख सेवन की है, अछूती आज भी नहीं है, ठीक कहा है इसने, फलेन फलमादिशेत्।'

पुजारीजी ने पतडा खोला, पाँच-सात मिनट उसे टटोला, ग्रह-गोचर का हिसाब लगा, फलादेश मे कहा, 'पैरों में शनि है उसके, आमदनी कम, फिरना अधिक है पर दिवाली पर घर जरूर आजाना चाहिए।'

'दिवाली पर नहीं आया तब?'

'फिर तो ग्रह कुछ कष्टकारक ही समझ, पर पहले से ही ऐसा क्यो सोचती है तू?'

'जी, पापी है बापजी, ठहरता नहीं?'

घर आगई वह।

टूटती-बिखरती आशाओ को जोडते-साधते, दिवाली दादी-पोती ने ले ही ली किसी तरह। पंडिताइन ने आटा, गुड, चावल, लपभर बडियाँ और सौ-सवासौ ग्राम घरू घी पूरी के हाथ दोपहर को ही भिजवा दिए। रसोई दादी-पोती ने सूर्यास्त से घटाभर पहले ही बनाली। डोकरी सोच रही थी, 'पतडा की बात कहीं मेल खाजाय, शाम तक दीनू शायद आजाय।' वह झोपडे के आगे पालथी मार, बैठ गई–आँखे रोपदीं किवाडी की ओर।

सूर्यास्त होगया, आकाश पर तारे टिमटिमा उठे और घरो पर श्रेणीबद्ध दीपक। चार दीपक पूरी ने भी करलिए, दो झोपडे मे और एक-एक किवाडी से सटती दीवारो पर। उसे भूख सता रही थी और ग्यारसी को नींद। वह पूरी की गोद मे ऊँघने लगा था। पूरी ने

उसे सचेत करते दो बार कहा, 'नींद मत ले मुन्ना, मीठी लापसी बनी है–तेरे लिए।' पर नींद मीठी कि लापसी? आँखे एक बार खोल, फिर वैसे ही ऊँघने लगा वह।

डोकरी ने कान खडे कर रखे थे। ज्योही उसे पदचाप का कुछ आभास होता, आँखे झट उधर उठा वह कहती, 'पूरी देख तो बेटी, कोई आ रहा लगता है?'

पूरी किवाडी के ऊपर से कुछ झाक कर कहती, 'कोई नहीं है दादी।' जितनी बार डोकरी ने कहा, उतनी ही बार पूरी ने देखा–प्यासी आँखो से, पर कोई आए तो दीखे?

अब पूरी से रहा नहीं गया। उसने कहा, 'थाली पर बैठे दादी, रसोई ठढी नहीं हो रही?'

'तुम बहन-भाई जीमो बेटी, परोस देती हूँ।'

'और तू?'

'मैं बाद मे ले लूगी दो कौर।'

'रोज तो साथ, आज बाद मे क्यो दादी?'

'मेरी तकदीर ही ऐसी है बेटी।'

पूरी ने दादी की ओर देखा–दीपक के टिमटिमाते उजास मे। आँखे उसकी सजल थीं। पूरी का हृदय भी अधीर होउठा। आँखे चू पडीं उसकी भी, उसने कहा, 'रो मत दादी, तू नहीं जीमेगी तो मैं भी नहीं जीमूगी।'

पूरी की तरफ देख, डोकरी का हृदय, आग के पास रखे मोम की तरह पिघल उठा। उसने सोचा, 'भोली छोरी है दिनभर काम मे पिसती रही है, भूखी है, आँते इसकी सिकुड रही है भीतर ही भीतर। दीनू के आने न आने मे इसका क्या कसूर है? बालक भी भूखा है, इनका दिल तोडकर क्या लूगी मैं–सिवा पाप और पीडा के?' उसने कहा 'बेटी, इत्ती देर तो सोच रही थी, शायद तेरा बाप भी आजाए, फिर सब साथ ही जीमे, पर इस फूटी तकदीर मे ऐसा कहाँ? ला परोसू बेटी, भाई तो सोगया होगा?'

'हॉ सोगया दादी, अब तो वह क्या खाएगा, सोया रहने दे।'

'जगाले बेटी नया दिन है, थाली पर बैठना चाहिए।'

उसे जगाते थोडी-सी लापसी पूरी ने उसके होठो से छुवादी।

'बस होगया बेटी, सकुन है यह तो,' डोकरी ने कहा।

दादी-पोती ने भी जैसा रुचा थोडा-बहुत खा-पी लिया।

लक्ष्मी पूजन के लिए इनके पास था ही क्या? एक मतीरा और मुट्ठीभर बेर पडे थे। बेर एक डलिया मे रख लिए और मतीरा रख लिया नीचे फर्श पर। डलिया मे स्वास्तिक बनाया, और फलो पर कुकुम की उँगली छीटदी। हाथ जोड दिए, पूजा होगई।

बहन-भाई सोगए पर डोकरी की आँखे लगने का नाम ही नहीं ले रही थीं रात के पिछले पहर तक एक ही आशा उसके अन्तस मे उठ-उठ उसकी आँखो पर मडराती रही। रात गई और आशा भी।

दिवाली गए आज चौथा दिन है। भाई सोया था। डोकरी एक खाट पर लेटी थी। गर्दन कनाई पर टिकी थी, और एक हाथ ढीला हुआ पेट पर पडा था। कमर कुछ-कुछ दु

रही थी। नींद के अभाव मे सिर भारी था और ऑखे थी खुलती-बन्द होतीं। पूरी पास बैठी कुछ टींडसियो के बीज निकाल रही थी। सूखने पर फोफलिया होजाएँगी वे।

सूरज सिर पर आगया था। सहसा किवाडी पर किसी की आवाज आई, ' घर मे है कोई?'

पूरी बाहर आई। उसने देखा, एक आदमी किवाडी के बाहर खडा है, सिर पर रेतिया रग का तौलिया लपेटे। वह उसे अपने गॉव का तो लगा नहीं।

'बोलो?' उसकी ओर देखते उसने कहा।

'दीनूराम का घर यही है?' अजनबी के होठो पर उछला।

'हॉं, यही है।'

'तू लडकी है उसकी।'

'हॉं।'

हवा पर तैरती बात की तनिक-सी भनक ने डोकरी के कानो को भी छू लिया। उसने सोचा 'खोद-खोद कर पूछनेवाला ऐसा कौन है?' उठकर वह भी बाहर आगई।

अजनबी की ओर ताकती बोली,' आ बेटा, कहाँ से आया? पहचाना नहीं?'

'गॉव मेरा मानपुरा है दादी, नायक हूँ।'

'मानपुरा यही न, जो पाँच कोस है यहाँ से।'

'हॉं वही।'

'आ बेटा कैसे आया?'

'भीतर चलो बताऊँगा,' वह उसके पीछे-पीछे चलता झोपडे मे आ बैठा। कहने लगा, 'दादी, सुबह-सुबह ही चला था–कलेवा करके और अब तुम से मिलकर फिर चलदूगा, दस कोस धरती और निकालूगा पैरो मे से। तब तक चूर-चूर नहीं हो जाऊँगा?'

'ठीक कहते हो बेटा, पर और दस कोस मैं नहीं समझी?'

'बतादूगा यह भी, पर दादी तुम्हे यह पता नहीं कि आखिर यह अनचाहा कष्ट क्यो ओढा है मैंने आमदनी क्या होगी मुझे इससे?'

'यह तो तुम्हीं जानो, मैं यह कैसे जानू–कैसे बताऊँ?'

'आमदनी है तो केवल तुम्हारा आसीरबाद ही।'

'मेरा आसीरबाद ही आमदनी है तो देने मे कजूसी भला मैं क्यो बरतूगी–भरपूर दूगी।'

'ऊपरी-मन से तो नहीं कह रही?'

'ऊपर-मन से क्यो कहूँगी, मेरे घर का कौनसा पलोथन लगता है? और झूठ बोलू, अमर तो नहीं रहना मुझे?'

'पर विश्वास रख आसीरवाद मुफ्त मे नही लूगा दादी, तुम्हारा बहुत बडा उपकार करके लू तब तो देगी नही?'

'देगी क्यो तब तो और राजी दे पडा आसीस मैं क्या दू मेरी ऑतें अपने आप ही दे देगी।'

'दीनू के लिए तुम रोज तिल-तिल जलती होगी, न पूरी नींद ही आती होगी तुम्हे और

न पूरी रोटी ही भाती होगी–माँ हो तुम उसकी इसलिए?'

'मै क्या बताऊँ, मेरा चौखटा देखकर तू ही नापले दशा उसकी, वह हँसता है या बुझता है?'

'इस दुर्दशा से निश्चिंत हो जाओ तो उपकार ही मानोगी?'

'यह भी कोई पूछने की बात है बेटा? इससे बडा उपकार और क्या होगा–मेरे लिए?'

डोकरी को एक सुनहरा भविष्य उतरता लगा अपने ऊपर–इच्छित और अप्रत्याशित। आशान्वित हुई वह उसकी ओर विस्फारित आँखो से देखने लगी।

अजनवी ने कहा, 'तो सुन फिर, और बाध आसीस के पुल मेरे लिए।'

डोकरी और उल्लसित हो उठी, सोचने लगी, 'और कुछ सुनने से पहले ही, इसके मुँह मे शक्कर भरदू।'

अपने कान और आँखें उस पर रोपदिए उसने।

वह बोला,'दादी, मैं दो महीने से अनूपगढ के पास ही एक ईंट भट्ठे पर गुमाश्ता था। सामान लेने मडी पाँच-सात दिन से जाया करता। एकदिन सहज-सहज मे ही दीनू से मेरी मुलाकात होगई। गाँव-पडोसी होने के नाते और खासकर उसके सीधेपन के कारण आपस मे हमारा मेलजोल बढगया। कई बार मिलते और घर-ग्रिस्त की बाते करते। वह किसी कमठे पर जाया करता। दिवाली के दस रोज पहले हम दोनो मिले। मैंने पूछा,'गाँव कब जाओगे?'

'दिवाली पर,' उसने कहा।

मैने कहा,'दिवाली पर ही मैं जाऊँगा, साथ ही चलेगे फिर? बारस को चले यहाँ से–बारह बजे की बस से–धन-तेरस को सुबह घर पहुँच लेगे।' बात पक्की होगई। मैंने इतना ओर पूछलिया, 'गाँव कब छोडा था?'

'सात महीने तो समझ ही लो,' उसने धीरे से कहा।

'इतने दिन से नहीं गए, झगड कर निकले थे क्या?' मैने पूछा।

'क्या बताऊँ, दिनमान का ही चक्कर समझो,' उसने कहा।

'घर पर कौन है?' मैंने सवाल किया।

'बूढी माँ है, बारह-तेरह साल की एक बेटी और सवा-साल का एक छोरा।'

'और लुगाई?' मैंने कहा।

'चलवसी वह तो,' उदास होते उत्तर दिया उसने।

'अरे, अब समझा मैं तभी नहीं जा रहे हो तुम? औरो को छोडो बूढी माँ का तो ध्यान रखो, उसे तो हर दो माह बाद सम्हालना ही चाहिए था' मैंने उसे समझाते हुए कहा।

'बहुत दुरा है इसका मुझे पर लाचारी भी बडी बेरहम है?' वह बोला।

'दादी उसके इस उत्तर से मुझे लगा कि अपने पैसे वह किसी मे फँसा बैठा या ठगा गया कहीं। अधिक गहराई मे जाना मैंने ठीक नहीं समझा। चलते-चलते मैंने कहा 'बारस को तुम्हारे पास मै घटाभर पहले ही आ पहुँचूगा' और मैं चल दिया।

डोकरी की उत्सुकता बढ रही थी बाढ की तरह और अधीरता सीमा के बाहर। उसकी

अलसाई चेतना पर एक नई आशा जन्म लेने की उतावल कर रही थी। सोच रही थी 'ललाट की बुझती रेखा कोई शायद फिर से चमक उठे। कमाई कहीं फँसा बैठा होगा, यह अन्दाज तो मैंने पहले ही लगा लिया था, चलो गई वह तो, रेत फैंको उसपर तब भी घर तो आना चाहिए था।'

पूरी बोल कुछ भी नहीं रही थी, पर कानो से पी सब कुछ रही थी।

'तो दादी, बारस को मैं अपने कहे समय पर अनूपगढ पहुँचगया। मैंने इधर-उधर खोजा उसे, पर वह मिला नहीं। सोचा शायद वह पहले ही चलागया हो। फिर सोचा जाना तो नहीं चाहिए कहीं बीमार तो नहीं पडगया। कुछ देर तो मैं दुविधा मे झूलता आँखे इधर-उधर फाडता रहा। एक कोई साथी आ मिला, उससे पूछा, उसने बताया 'तीन दिन पहले दो मजदूर और एक औरत ट्रक की चपेट मे आ कुचले गए, पता नहीं चलानेवाला पीए हुए था या वे तीनो। अन्धेरे का फायदा उठाकर ट्रकवाला गया कहीं। लाशो की शिनाखत हुई नहीं। पुलिस मे चीरफाडकर उनको ठिकाने लगवा दिया। फोटू और कपडे थाने मे होगे, चाहो तो बहम निकाल लो।'

डोकरी का सशय ही बढने लगा और उसका रक्त-सचार भी। 'यह कहीं उलटी न सुनादे,' एक अमगल की आशका उस पर मडरा उठी। भय भीतर उतरने लगा।

'दादी, उसकी बात मे मुझे कुछ सार लगा। मैंने सोचा बस मे तो अभी घंटेभर की देर है, यह रहा पास मे ही थाना, देख आऊँ तो क्या हर्ज है, भगवान करे उस बेचारे का बाल भी बाका न हो, देख आने से मन का गिरगिराट तो मिट ही जाएगा। गया और अध-घटा थाने मे रूका।

'दादी, तीनो फोटू मैंने देखे।' इतना कह एक बार वह चुप होगया।

डोकरी के होठो पर सहसा फूटा, 'अरे उसका फोटू तो नहीं था उनमे?'

'दादी, अपनी उतावल छोड एक बार, पहले मेरी सुनले। इस तरह धीरज खोती है तो आसीरबाद तो गया भाड मे, मेरा यहाँ तक आना ही बेकार है?'

'नहीं बेटा, इस तरह नाराज मत हो, पहले अपनी कह तू।'

'दादी, मुझे जो नहीं देखना था वहाँ, वह देखा मैंने। उनमे एक फोटू मेरे मामा के बेटे का था। तेईस साल का गबरू जवान था वह और माँ-बाप का श्रवण। शादी उसकी पिछले साल ही हुई थी। दूसरा फोटू उसकी बहू का था। वह मेरे ही गाँव की छोरी थी—उन्नीस साल की। सीधी और खटनेवाली। मामा-मामी मेरे बूढे। मामा के घुटनो मे गठिया। खटिया भली और वे। टट्टी-पेशाब भी घर के पिछवाडे मे ही करते हैं। बीडी पीते कभी धोती-कमीज और कभी गुदडी-चद्दर धुखा लेते हैं। मामी इनसे भी ज्यादा परले पार। नजर उसकी बुझती और काया काँपती। रोटी किसी तरह सेक तो लेती है पर तवे की आग उगलती कोर, कभी उसकी उगली पर उठजाती है और कभी कलाई पर। कभी रोटी धुखने लगती है और कभी ओढनी कहीं से । बहू-बेटा, दो दिन ही कहीं चले गए तो आधी भूख निकालनी पडती है। पानी का घडिया कोई पडोसिन रखदे—दया विचार कर होठ गीले उनके तभी होते हैं। बहू और बेटे पर ही गाडी इनकी सरक रही थी, और

घर चल रहा था।

मैं मामा-मामी के पास आया। आते ही सबसे पहले मामी ने पूछा, 'डूँगर,मगतू का कोई समाचार है रे? पाँच-सात दिन का कहकर गया था–महीना हो रहा है। रोटी और नींद छूट रहे है हमारे तो?' दादी, मैं बडे धर्म सकट मे पड गया, कहूँ तो क्या कहूँ? सोचा, कहना तो पडेगा ही–रोकूगा कब तक? तिल-तिल कब तक जलेगे ये? प्राण इनके यो हीं अन्धेरे मे भटकते अन्धेरे मे ही डूब जाएँगे। रोज आग, रोज कुम्भीपाक अच्छा नहीं, सच को समझकर, ये जी अपना सही पर जमाले किसी तरह, लाभ इसी मे है । कहने से पहले मुझे एक वात याद आगई–आँखो देखी।

मैंने कहा, 'मामा,कल ही की बात है, हमारे गाँव के मुन्ना महाराज को जानते ही हैं–शायद?'

'हाँ जानता हूँ, मन्दिर के सामने ही घर है–आगे पीपल है उसके।'

'हाँ वही।'

'परसो रात की बात है, उनके छोरे को खेत मे पान लग गया। कल वह चलबसा। एक ही छोरा था। बहने चार हैं। दो ब्याही हुई, दो कुवारी। दो साल हुए छोरे की शादी किए। अरथी बन्धी तब तक तो होठ बन्द रखे बाप ने। उठाने लगे अरथी को, तो एकदम अरथी पकडली और बुरी तरह चिल्लाया–गाँव के ऊपर-कर, 'नहीं लेजाने दूगा, छोरा मेरा है, नहीं लेजाने दू–छोडदो–नहीं लेजाने दू।' कइयो ने समझाया, 'अब क्या करोगे इसका?'

'क्या करते हैं? घर मे रहेगा, नहीं लेजाने दूगा मेरा है? हट, जाओ और लाश से लिपट गया। दो तगडे से आदमियो ने बडी मुश्किल से अलग किया–लाश से उसको। छुडाने की कोशिश करता, सिर पटकने लगा, लाश ठिकाने लगाकर नहीं आए तब तक उसे आदमी पकडे रहे।

छोरे की माँ को भी यही हाल था। उसे कई औरतो ने कमरे मे ढके रखा। वे दोनो अब भी पागल की-सी हरकते कर रहे हैं। सयाने उन्हे समझाने मे लगे हैं।'

मामा ने कहा, 'भानजा, सिर धुनो चाहे गला फाडो, एक-दो दिन या ऊमरभर। झोका निकल गया वह निकल ही गया, वापिस कैसे वाहुडेगा?'

मामी ने कहा, 'ननदू सीसी फूट जाने पर रो-कूक कोई साबित कैसे कर लेगा उसे?'

मैंने कहा, 'ऐसी ही बात आपके और मेरे साथ घट जाए तो?'

'घट जाए तो क्या उपाय, मौत के आगे क्या जोर किसी का?'

'हम भी मुन्ना महाराज की तरह करने लगे तो?'

'क्यो करे पागल थोडे ही हैं पर तुम ऐसी खोटी बात सोचते ही क्यो हो?'

मैंने आहिस्ता-आहिस्ता सारी बात उन्हे कहदी। मैं सच कहता हूँ दादी, झूठ बोलूँ तो परमात्मा के घर गुनहगार होऊँ वे बिल्कुल नहीं रोए। मामा ने साफ-साफ कहा 'भानू हमारे हाल खोटे ही होने हैं तो कौन रोकेगा उन्हे? हमने किए ही ऐसे हैं। जहाँ भुगतने के सिवा माफी का नियम ही नहीं तो भुगतेगे रोकर क्यो–राजी-राजी।'

'मामी कुछ नहीं बोली?' डोकरी ने अपनी जिज्ञासा जताई।

'बोली क्यो नहीं? उसने कहा, 'डूँगर,राजा-जोगी भी भुगतते हैं तो हम किस बाग की मूली?'

मैने कहा 'मैं अब यहीं रहूँगा, आप लागो की सेवा-चाकरी मे, मेरी बहू भी आप को छोड कहीं नहीं जाएगी।'

गगी से अब रहा नहीं गया, 'अरे, अब तो बता, तीसरा फोटू किसका था? गाँठ खोलेगा कि नहीं?'

'धीरज मत छोड, तीसरा फोटू भी मैंने देख लिया था दादी, दीनू का ही था। मुशी से मैंने पूछा, 'उसके कपडे साब?' वे भी मुझे दिखा दिए गए। मैंने फिर पूछा,'रूपया-पैसा भी कुछ था उसके पास?'

मुशी ने कहा 'पाँच-सात बीडिया एक आधी-पडदी तीलियो की पेटी और डेढ रूपया जेब मे थे उसके। लॉटरी का एक टिकट भी था दो माह पुराना।'

डोकरी ने कहा, 'महीनो कमाया वह?'

'कमाया या खोया क्या पता चले दादी, किससे पूछता, कौन बताता?'

'अरे दीनिया, तब क्यो भटका इतनी दूर?' और वह गला फाडने को ही थी कि उससे पलभर पहले ही उसने डोकरी का हाथ पकडते हुए कहा, 'दादी, आसीरबाद तेरा रख, मेरे तकदीर मे वह न लिखा मामा-मामी से और न तुझसे, पर इतना तो बतादे कि रोज सशय मे सिर पीटती की, मैंने भलाई की या बुराई?'

सचेत होती डोकरी ने कहा, 'की तो भलाई ही, बुराई कैसे कहदू उसे?'

'और भलाई का इनाम तुम गला फाडकर देना चाहती हो?'

उसका मन कुछ थिर होगया। उसे याद आया, पडिताइन ने एक दिन कहा था, 'ससार के आगे मत रो–लाभ नहीं।' उसके होठो पर उछला, 'बेटा तू फल-फूल, दूर से आया है भूखा है, थोडा मुँह जूठले।'

'दरसन फिर करूगा कभी, दीनू की माँ हो, मेरी भी माँ ही हो।'

'दरसन फिर करोगे, यह भरोसा कैसे होगया तुम्हे कि मैं फिर मिल ही जाऊँगी तुम्हे?'

वह बोला कुछ नहीं, आँखे चौडी किए डोकरी की ओर देखने लगा।

डोकरी ने कहा, ' बेटा भूखा है, माँ निहोरे निकालती है, और वह खाता नहीं, परोसी थाली ठुकरा रहा है, दोषी कौन है, फैसला तू ही कर?'

'यही इच्छा है तुम्हारी तो दे-दे फिर।'

'पूरी?'

'हाँ दादी,' पर आँखे उसकी सजल थीं और चेहरा था उदासी से ढका हुआ।

'पारी मे कुछ शक्करपारे, खजली और मखाने पडे है न?'

'पडे हैं।'

'एक ''लने मे बाधला–सारे के सारे।'

वह बाँध लाई।

'यह लेजा, बच्चो को दे-देना, यही है, और तो क्या दू?' डोकरी ने लाचारी ज्ताते धीरे से कहा।

पूरी को फिर हुक्म हुआ, ' बेटी लिछमी-पूजन का मतीरा पडा है न?'

'पडा है दादी।'

'ले आ उसे।'

आगया मतीरा। चीरा उसे, लाल-सुर्ख, मिश्री-सा मीठा।

मेहमान का पेट गया भर, मुँह होगया मीठा और कलेजा होगया ठढा।

डोकरी ने कहा, 'बेटा जाता-जाता एक बात तो और बतादे मुझे?'

'क्यो नहीं दादी, बोल?'

'नायक होते हुए भी बुद्धि तेरी इतनी सुलझी हुई कैसे?'

'बुद्धि का जाति से क्या मतलब दादी, पर सुलझी बुद्धि जैसा मुझे तो कुछ नहीं लगता अपने मे? मैंने तो अपनी देखी-भोगी कही है। मेरे भी दादी होती थी, ठीक तुम्हारे जैसी। मेरा चाचा गुजरगया, तीस वर्ष का जवान। दादी सालभर रोई, अन्धी होगई । दो वर्ष और जीवित रही वह। वह मुझे कहा करती थी, 'डूँगर मेरे जैसी बेसमझ, बेअकल धरती पर कोई नही।'

'यह कैसे दादी,' मैंने कहा। वह बोली, 'पहले तो रोती रही खसम को, फिर रोई बेटे को और अव रो रही हूँ आँखो को। खसम गया, बेटा गया, आँखे गई, रोना तब भी गया नहीं।'

'हाँ, बिल्कुल ठीक कहती थी दादी—तुम्हारी।'

'हाँ।'

'जा बेटा, भला हो तेरा, जी तू जुग-जुग।'

'दादी, सबसे बडी खुशी मुझे यह है कि तूने अपने वचन का पालन किया—रोई नहीं, बस आसीरवाद मुझे मिल गया।'

चरण छूकर वह विदा हुआ।

पर गगी के घर का दुर्भाग्य अब भी वैसे ही खडा था त्यौरी उसकी और अधिक तनी हुई थी।

ग्यारह

समय की सूई को न पिछला पल छोडने का दुख और न अगले पल का मोह, वह तो केवल सरकना जानती है—ससार की तरह।

दिन डोकरी के भी सरकने लगे पर हर अगला दिन उसका पिछले दिनो से अधिक भारी होता था—पीडा का भार लिए।

पूरी पानी भरने कुएँ गई हुई थी। भाई सो रहा था। वह अकेली बैठी मन के चर्खे पर कातने लगी 'दीनू को कई बार कहा करती थी, भाई मै तो पीला पात हूँ पर पत्त

का झोका ही बहुत मुझे तो,पता नहीं कब गिर पडू? मेरा कहा, गया हवा मे कहीं? अचरज यह, वह पीला-पान तो अब भी चिपका हुआ है ऊमर की डाली से और वे हरे-भरे जवान-पान, वह उठता अकुर क़हाँ गिरे टूट-टूटकर,पता ही नहीं लग रहा है? मेरे ठूठ को आँधी भी नहीं हिला सकी। हिरदै मे मेरे पीडाओ का जमघट लगगया। खाते-पीते,सोते और उठते-बैठते सामने आ जाता है वह–अलग होकर भी और एक साथ भी। किसे भूलू किसे याद करू, समझ मे ही नहीं आता। पर इस तरह जीवन निर्वाह कब तक होगा? खाट पकड पडी रहूँ तो जमघट और जोर से नाचेगा–छाती पर चढकर। छोरी के और मुश्किल होजाएगी, और मर जाऊँ मैं, यह बस मे नही गला फाडकर चीखू दिनभर, तब भी क्या हो लेगा? ढाढस दिलानेवाले सुनकर भी कनी काट जाएँगे, सोचेगे, अरे यह तो इसका रोज का धन्धा है, रोने दो थक जाएगी तो अपने आप बन्द होजाएगी। यह कडवा फल भी चखा नही जाएगा।'

दो मिनट वह असमजस के धुएँ मे घुटती रही। सोच फिर आगे बढा और रूक गया, एक निर्णायक मोड पर आकर। 'रो-पीट कर देख लिया इससे न तो अब तक कुछ पल्ले पडा और न आगे भी कुछ पडने का। मरने मे पहले बारी किसकी आजाय, और कहाँ आजाय यह खोज-खबर भी हाथ लगने की नहीं। लगता है कि मरना भी निश्चित है और भोगना भी। पडिताइन ने ठीक कहा था–इस तरह रोने से लाभ नहीं, हानि ही होगी? जमघट को भूलने के लिए अबूझ उपाय यही है कि हाथ-पग जब तक हिलते हैं हिलाए रखो और जा बिध राखै राम, मजूर करो उसे–रोकर नहीं, राजी-राजी।'

बस इसी के अन्तर्गत वह उठी, और अपने काम मे लगगई, उदास-उदास।

पूरी का बाल मानस था–अनुभवो की गहराई से अछूता। ताजा और भोगा-परखा चिन्तन उसका, केवल एक ही बिन्दु पर ठहरा हुआ था कि मौत ने घर देख लिया है, अब वह छोडेगी किसी को नहीं। स्वप्न उसे सत्य लगता और सत्य उसके लिए भार था। तीन तो गए, तीन हम और हैं, लगता है, 'सबसे पहले बारी अब मेरी ही है,' और इसके साथ ही उदासी की छाया गहरी होकर, उसके मानस को ढकने लगती। वह चाहती थी, उदासी छोडदू और मरनेवालो को भूल जाऊॅ, पर रोग उसके वश का न था। डोकरी की अपेक्षा, इसका मन अधिक बोझिल और धुमायित था।

ग्यारसी दो साल का हुआ है। वह मरण-जीवन की इस उलझन से अभी अलग–अछूता है। सहज जीवन से जुडा वह बढरहा है। पूरी उसे देख-देख राजी तो होती है पर सहसा किसी सम्भावित भय से कॉप भी जाती है तब भी उसके लालन-पालन मे आलस और उपेक्षा की कोई छाया अपने पर नहीं उतरने देती है।

असाढ शुक्ला तृतीया को वर्षा अच्छी हुई। लोगो ने खेत जी भर जोते। तेज धूप के कारण अनाज दस-बारह दिन मे ही काफी ऊँचा आगया। अब वह कुछ रखवाली चाहने लगा। किसानो ने खेतो मे डेरा डालना शुरू करदिया।

पूर्णिमा की शाम को गीधू चौधरी डोकरी के पास आया और कहने लगा 'गगी, मेरा

खेत तो मालूम ही होगा तुम्हे?'

'हाँ है जजमान, मीलभर ही तो है यहाँ से–उत्तर की ओर?'

'हाँ।'

'फरमावो?'

'मैं तो गाडा लेकर कहीं बाहर जारहा हूँ। छोरी एक आई हुई है, वह दो-चार रोज मे सोनेवाली है। छोरा एक है रेवड मे, एक है नौकरी पर, बहू उसकी है बीमार। घरवाली अकेली है, उसे दाएँ-बाएँ किधर ही जोतलो चाहे, घर-खेत दोनो तो वह सँभालने से रही?'

'दोनो तो कैसे सभले?'

'तेरी पोती है पूरी, सुन रखा है, छोरी बडी समझदार है ओर धुन की बडी पक्की। अग मे फुर्ती भी अच्छी है उसके। सावन-सावन वह खेत की रखवाली करदे, भादौं लगते, डेरा हम खेत मे ही लगालेगे। सुबह सात-आठ बजे पोती तेरी,मेरे घर से दो रोटी और छाछ-राबडी लेलेगी। पानी की लोटडी उसके साथ होगी–खेत चलदेगी। अवारा पशु कोई आगया खेत मे तो भगादिया, नही तो खेजडे की ठढी छाव मे बैठी मौज करो। पाँच-साढे पाँच बजे वहाँ से चलदेगी, रूपए महीने के साठ देदूगा।'

'दिन के दो रूपये तो थोडे ही हैं जजमान?'

'अरे हाँ तो भर, दस-बीस और सही।'

'हाँ ही है, आपका हाथ चाहिए सिर पर।'

'तो कल से ही चली जाएगी न?'

'चली जाएगी फरक नहीं पडेगा।'

खेत अस्सी बीघा था। बीस बीघा उसमे परती छोडा हुआ था। मोठ-बाजरी,तिल और गवार बीजे हुए थे। खेत के चारो और बाड़ भी थी। तीन साल पुरानी। जगह-जगह टूटी और सडी-गली। गलते भी उसमे कम नहीं थे।

पूरी सूर्योदय से दो-ढाई घडी पहले उठती। नहा-धो, पानी लाती। भाई को धो-पौंछ, लोटडी पानी की भर लेती और दादी से पूछती,'जाऊँ दादी?'

'जा बेटी,' और वह चलदेती।

दादी ने कभी पूछ लिया, 'खेत मे कभी डर-वर तो नहीं लगता बेटी?'

'नही दादी, पडोस के खेत मे,चलता-फिरता कोई न कोई दीख ही जाता है।'

'ठीक है फिर।'

बस और कोई बात नहीं, इतनी पर्याप्त थी।

पूरी घर से चौधरी के यहाँ आती। बाजरे की दो बासी रोटिया और कुछ लगावन मिलजाते उसे। लिया और खेत की राह पकडी।

खेत मे एक टीबडानुमा ऊँचाई पर, झोंपडी बनी थी पर इस समय मुँह उसका काँटो से ढका था। उसे भादौं मे आकर चोधरी का परिवार ही खोलेगा। ऊँचाई पर खडे, एक खेजडे की गहरी छाया को ही अपना विश्राम-स्थल बनाया उसने। लोटडी अपनी तने के

सहारे लगा देती और वहीं पास मे रख देती–गलने मे बन्धा अपना छाक।

आते ही एक बार वह सारे खेत को सधती नजर से देखती। बाड़ के आसपास खेत की ओर मुँह किए किसी पशु को देखती तो उसे दूर तक खदेड आती। लौटती दो-चार सिणिएँ या बूड्या उखाड लाती और किसी गलते को ढक देती।

एक दिन एक छोर पर उसने कुछ हिरण देखे। उन्हे ज्योही ललकारा उसने, वे छलाग भरते भाग छूटे। दूसरे छोर पर एक गाय खेत की ओर बढती दीखी। उसने उसे भी ललकारा, 'ठहर तू किधर आरही है? सुनती ही नहीं?' पर इससे तो गाय के कानो पर जू भी न रेगी। उसने सोचा था, यह भी हरिणो की तरह भाग छूटेगी, पर यह धारणा उसकी गलत निकली। गाय ऐसे बोल सुनने की अभ्यस्त थी। हरे मोठ, और हरा गवार, उसकी दाढो तले कई बार आ चुके थे। जीभ के स्वाद और पेट की आग पर बिसरी वह, न रूकी, न पीछे मुडी, बल्कि आगे की ओर ही बढती रही, हाँ रह-रह एक बार सामने जरूर देख लेती।

पूरी की इच्छा थी, 'रोटी खा लू, छाछ बच-बच करती खट्टी हो जाएगी, पर परिस्थिति ऐसी थी नहीं। इच्छा उसने ताक पर रखदी, बडी तेजी से भागी वह। पहुँची आधी दूर ही मुश्किल से होगी, एडी मे एक शूल चुभ गई। बैठकर निकालने लगी वह। आधी निकली और आधी टूटकर चमडी में रह गई। गाय मोठो पर आ लगी। वह पीडा भूल गई। तीर की तरह तेज होती वह गाय के पास जा पहुँची। अब आगे गाय और पीछे वह। हाँपने तो खुद भी लग गई पर हँपा उसने गाय को भी दिया। तीन सौ कदम से कम तो क्या खदेडा होगा उने?

रोटी पर आते-आते, पौन-घटा तो लग ही गया उसे। इस बीच, एक खींप उखाडी उसने, उस गलत्ते को ढका जिससे होकर गाय घुसी थी–भीतर। विश्राम किया कुछ देर। छाक एक सिणिएँ से ढका था। उसे निकाला और देखा। उस पर तो लाल चींटियो का ताता लग रहा था। रोटियाँ छलनी होगई थीं। चींटियाँ छाछ पर भी तैर रही थी।

बहुत-सी कुल्हड के किनारों पर रेग रही थीं और कुछ धीरे-धीरे उतर रही थीं उसके अन्दर।

रोटियाँ उसने एक ढेले पर ठोक-ठोंक झडकाई। कुछ टुकडे उनके बिखर गए, रेत पर और कुछ रहे उसके हाथ मे। रहे उन्हे और देखा बारीक नजर से, कोई-कोई चींटी उसे अब भी दिखाई दी टुकडो पर। छाछ को सूघा ,उगली भर जीभ पर रखी। वह खट्टी भी और चींटिया भी उसमे। कुल्हड उसने औंधा कर दिया।

भूख सता रही थी । देख-देख कुछ टुकडे, पानी के सहारे खालूगी। ग्रास लेने को हुई कि उसे याद आया, 'अरे दादी ने एक बार कहा था, लाल चींटियाँ जहरीली होती हैं, पेट मे चली जायँ तो शरीर पर पित्ती उभर आती है। बीमार पड गई मैं तो भाई और दादी के मुश्किल नहीं होजाएगी?' टुकडे उसने फैंक दिए। उस दिन वह पानी पीकर ही रही पर खेत की चौकसी मे उसने कोई शिथिलता न आने दी।

शाम को घर आई तब तक शरीर उसका चूर-चूर होगया था। आँते बुझने लगीं और

चौखटा सारा चरमरा उठा। आगे के लिए उसने निश्चय कर लिया, 'खाना वह खेत पहुँचने से पहले ही खा लिया करेगी।' यही किया उसने।

गाँव से निकलते ही रोटी चबाना वह शुरू करदेती। लोटडी कन्धे से लटकी रहती। हाथ दोनो आजाद होते। पैर भी चलते और दाँत-दाढे भी। खेत पहुँचते-पहुँचते वह, पेट अपना भर लेती। पानी ठहर कर पी लेती। अब न चींटियो का भय और न खाने की चिन्ता। जाते ही खेत का चक्कर काटने चल देती। दो-चार गलते रोकने में जुटजाती।

कई दिन बाद दादी एक बार पूछ बैठी, 'अवारा पशु, ज्यादा तग तो नहीं करते बेटी?'

'नहीं, नहीं करते दादी, पाँच-सात बार तो किसी न किसी पशु के पीछे भागना ही पडता है।'

'उनके पीछे भागती थक नहीं जाती?'

'थकने की तो दादी इतनी तकलीफ नहीं, जितनी पैरो मे काँटे लगने की है। एक-दो काँटे तो रोज गड ही जाते हैं, तेरे पास एक चींपडी हुआ करती थी?'

है बेटी, चवन्नी मे ली थी कभी, मैं तो भूल ही गई तुम्हे देना, ले, अभी ले-ले।'

चींपडी पाकर पूरी बडी प्रसन्न हुई।

कई वार वह एक किनारे से दूसरे किनारे तक जाती-आती थक जाती, धूप तेज होती,और देह होती पसीने से तर, तो सोचने लगती, 'खेजडे की ठढी और गहरी छाया मे, घडीभर लेटलू तो कैसा?' पर पशु क्या समझे उसकी पीडा को? कभी-कभी तो ऐसा होता कि उसका तो चींपडी से काँटा निकालने बैठना होता,और पशु का खेत मे घुसना। काँटे को वह लटकता छोड, भाग पडती, काँटा तब तक कुछ और ऊपर सरक जाता। वह वापिस आ, छाया मे थोडी सुस्ता,दिन गिनने लगती, 'एकम है आज, आधे दिन तो निकल ही गए, आधे और पडे हैं।' वे उसे पहाडो की तरह खडे लगते, सोचते ही पसीना छूटने लगता। 'कैसे सरकेगे ये? दिन-दिन लम्बा होता चक्कर और काँटो से बिंधते पजे-पगयलियाँ? कभी-कभी तो काँटा निकालने की फुरसत भी नहीं मिलती। इससे तो खुली मजूरी लाख अच्छी थी, दिनभर भागना तो नहीं पडता? रोटी चलते-चलते तो चबानी नहीं पडती? चलो, जैसा भी, महीना बीत जाए किसी तरह तो सबसे पहले दादी से यही कहूँगी, कपडा-लत्ता एक वार छोड, मुझे जूते दिला,' और तभी पन्द्रह दिनो की कतार-पन्द्रह पर्वत श्रृखलाओ की तरह उसके मानस पर खडी हो जाती। क्षणभर बाद उसे याद आता, दादी ने कहा था एक दिन,' वेटी ओखली मे सिर दे दिया तो, डरना क्या चोटे खानी ही पडेंगी।'

विखरता वल उसका वध जाता-एक सूत्र मे। जैसे-तैसे पच्चीस दिन उसने राम-राम कर निकाल दिए किसी तरह।

एक दिन कुछ वूदावादी भी हुई, ऊपर की रेत ही भीगी थी, कि ऑधी चल पडी और देखते-देखते रेत उडने लगी। पशुओ ने तो तब भी उसे चैन नहीं लेने दिया। आम दिनो की अपेक्षा और अधिक भागना पडा उसे।

दो दिन पहले करीव आधा-घटे तक पानी वरसा था। वर्षा के साथ अन्धड के झोंके

भी बडे तेज थे। पूरी ने इधर-उधर ताका आसपास, शरणगाह कोई, दिख नहीं रहा था। वह झट,खेजडे के तने की ओट मे जा खडी हुई। कभी इधर सरकती और कभी उधर, तने की पूरी-अधूरी परिकमा करती, वह जैसे-तैसे अपने को बचाने मे लगी थी पर बौछार अपनी मनमानी किधर से करेगी, वह समझ नहीं पा रही थी। वह अकेली थी, पानी और हवा दो। घडीभर मे कपडे उसके तर होगए। तब भी तने को वह छोडना नहीं चाहती थी। आखिर खुली मार की अपेक्षा यहाँ कुछ न कुछ सुरक्षा थी।

कभी-कभी बादलो की एकाएक गडगडाहट और उनकी छाती मे आग की शलाका-सी नाचती-कौंधती बिजली और उसका अकेलापन उसमे भय पैदा कर देते। बिजली खेजडे की सीध मे लपक-लपक बादलो मे विलय हो जाती। वह सोचती, 'यह कहीं खेजडे पर ही तो न गिर पडे?' भयग्रस्त आँखे ऊपर उठाती वह खेजडे की ओर देखती, कहीं कोई गिरगिट तो नहीं उसपर? उसने दादी से सुन रखा है कि बिजली काँसे के बरतन और किरडे (गिरगिट) पर गिरती है। वह और अधिक डर गई। दृष्टि की दिशा बदल दी उसने।

सहसा उसकी आँखो ने सामने के छोर से दो सफेद गायो को खेत मे घुसते देखा। बरखा और बौछार की मार से मैं बचू या खेत को बचाऊँ? प्रश्न पलभर के लिए, दिमाग पर चमका पर निर्णय लेने मे उसे आधा-पल भी न लगा। वह तुरत भागी, गायो को दूर तक भगाकर लौटी। कपडे टपकने लगे पर क्या बदले और क्या निचोए?

अन्धड निकल गया। आकाश धीरे-धीरे साफ होने लगा। फुहार कुछ देर गिरती रही। घटाभर वह और लगी रही। कपडे उसने घर आकर ही बदले।

दादी ने पूछा,' बेटी आज तो खूब भीगी होगी?'

उसने व्यथा-कथा अपनी स्पष्ट करदी।

'पाँच ही दिन का काम और है बेटी, निकाल दे किसी तरह, रूपए पल्ले पडते ही पहले तेरे लिए जूतो की जोडी खरीदूगी, और कुछ बाद मे,' डोकरी ने कहा।

पूरी बडी आश्वस्त हुई--दादी के इस आश्वासन से।

वह भी तो इसी चाह को आकार देना चाह रही थी।

पर छब्बीसवा दिन उसका अप्रत्याशित दुर्भाग्य लेकर आया। सदा की भाँति ही, वह खेत पहुँची। लोटडी रख, दो गलते रोके उसने। प्यास लगने लगी, लोटडी पर आई, पानी पी थकावट थोडी मेटने लगी कि दूर सामने की बाड को रौंदता एक मोटा-तगडा ऊँट खेत मे प्रवेश होता दिखाई दिया। उसने दो-ढाई हाथ लम्बी झरबेरी की पुरानी लठिया ली, और ललकारती हुई ऊँट की ओर भागी। ऊँट ने हरे मोठो पर मुँह मारना शुरू किया ही था कि लठिया हवा मे हिलाती, आगे बढती, वह कहने लगी, 'खडा रह तू, मोठ खिलाऊँ तुझे? गोडे घडू तेरे?' ऊँट से वह दस ही कदम दूर रही होगी पर ऊँट अपनी जगह से टस से मस न हुआ। उसने दो कदम और आगे रखे। ऊँट ने गर्दन उठाई और उसकी ओर घूरता चला पर चला लगडाता। एक पैर से लाचार था वह। टोले का महिया (यूथपति) था वह। हमेशा खुला ही चरता रहा है और खुला ही विचरता। अब भी

वह विना नकेल और निरकुश घूमता है। उसके चरने-विचरने में कोई अन्तर नहीं आया।

पूरी आगे और वह पीछे। पच्चीस-तीस कदम वह चला, पूरी तब तक पचास कदम आगे निकल गई। वह रूक गया और मोठो पर फिर मुँह मारने लगा। पूरी ने साहस एक बार और जुटाया। वह उसकी ओर फिर चली–अपना आक्रोश हवा पर उछालती। ऊँट ने देखा भी नहीं उधर, चरता रहा। आगे वढती पूरी ने कुछ दूर रहकर, लठिया अपनी, अपने पूरे वेग से फैंकी। वह पेट पर उसके लगी भी, पर इससे उसके मच्छर भी तो पूरे नहीं उडे। वह वैसे ही चरता रहा।

पूरी अवश होगई पर उपायहीन नहीं। वह भागी, खेत से सटता ही गोपू नाई का खेत था। उसके डेरे पहुँची पर वहाँ कोई नहीं था। अगले खेत की ओर बढी वह। गोरू चमार वैठा चिलम खींच रहा था। एक सरकी खडी कर रखी थी। पानी का एक घडा और पास मे उसके एक डोली पडी थी।

पूरी के होंठ सूख रहे थे। डरी हुई थी, ऊँट से इतनी नही, जितनी खेत के मालिक से। 'उलाहना मिलगया तो दादी क्या कहेगी,' रह-रह यही चिन्ता सता रही थी उसे।

उसने फटती-सूखती आवाज मे कहा, ' गोरू दादा, गीघूजी के खेत मे महिया घुस आया है, निकालती हूँ तो सामने आता है, आप चलकर निकालो–किसी तरह उसे।

'अरे समझ गया, वह लगडिया ऊँट न?'

'हाँ।'

'अरे वडा वदमास है साला, इधर कहाँ से आ मरा? एक बार तो अच्छे से जवान के पैर भी पीछे सरका देता है। सैतान है, दो-चार लट्ठ की मार से तो उसकी मक्खी भी नहीं मरती। तू वच गई तेरी तकदीर सिकन्दर समझ। उसकी चारो टाँगे साबित होतीं तो वह चुटकी भरते, तेरा भेजा पकड कर तुम्हे टमाटर की तरह वहीं निचोड देता या अपने घुटनो के नीचे ले रेत मे रगड देता।

खेतो मे वडा नुक्सान करता था यह, तग आकर, एक पैर इसका तोड दिया किसी ने। तव भी साला दुख ही देता है। वेटी, मैं क्या कर लूगा चलकर, न मेरे से भागा जाता और न लाठी ही चलती मेरे से। तू इस अडगे मे पड ही मत, सीधी गाँव चली जा और उस चौधरी के घर कहदे किसी को। पानी पीए तो ले-ले घडे से।'

क्या करती वह? पानी पीकर भयभीत मृगी की तरह वह गाँव की तरफ तेज चाल से चलदी। सोच रही थी, 'खेत मे ही नहीं, रास्ते मे भी मेरे तो दौडना ही लिखा है।'

चौधरी भाग्य से घर पर ही मिल गया। दो ही घटे हुए हैं बाहर से आए को। पूरी ने गिडगिडाते हकीक्त सारी उगलदी उसके आगे। उस समय वह कुछ नहीं बोला सुनकर सीधा खेत को चल पडा। पूरी वहाँ क्या करती, वह भी घर चली आई।

चौधरी पहुँचा इत्ते ऊँट चरकर छक गया था। वैठे-वैठे मींगने कर,वहीं रेत की एक ढलान में निश्चिन्त पड, शिथिलीकरण साधने लगा था। चौधरी चुपचाप गया, और पडे-पडे के दो लाठिया जमकर मारी। इस अचानक मार से ऊँट घवरागया। तत्कान

उठना उसके वश का रोग नहीं था। पैरो का सतुलन साधते-साधते दो-तीन मिनट तो उसे लग ही गए। इतने मे एक लट्ठ और दे पेट पर, चौधरी दूर खिसक गया। ऊँट हडबडाता, तेजी से लगडाता खेत से दूर निकल गया।

खेत को उसने चारो ओर देखा। रखवाली ठीक लगी उसे। ऊँट ने आज जो सौ-डेढसौ बूटे चरलिए तो चरलिए , छोरी बेचारी करती भी क्या ? दूसरा, बाल नोचने से मुर्दा कौन-सा हल्का होजाता है? साठ बीघे के लम्बे-चौडे तल पर यह नुक्सान आँखो के नीचे ही नहीं आता? भार्दों पूरा पडा है, बेले और गवार-मोठ पसर-पसर इस तरह मिल जाएँगे कि खेत के तल की बित्तेभर बालू भी नगी नजर नहीं आएगी। ऐसा टटपुजिया नुक्सान तो खेतो मे आए दिन होता ही रहता है। यह सब सोच लेने के बाद भी उसकी नीयत पर पाप उतर आया—बडा काला और कुत्सित।

घर रवाना हुआ। रास्ते मे सोचने लगा, 'खरगोश को मारने के लिए बन्दूक का घोडा थोडा ही दबाऊँगा? जबानी फटकार ही बहुत है उसे तो। बहाना गढने की जरूरत है नहीं, गढागढाया तैयार है सामने ही। पैसा एक भी दूगा नहीं, धमकाऊँगा वह अलग।'

अगले दिन के लिए,चौधरी ने पूरी को मना करदिया—खेत जाने से। शाम को डोकरी, अपना हिसाब लेने पहुँची। उसे देखते ही, चौधरी गले पड गया उसके। कहने लगा, 'मजूरी माँगते शर्म नहीं आती? सारा तो मेरा खेत मिट्टी मे मिला दिया और ऊपर से पैसे और? पैसे तो तू दे मुझे। मै दूगा पचायत मे हरजाने की अरजी? छठी तक का खाया-पिया निकल जाएगा—तब मालूम पडेगा तुम्हे।'

यह बिना बादल की बिजली गिरती देख गगी भौचक्की रह गई, काटो तो खून नहीं? देह साधती, हाथ-जोडकर धीरे से बोली, 'माई-बाप, यह क्या कह रहे हैं आप?'

'कह क्या रहा हूँ साथ चल मेरे, खेत दिखाऊँ तुम्हे? कम से कम दो बोरी के तो मोठ उजाड दिए मेरे और चारा अलग।'

'जजमान, वह बेचारी रोज सुबह-सुबह घर से निकल जाती, दिनभर नगे पाव भागती—पशुओ के पीछे, खेत छोड कहीं गई नही, पर हमारी तकदीर ही उलटी कलम से लिखी है तो कोई क्या करे? दाख चखने का समय आया तो कौए के कठ पर रोग आ उतरा? महिया भी ऐन मौके पर कैसा आया? एक दिन और ठहर जाता तो कौन-सी जान निकल जाती उसकी? पर ठहरे कैसे, उसे तो हमे डुबोना था। मालिक, भाग-दौड करने मे छोरी ने तो कसर कोई छोडी नहीं? गोपू के खेत दौडी, भाग से वह मिला नहीं फिर अगले खेत पहुँची, वहाँ गोरू मिला, वह मिला भी नहीं मिला जैसा। वह हाँपते गले आपके पास आगई, होठो पर जमती पपडी तो आपने उसके देखी होगी? इससे ज्यादा वह करती ही क्या? आपके मुँह न्याय है, आप ही कहदे—धरम विचार कर?'

'मेरा न्याय तो सुनना बाद मे, पहले मेरे साथ खेत चल, न्याय फिर तू ही करना, मैं नहीं करूगा।'

'माई-बाप मैं क्या चलू आप कोई झूठ थोडा ही कह रहे है।'

'झूठ नही कह रहा तो, ला दो बोरी मोठो के पैसे, चारे के तुम्हे छोडे।'

वह बिना नकेल और निरकुश घूमता है। उसके चरने-विचरने मे कोई अन्तर नहीं आया।

पूरी आगे और वह पीछे। पच्चीस-तीस कदम वह चला, पूरी तब तक पचास कदम आगे निकल गई। वह रूक गया और मोठो पर फिर मुँह मारने लगा। पूरी ने साहस एक बार और जुटाया। वह उसकी ओर फिर चली—अपना आक्रोश हवा पर उछालती। ऊँट ने देखा भी नहीं उधर, चरता रहा। आगे बढती पूरी ने कुछ दूर रहकर, लठिया अपनी, अपने पूरे वेग से फैंकी। वह पेट पर उसके लगी भी, पर इससे उसके मच्छर भी तो पूरे नहीं उडे। वह वैसे ही चरता रहा।

पूरी अवश होगई पर उपायहीन नहीं। वह भागी, खेत से सटता ही गोपू नाई का खेत था। उसके डेरे पहुँची पर वहाँ कोई नहीं था। अगले खेत की ओर बढी वह। गोरू चमार बैठा चिलम खींच रहा था। एक सरकी खडी कर रखी थी। पानी का एक घडा और पास मे उसके एक डोली पडी थी।

पूरी के होठ सूख रहे थे। डरी हुई थी, ऊँट से इतनी नही, जितनी खेत के मालिक से। 'उलाहना मिलगया तो दादी क्या कहेगी,' रह-रह यही चिन्ता सता रही थी उसे।

उसने फटती-सूखती आवाज मे कहा, ' गोरू दादा, गीघूजी के खेत मे महिया घुस आया है, निकालती हूँ तो सामने आता है, आप चलकर निकालो—किसी तरह उसे।

'अरे समझ गया, वह लगडिया ऊँट न?'

'हाँ।'

'अरे वडा वदमास है साला, इधर कहाँ से आ मरा? एक बार तो अच्छे से जवान के पैर भी पीछे सरका देता है। सैतान है, दो-चार लट्ठ की मार से तो उसकी मक्खी भी नहीं मरती। तू वच गई तेरी तकदीर सिकन्दर समझ। उसकी चारो टाँगे साबित होतीं तो वह चुटकी भरते, तेरा भेजा पकड कर तुम्हे टमाटर की तरह वहीं निचोड देता या अपने घुटनो के नीचे ले रेत मे रगड देता।

खेतो मे वडा नुक्सान करता था यह, तग आकर, एक पैर इसका तोड दिया किसी ने। तव भी साला दुख ही देता है। वेटी, मैं क्या कर लूगा चलकर, न मेरे से भागा जाता और न लाठी ही चलती मेरे से। तू इस अडगे मे पड ही मत, सीधी गाँव चली जा और उस चौधरी के घर कहदे किसी को। पानी पीए तो ले-ले घडे से।'

क्या करती वह? पानी पीकर भयभीत मृगी की तरह वह गाँव की तरफ तेज चाल से चलदी। सोच रही थी, 'खेत मे ही नहीं, रास्ते मे भी मेरे तो दौडना ही लिखा है।'

चौधरी भाग्य से घर पर ही मिल गया। दो ही घटे हुए हैं वाहर से आए को। पूरी ने गिडगिडाते हकीकत सारी उगलदी उसके आगे। उस समय वह कुछ नहीं वोला, सुनकर सीधा खेत को चल पडा। पूरी वहाँ क्या करती वह भी घर चली आई।

चौधरी पहुँचा इत्ते ऊँट चरकर छक गया था। वैठे-वैठे मींगने कर,वहीं खेत की एक ढलान मे निश्चिन्त पड शिथिलीकरण साधने लगा था। चौधरी चुपचाप गया, और पडे-पडे के दो लाठिया जमकर मारी। इस अचानक मार से ऊँट घवरागया। तत्काल

उठना उसके वश का रोग नहीं था। पैरो का सतुलन साधते-साधते दो-तीन मिनट तो उसे लग ही गए। इतने मे एक लट्ठ और दे पेट पर, चौधरी दूर खिसक गया। ऊँट हडबडाता, तेजी से लगडाता खेत से दूर निकल गया।

खेत को उसने चारो ओर देखा। रखवाली ठीक लगी उसे। ऊँट ने आज जो सौ-डेढ़ सौ बूटे चरलिए तो चरलिए, छोरी बेचारी करती भी क्या ? दूसरा बाल नोचने से मुर्दा कौन-सा हल्का होजाता है? साठ बीघे के लम्बे-चौडे तल पर यह नुकसान आँखो के नीचे ही नहीं आता? भादौं पूरा पड़ा है बेले और गवार-मोठ पसर-पसर इस तरह मिल जाएँगे कि खेत के तल की बित्तेभर बालू भी नगी नजर नहीं आएगी। ऐसा टटपुंजिया नुकसान तो खेतो मे आए दिन होता ही रहता है। यह सब सोच लेने के बाद भी उसकी नीयत पर पाप उतर आया—बडा काला और कुत्सित।

घर रवाना हुआ। रास्ते मे सोचने लगा, 'खरगोश को मारने के लिए बन्दूक का घोडा थोडा ही दबाऊँगा? जबानी फटकार ही बहुत है उसे तो। बहाना गढने की जरूरत ही नहीं, गढागढाया तैयार है सामने ही। पैसा एक भी दूगा नहीं, धमकाऊँगा वह अलग।'

अगले दिन के लिए चौधरी ने पूरी को मना करदिया—खेत जाने से। शाम को डोकरी अपना हिसाब लेने पहुँची। उसे देखते ही, चौधरी गले पड गया उसके। कहने लगा 'मजूरी माँगते शर्म नहीं आती? सारा तो मेरा खेत मिट्टी मे मिला दिया और ऊपर से पैसे और? पैसे तो तू दे मुझे। मै दूगा पचायत मे हरजाने की अरजी? छठी तक का खाया-पिया निकल जाएगा—तब मालूम पडेगा तुम्हे।'

यह बिना बादल की बिजली गिरती देख गगी भौचक्की रह गई, काटो तो खून नहीं? देह साधती, हाथ-जोडकर धीरे से बोली, 'माई-बाप, यह क्या कह रहे है आप?'

'कह क्या रहा हूँ साथ चल मेरे, खेत दिखाऊँ तुम्हे? कम से कम दो बोरी के तो मोठ उजाड दिए मेरे और चारा अलग।'

'जजमान, वह बेचारी रोज सुबह-सुबह घर से निकल जाती, दिनभर नगे पाव भागती—पशुओ के पीछे, खेत छोड कहीं गई नही, पर हमारी तकदीर ही उलटी कलम से लिखी है तो कोई क्या करे? दाख चखने का समय आया तो कौए के कठ पर रोग आ उतरा? महिया भी ऐन मौके पर कैसा आया? एक दिन और ठहर जाता तो कौन-सी जान निकल जाती उसकी? पर ठहरे कैसे, उसे तो हमे डुबोना था। मालिक, भाग-दौड़ करने मे छोरी ने तो कसर कोई छोडी नहीं? गोपू के खेत दौडी, भाग से वह मिला नहीं फिर अगले खेत पहुँची, वहाँ गोरू मिला, वह मिला भी नहीं मिला जैसा। वह हाँपते गले आपके पास आगई, होठों पर जमती पपडी तो आपने उसके देखी होगी? इससे ज्यादा वह करती ही क्या? आपके मुँह न्याय है, आप ही कहदे—धरम विचार कर?'

'मेरा न्याय तो सुनना बाद मे, पहले मेरे साथ खेत चल, न्याय फिर तू ही करना, मैं नहीं करूगा।'

'माई-बाप, मैं क्या चलू आप कोई झूठ थोडा ही कह रहे है।'

'झूठ नही कह रहा तो, ला दो बोरी मोठो के पैसे, चारे के तुम्हे छोडे।'

चौधरी की ओर फटी आँखो से देखते, उसने धीरे से कहा, 'मेरे पास तो जजमान झोपडा है– आगे-पीछे, वह लेलो भले ही।'

'चरानेवाली बात तो कर मत, बात कर काम की।'

'चरानेवाली कैसे माई-बाप?'

'और नहीं तो क्या? झोपडे के अन्दर तो है राख, और ऊपर पूरा फूस ही नहीं, लेकर चाटूगा उसे?'

'फिर तो मेरी काया है, इससे ज्यादा तो मेरे पास कुछ है नहीं?'

'काया तेरी, तेरे से ही नहीं ढोई जारही तो में उससे कौन-सा मुनाफा झाड़ूगा? ढोल तो तू है नही, गले बाधकर बजाऊँ तुम्हे?'

वह चौधरी की ओर अवाक-सी देखने लगी।

देखती क्या है भल-आदमन, पैसे कोई रखवाली के देता है या उजाडने के, यह बता मुझे?'

'उजाडने के तो कैसे देगा कोई?'

'तुम्हारी जगह और कोई होता गगी तो, लेन-देन की बात मैं उससे बाद मे करता, पहले उसे कठ-मिठाई देता। कुठौर लगी, ससुर वैद, क्या तो मैं तुमसे कहूँ और क्या लूँ तुमसे? नुक्सान लिखा था भोग लिया। खेती खसमो सेती, जानते हुए भी फँस बैठा। दिन मेरे उलटे थे।'

वह अच्छी तरह समझ गई कि चौधरी की नीयत मजूरी डकारने की है । तब भी कुछ साहस बटोर कर उसने कहा, 'तो फिर जाऊँ, जजमान?'

'तो यहीं रहेगी?'

वह मुँह लटकाए चुपचाप चलदी। सोच रही थी 'छोरी के जूते खरीदूगी। दिनमान देखो, बिना खरीदे ही कैसे मिले हैं जूते–याद रहेगे जीवनभर? ओढनी तार-तार होरही थी, आज लू-कल लू करते-करते सालभर निकाल दिया, अब आस बन्धी थी, वह भी इस तरह धूल मे जा मिली। कुछ गुड-शक्कर लाती, आगे गोगा आ रहा है?' मन के कूकडिए से ऐसे कुछ तार उधेडती, धीरे-धीरे वह घर नजदीक ले रही थी।

सूरज छिपने मे अध-घटा मुश्किल से था। पूरी भाई को गोदी मे लिए, किवाडी के पास खडी दादी की बाट देख रही थी। भूखे थे दोनो। सोच रही थी, ' दादी आए तो थाली पर बैठे।' भाई को उसने गोदी से हटा कन्धे पर लिया और कहा, ' ग्यारसी फलसे की तरफ देख, कहीं दादी आती दिख रही हो तो?'

दो मिनट ही नहीं हुए, बालक के होठो पर सहसा फूटा,'दादी-दादी।'

डोकरी धीरे-धीरे आ रही थी, सोच मे डूबी–बटुआ खोए यात्री की तरह।

'दादी ले आई पैसे? देर नहीं करदी?' पूरी के मुँह से निकला।

'क्या बताऊँ बेटी, ओने फाडते-फाडते खेती पकने को हुई, लुनने का समय आया तो ओने आ पडे खेती नष्ट, और घर मे भूख आ टिकी।'

'कैसे दादी?'

डोकरी ने सारी कथा कह-सुनाई ।

दादी की ओर भौंचक्की-सी देखती, पूरी ने कहा 'दादी मेरी पगलियाँ तो देख तू कितने ही काँटे तो अब भी चमडी मे है, चलती हूँ तो मेरा जी जानता है कितनी पीड़ा होती है, रोज दो-चार गलते रोकती और कितना-कितना भागती? चार रुपए ने कम मे कोई हाँ ही तो नहीं भरता, सारा यों ही गया-बेभाव?'

'बेटी, तू न कहे तो भी मुझसे वह छिपा नहीं पर नीयत ही बिगाड़ले कोई तो उपाय क्या इसका?'

'मैं भागती नहीं दादी तो ऊँट मुझे मार न डालता?'

'और वह क्या करता? वह तो तुझे सुमति आगई जान बची लाखों पाए। मैं जीगई छोरा जीगया, नहीं तो मेरे आगे तो परले खडा हो जाता।'

'इस हिसाब तो दादी, चौधरी बडा जुल्मी है, उस ऊँट से भी ज्यादा?'

'है बेटी, पर समन्दर मे रहना और मगरमच्छ से वैर, जाएँ भी तो कहाँ? उमर तो यहीं निकालनी पडेगी।'

पूरी क्या बोलती, रह-रह सोच रही थी, 'मेरी दौड-धूप की यह मजदूरी? मेरे पसीने की यह बेकदरी? पाप से भी ज्यादा अपमान उसका, ऐसा क्या गुनाह किया था मैंने? मानस उसका धुखने लगा तुषाग्नि की तरह। धुंवा छागया उसके अन्त करण पर। दिशा नहीं दिख रही थी उसे कोई। पैरो मे गडे काँटो को वह भूल गई, काँटे उसकी चेतना पर चुभने लगे-रह-रह नहीं, अनवरत। दर्द जिनका सिवा उसके और कोई नहीं जानता था, वह नहीं जानती कि फरियाद इसकी कहाँ की जाए? छाती पर आक्रोश की अनगढ शिला रखते उसने धीरे से कहा, 'दादी अब कुछ नहीं होगा?'

'होना-जाना अब क्या है बेटी, आगे के लिए सीख आई।'

'तो चलो फिर थाली पर तो बैठे, अन्धेरा उतर रहा है?'

'हाँ, बैठो बेटी।'

वे तीनो एक साथ बैठगए। मन पर भार था, इसलिए दादी-पोती को न खाना ही स्वाद लगा और न रोज जैसा आनन्द ही आया। आग शान्त करनी थी, करली। बर्तन-भाडो से निवृत्त हो, दोनो ने खटियाएँ अपनी-अपनी पकडलीं।

डोकरी ने सोचा, 'छोरी की छाती पर पछतावे का भार है अनतुला, वह रातभर पसरता रहेगा। उसे न नींद लेने देगा और न चैन। वह टूटेगी तो पूरा परिवार ही टूटेगा। घर की गाडी ही वह खींच रही है।' वह व्यग्र हो उठी। 'किसी भी मोल पर वह टूटे नहीं,' रह-रह ध्यान इसी पर केन्द्रित करने लगी। दो-चार मिनट ही बीते होगे, उसे कुछ याद हो आया, वह उठी, उसके पास आई।

पूरी बैठी होगई, बोली, 'आ दादी?'

उसके सिर पर हाथ रखते, उसने कहा, 'आई बेटी, सोचती हूँ कि चौधरी के इस पशु-बरताव से, बडा दुख होरहा होगा तुम्हे? नींद भी न आए? पर बेटी, दुनियाँ को देख-देख जीना पडता है?'

'कैसे दादी, मैं समझी नही।'

'नत्थू चमार को तूने नहीं देखा, काफी साल होगए उसे गुजरे। बडा सीधा, और अपनी खानेवाला था। छोरा है उसका लच्छू।'

'जानगई दादी, उसकी बेटी है सोदरा मेरे जितनी, वही न?'

'हाँ वही बेटी। पन्दरै-सोलै साल का था वह। तब इसी गाँव के एक ठाकुर का रेवड चराया था उसने, रोटी और पच्चीस रुपए महीने पर। साल के अन्त मे नत्थू ने पैसे माँगे, उसे अपनी छोरी के हाथ पीले करने थे—इसलिए। ठाकुर पियक्कड भी था और लठुवा भी पहले दर्जे का। मागते ही वह गले पड गया, बोला, 'तेरे छोरे ने मेरे कई बकरे पार कर दिए, मुझे तो यह कल-परसो ही पता चला?' नत्थू ने छोरे को सामने किया। उसने कहा, 'तीन महीने पहले, दो बकरे आपका भतीजा लेगया था—शादी थी आपके। यह मैंने आपको कह भी दिया था। इसके अलावा मैंने किसी को कुछ भी दिया हो तो आपकी जूती और मेरा सिर?' इससे ज्यादा और क्या कहता वह?

ठाकुर ने कहा, 'न मेरे कोई शादी थी ओर न मैंने किसी को कुछ कहा, यह सब तेरी ही कारस्तानी है?'

छोरे ने कहा, 'आप अपने भतीजे को पूछले?'

'पता नहीं नौकरी पर कहाँ गया हुआ है वह, मैं पीछे-पीछे फिरू उसके, तू बुला ला उसे?' ठाकुर ने डाँटते हुए कहा।

'बेटी, बात को ठाकुर ने खटाई मे डालदी। अगूठा दिखा दिया बेचारे को। ठाकुर की तरफ तो झूठी गगाजली उठानेवाले एक नहीं कई, और नत्थू की गरदन देने पर भी कोई नहीं। रोकर रहगया बेचारा।'

'दादी, छोरी का विवाह सिर पर, बेचारे नत्थू पर क्या बीती होगी?'

'बेटी बहुत बुरी बीती उसपर पर उस छोरे पर क्या बीती होगी, जो सालभर रेवड के पीछे-पीछे भटका। रेवड सोया वहीं वह सोया, रेवड बैठा वहीं वह बैठा—छाया की तरह डोला उसके पीछे। एक गधे पर आटा-पानी और अपना फटा-पुराना कम्बल लादे, जगल-जगल डोलता रहा, सरदी-गरमी और आँधी-बरखा सबको ताक मे रख,रात अपनी किसी टीबडे पर काटता रहा—एक दिन नहीं सालभर और पैसा एक भी मिला नहीं, इससे बडी बदकिस्मत और क्या होगी? ससार मे धक्काखोरी की ही जै समझ तू। अब सो-जा बेटी, ऐसा, एक गाँव मे नही, एक घर मे नही, कम-बेसी सभी जगह होता रहता है, तू मन को छोटा मत कर, हमने उसका नहीं खाया, खाया हमारा ही है उसने? हमे रामजी और देगा।'

सन्तोष करने के सौ बहाने हैं, नथ गुम गई, ननद को ही दी सही, डोकरी यह सोच, इससे अधिक और क्या करती? वह अपनी खाट पर आगई, नींद सता रही थी उसे—सोगई चुपचाप।

दादी के इस कथ्य से पूरी का फेन उगलता जल एक बार तो काफी-कुछ शान्त होगया पर तैल-धारा की तरह इतना तो उस पर तैरता ही रहा कि आखिर ऐसे अन्यायो का

अन्त कैसे हो? इस हिसाब तो, गरीब का जीना ही मुश्किल है?

वह दिनभर की थकी हुई थी। देहयष्टि उसकी थकावट से चूर-चूर होरही थी। अनायास, वह नींद की बाहो मे कब चली गई उसे पता ही न चला।

सब सोगए पर इनके दुर्भाग्य का दैत्य इन पर मडराता जाग रहा था–पिशा[illegible] उ[illegible] अब भी शान्त नहीं हुई थी। वह इनके पाणो पर नया कुचक्र रचने मे [illegible] था।

बारह

पूरा का पूरा पारिश्रमिक डकार लिया जाने पर भी डोकरी ने असन्तोष पीकर मौन ओढ लिया, क्या करती वह? उसके हाथ मे था ही क्या? पर पूरी का आक्रोश उसके मानस से टकरा-टकरा, सागर फेनो की तरह उठता-बैठता एकाएक अशान्त होजाता।

जब भी वह अकेली होती, सोचने लगती, 'खेत की केवल चौकसी ही नहीं की मैंने खींपें बुइयाँ आक और सिणिएँ ला-ला, दो-चार गलते रोज ढकती, ये तो कहीं गए नहीं–गवाह हैं मेरे? उनके जीभ नहीं तो क्या हुआ, उनकी गली हुई देह तो फिर से जी उठी है? वह तो चौधरी को दिखती होगी?' और तभी वह अपनी हथेलियो की पीठ, कलाइया और पिंडलिया देखने लगती। उन पर जगह-जगह उभरी खरोचे, जिन पर कुछ कालिमा लेता लहू जम गया था। पैरो मे गडी शूलो की ओर झाकती जो अब दिखती तो कम थीं, पर दर्द अधिक करती थीं।

उसके बढते असतोष पर उभरा, 'मजूरी न दी तो न सही, नीयत बदल ली तो खाओ-पीओ पर गुड नहीं, तो गुड जैसी जीभ भी नहीं, शाबासी भी नहीं? धमकी और फटकार अलग, ऐसा मैंने क्या गुनाह कर दिया?'

उसने दादी से कहा, 'दादी,चौधरी की तरह कहीं और भी कोई कर बैठे तो अपने पास क्या हथियार है? इससे तो अच्छा है खुली मजूरी के सिवा कहीं जाऊँ ही नहीं–कोई सोने का टक्का दे–नो भी?'

'बेटी, हाथ की सभी उगलिया बराबर तो नहीं होतीं? सभी गए-गुजरे होजायँ तो आकाश बिना खम्भे कैसे थमा रहे?'

'ठीक है दादी, तब भी किसी पच-सरपच को कुछ कहकर तो देख? तू कहा करती है न, बिना रोए तो माँ भी बोबा नहीं देती?'

'बेटी तू सोचती है कि इस मार से मैं नहीं कराहती? तेरे बिना कहे ही मैंने गिडगिडाकर देख लिया, एक के आगे नहीं–कइयो के।'

'क्या हुआ फिर?'

'हुआ यह कि सभी ने हाथ झडका दिए। एक ने कहा, 'चौधरी जैसा भी है, तेरे से छिपा नहीं, फिर तू उसके जाल मे फँसी ही क्यो? फँसगई तो भोग।' दूसरे ने कहा, 'मजूरी करती-करती तू बूढी होगई, इतना तो करती कि आधे दिनो के पैसे पेशगी मे पहले

ले-लेती? चलो, काठ की हाडी एकबार चढ गई, आइन्दा तुम्हारे से क्या लेगा वह?' और गाव सरपच ने कहा, 'यह तो तुम दोनो की आपसी बात है, साच-झूठ का पता कैसे लगे?'

टॉय-टॉय फिस, प्याले का तूफान, प्याले मे ही पूरा हुआ।

'अब आगे के लिए दादी क्या सोचा?' पूरी ने पूछा।

'आगे इस बात का ध्यान रखेगे बेटी, कि हमारे साथ फिर कभी ऐसा न घटे।'

'इससे इतना तो सीख लिया दादी कि दुबले की मदद देवी भी नहीं करती। रोज काम, रोज दाम, मुझे तो यही अच्छा लगा।'

'तो ऐसा ही करेगे बेटी।'

'ठीक है फिर।'

उसने अपने ओर-छोर फैली सारी झोपडपट्टी पर दृष्टि डाली, उसे एक भी घर ऐसा न लगा जो अपने हक के लिए गाँव के किसी मनमानी करनेवाले से जरा भी लोहा लेसके। कई तो जरा-सी धमकी के आगे ही नाक रगडने लगते हैं, कई दो घूट दारू मे पसर जाते हैं, कई कर्ज के मारे नहीं बोलते। औरतो की आबरू पर तो आएदिन लीपा-पोती होती रहती हैं। इलाज इसका दूसरा कौन करेगा—सिवा अपने। पर इलाज हो कैसे? वह सूने आकाश की ओर ताकने लगी। सहसा उसके मानस पर तेजी से तैरा, 'अरे पानी लाना है कुएँ से—घर मे बून्द भी नहीं?'

उसने झट घडा उठाया और चल पडी उधर।

दादी-पोती सुबह-सुबह ही निकल पडती। दो-चार घरो मे गोबर पाथ आतीं,ठान और गलियारे साफ कर देतीं, पेट भराई किसी तरह होजाती। भाई को पूरी ही रखती पर रहती बडी सतर्क—यह कहीं धूल चाटने न लगजाय। अपने पास वह डेढ-दो हाथ की एक गिदली रखती। काम मे लगने से पहले वह भाई को उस पर सुला देती, दो-चार मिनट थपथपाती—सोजाता वह। नहीं सोता तो साथ लिए-लिए काम करती रहती।

एक दिन वह, भाई को थपथपा रही थी, पर नींद उस पर उतर ही नहीं रही थी। पंडिताइन आगई, कहने लगी, 'क्या कर रही है बेटी?'

'सुलारही हूँ—भाई को।'

'नींद इसकी ली हुई है तब तो यह सोएगा क्यो?'

वह उसकी ओर देखने लगी—असमजस मे डूबी।

पंडिताइन ने कहा 'ऐसी आदत डालना अच्छा नहीं। सुबह का समय तो इसके खेलने-कूदने का है, नींद के लिए थोडा ही है?'

वह घर मे गई। रबर की एक हरी चिडिया एक गेन्द और एक झुनझुना लाई। उसने बताया चिडिया इसके हाथ मे जरा भी कहीं दबेगी, वह चीं-चीं कर उठेगी, झुनझुना हाथ मे जरा भी हिला बजने लगेगा गेन्द हाथ मे गिरते ही गुडकने लगेगी। गेन्द यह लाएगा झुनझुना बजाएगा और चिडिया को दबाएगा—इस तरह यह अपने खेल मे उलझा रहेगा और तू रहेगी अपने काम मे उलझी। न यह रोने लगेगा न तू चिन्ता करेगी।'

पूरी को चैन मिलने लगा और बालक को मनभाया मोद।

पदमा जाटनी के घर भी वह जाया करती। बालक को खिलौनो से खेलते देख उसने पूरी से पूछा, 'पूरी खिलौने कहाँ से ले आई?'

'मुरलीदादा की बहू ने दिए थे।'

चौधरन को याद आया, उसके दोहीता होता था। वह कपडे के बने घोडे और ऊँट से खेला करता। दो साल होगए उसे गुजरे खिलौने उसने सम्हाल कर रख छोडे है। उसके ध्यान मे आया 'उन्हे मैं अन्धेरे मे कब तक रखे रहूँगी? यह बालक उनसे खेलकर कितना राजी होगा?' अपने अन्धे मोह पर बडी ग्लानि हुई उसे? ऊँट और घोडा वह निकाल लाई, और बालक के आगे डालदिए उसने।

बालक के चेहरे पर पसन्नता दौड गई। उत्सुकता छटगई उसकी। उसने चिडिया और झुनझुना छोड दिए। लपक कर उसे पकड लिया। ऊँट के नकेल पडी थी और घोडा बेलगाम था। गेन्द हाथ से निकल कुछ दूर चली गई। कुछ पल वह उसे देखता रहा फिर पैर सम्हल-सम्हल रखता उसके पास जा पहुँचा, लेकर उसे ऊँट और घोडे के पास आगया। चेहरे पर उसके जीत के सकेत उभर रहे थे। उसे देख-देख चौधरन का हृदय गद्गद् होरहा था। सोच रही थी 'अकल के मेरे मे दो दाने भी नहीं इतने दिन मैंने क्यों छिपाए रखा–इन खिलौनो को? मुझे दूध तो नही दे रहे थे ये? जड पर पाल लिए बैठी थी–किसी महाकृपण की तरह।'

माघ लगा ही था। दोपहर का समय। आकाश था साफ और धूप थी गुलाबी। पूरी खा-पीकर लकडिया लाने जगल मे चली गई। गगी देहयष्टि अपनी सीधी किए आँगन मे लेटी थी। ग्यारसी उसके पास बैठा खिलौनो मे उलझा था। डोकरी की आँखे कब लगी, उसे मालूम ही न पडा।

बालक ने चिडिया पर ऊँट रखा,ऊँट पर घोडा, घोडे पर गेन्द, और झुनझुना लिए खुद बैठने लगा उस पर। चिडिया पर बैठ, झुनझुना बजाता उडना चाहता था कि चिडिया कहीं दबगई और चीं-चीं कर उठी। वह हटगया, शायद सोचा हो, इतना भार लिए वह बेचारी कैसे उडे? अबकी बार वह सबको ऊँट पर बैठाने लगा कि अचानक एक औरत आई-अधेड उम्र की।

ललाट पर हरी टीकी खुदी हुई। आँखो मे काजल,पैरो मे चाँदी की कडिया और उनके ऊपर पातियाँ। हाथो की पीठ पर हरे फूल गुदे हुए और बीणियो की छाती पर उसका नाम और एक-एक बिच्छू। कलाई से लेकर कोहनी तक प्लास्टिक की लाल चूडियाँ। ओढना, घाघरा रगीन पर मैले। रग सावला ही था पर होठ उसके लाल थे, मुसाक की छाल से रगे हुए।

किवाडी से अन्दर झाकी वह। बालक को उसने खेलते देखा, और डोकरी को सोए हुए। दो मिनट तक वह बालक को टकटकी लगाए ताकती रही। उसकी तन्मयता और सहज सलोने रूप को देख वह मोहित होगई । बालक की ऐसी अलबेली मुद्रा उसने आज ही देखी–जीवन मे। प्यार करने और गोद मे लेने को, लोभ उसका उतावला हो उठा। उससे रहा न गया। किवाडी धीमे से सरकाकर,अनाहट कदम रखती, वह बालक के पास

आ पहुँची। उसे गोद मे उठाया, सिर पर उसके उगलियाँ चलाते, दो बार दोनो तरफ चूमा, और कुछ पल उसे छाती से लगाए रखा। मन करता था, कुछ देर और प्यार करू इसीतरह। एक तरफ बढता मोह, और दूसरी तरफ बढता भय, कि डोकरी कहीं जाग गई तो? बाहर से कोई आगया तो? एक पल वह डोकरी की ओर देखती, अगले ही पल दृष्टि उसकी किवाडी पर जा टिकती। सोच रही थी क्या करे वह, तभी उसका विवेक बोल पडा, 'अब निकल पडने मे ही लाभ है।'

बालक को वहीं बैठा, इधर-उधर ताकती वह फौरन चलदी। बालक न रोया, न मुस्कराया, सम्मोहित-सा मौन बैठा रहा।

औरत किवाडी से निकल, पाँच-सात कदम ही आगे बढी थी कि सहसा पूरी से भेट होगई उसकी।

'भीखी बुआ, कैसे आई थी?' पूरी ने पूछा।

'फिरती-घूमती, इधर चली आई थी, सोचा चलती-चलती दादी के दरसन कर चलू।'

'मिलगई दादी?'

'सोई है।'

और पैर वह जल्दी-जल्दी उठाती चलती बनी।

पूरी ने भरौटी पिछवाडे मे डालदी। हाथ-मुँह धो पानी पिया। ग्यारसी खेलना बन्द किए हुए था। चेहरे पर उसके उतर रही थी उदासी, और आँखो पर ऊँघ। हँसी और चपलता उसके भीतर ही मुरझा रहे थे। पूरी कुछ भी समझ नहीं पारही थी। उसे गोदी मे ले, आँगन मे फिरी पर कोई असर न हुआ उस पर। उसने खिलौने इकट्ठे किए पर ग्यारसी ने उस ओर न कोई ललक ही जताई और न आँखे ही उठाई उधर। पूरी ने पेट के हाथ लगाया। वह कुछ गरम लगा उसे। उसने दादी को जगाया, 'दादी देख तो, भाई अलसा कैसे रहा है?'

डोकरी ने पूछा, 'क्या दुखता है बेटा?'

उदासी लेता वह आँखे बन्द करने लगा। पूरी का कलेजा जगह छोडने लगा।

डोकरी ने कहा 'तू गई तभी से यह तो खिलौनो मे खोया था इतनी देर मे क्या हो गया इसके? पत्थर का हो रहा है यह तो, होठ भी तो नहीं खोलता? यहाँ कोई आया तो नहीं?'

'भीखी सैसन तो आई थी।'

'तुझे कैसे मालूम?'

'मैं आई तब वह घर से निकल कर जारही थी दादी।'

'सच?'

'हाँ दादी मैंने उससे पूछ भी लिया था।'

'अरे तब तो छोरा बचना मुश्किल है—वह भिखचनी तो जादू टोनागरनी है। जल्द छोरे के कुछ करना। मैं जाती हूँ जगे किसी झाडने को।' वह एकदम से उठी और घबराई हुई-सी किसी जतन की टोह मे निकल गई।

सुलगती रहती है। वह कई प्रकार के टोने-टोटके भी जानती है। एकान्त मे किसी शिशु को देख, वह सतृष्ण हो उठती है—मौका मिलना चाहिए उसे।

उसका बस्ती मे फिरना, बडा अखरता है लोगो को, फिर भी भूली-भटकी वह कभी आ ही जाती है। कहते हैं, एक बार वह किसी गरीबिन का बच्चा उठा कर चल पडी थी, पर रगे हाथो पकडली गई। बच्चा तो छिन ही गया, मार पडी वह अलग। बद से बदनाम बुरा, उस दिन से एक बडी कुख्याति गले इसके और बन्ध गई। तब से वह घरो मे नहीं जाती, पर कपूत बेटा, काँध मे काम आता है, कभी किसी के आँगन से कुत्ता-बिल्ला उठाने का काम आ पडा, और डेरे पर सिवा इसके कोई हुआ नहीं तो खोटे पेसे को भी गले मे डालना पडता है। अब अकसर यह टोनो-टोटको मे लगी रहती है।

पदमा डेरे पहुँची, कुत्ता भौंका। 'लाठी दिखती है न?' उसके होठो पर उछला।

सामने ही खटिया पर, अस्सी वर्ष का लक्खू लेटा था। सुनाई तो पडता है उसे, पर दिखता नहीं।

कुत्ते का भुसना सुन, उसने पूछा, 'कौन है रे?'

'पदमा हूँ—गोपाल की माँ।'

'बस-बस, आगे मत बोलो, जानगया, हुकम करो मालकन, कैसे की किरपा?'

'छोरे कहाँ हैं।?'

'एक तो बेगार निकालने गया है—गाँव मे ही कहीं। दूसरा गया है सासरे—बहू लाने।'

'यहाँ कौन है?'

'भीखली है।'

'टाबर?'

'बकरियो के पीछे गए होगे या खेलते होगे यहीं कहीं।'

तभी भीखली झोपडे से निकली।

'भीखी?' पदमा ने कहा।

'हाँ, माँसा।'

'तू कब आगई?'

'परसो।'

'रहेगी?'

'यही कोई दो-चार दिन।'

'अच्छा है दो दिन बाप की सेवा कर लेगी, भागवाली है तू, माँ-बाप की सेवा कहाँ पती है?'

'तो मरी-खाए तुम्हे, पहले तो तू ये खोटे करम करती है, बाद मे पिटती है—रोती है—क्या निकालती है इसमे?'

'अब नहीं करूगी—कभी नहीं। करू तो गौहत्या का पाप भोगू।'

गई वह वहाँ से छूटकर।

अभिचार का विज, बालक पर से उतरने लगा—हिपाक की ओर धँसते पारद की तरह। मुस्कान उसके होठो पर पुन लम्बाई पकडने लगी।

गगी, पदमा के पैरो पर झुकती बोली, 'नया जीवन आपने छोरे को ही नहीं दिया, हम दोनों को भी मौत के मुँह से निकाल लिया। नहीं तो हम मर जाती—पहले छोरी, बाद मे मै।'

'गगी, मैं ही करती तो अपने पति को थोडा ही जाने देती? जाको राखे साइया, मार सके है कोय, विश्वास अपना इसी पर जमाए रख तू।'

यह कह, वह अपने घर की ओर चल पडी।

माघ आधा बीत गया था। सर्दी का वेग धीमा पडने लगा था। अगडाई लेता बसन्त उठने की तैयारी मे था। रोटी खाकर दादी-पोती धूप मे आ बैठी। भाई खिलौनो मे लगा था। बाहर से आवाज दी किसी ने, 'गगी?'

आवाज सुनकर पूगी किवाडी पर पहुँची।

'छोरी, दादी घर मे है तेरी?' आदमी ने कहा।

आगन्तुक की आवाज डोकरी के कानो मे भी पड गई। वह भी आगई।

आदमी की ओर देखती बोली, 'पहचाना नहीं भाई?'

'गोपू हूँ।'

'गोपू सेनभगत?'

'हाँ वही।'

'आ दादू, तेरा तो नाम लिए ही लाभ है।'

'परमुखजी याद कर रहे हैं तुम्हे।'

'अभी मिलू या साँझ तक कभी भी?'

'अभी कौनसा दफ्तर सभाल रही है, मिले ले।'

'चल भाई मुझे कौनसी तैयारी करनी है?'

लठिया ली और चलदी उसके साथ।

यह पता नहीं था कि इस समय वह चबूतरेवाला चौधरी नहीं है, कुर्सीवाला है। कुर्सीवाले की आँखे धरती पर नहीं होती है–होती हैं सपनो के आकाश मे और हाथ होते हैं बटोरने मे। आक-ढाक से मिलने की फुरसत उन्हे नहीं वे मिलते हैं ताड और खजूर मे। खाना-पीना छोड, अधिकतर झोपडपट्टी आगई थी दरसन करने और घटो आगे खडकर वह बिना दरसन किए, बैरग ही लौटी।

एक बार उसने विधानसभा का चुनाव भी लडा, जामनी जब्त होगई। तब उसकी आँख धरती पर थीं, वाणी मे थी आत्मीयता और हाथ सधे थे राम-रमी की मुद्रा मे। उस समय उसका आदमी उसके भीतर था–था भी जागता। खुद को कैसा लगता था, पता नहीं पर आम लोगो को वह बडा सुहाया।

चार लडके हैं, दो नहर पर ठेकेदारी करते हैं, माहिर इतने कि रेत से रूपया गढ लेते हैं। एक गाँव मे ही सरपच है। तीन मुरबे जमीन है–छतरगढ की तरफ। गाँव मे है वह अलग। ऊँट-गाडे से लेकर जीप-ट्रैक्टर तक सब है। राज-तेज मे पैर रखते हैं। साख-सम्बन्ध नामी-गरामी घरो मे है और अधिक उठ-बैठ आज भी नेताओं मे ही है। अच्छा ठाठबाट और अच्छी पूछताछ।

घर पर चार-पाच भैंसे है और इतनी ही गाएँ। दूध प्राय बहू-बेटिया ही निकालती हैं। जरूरत पडने पर, कभी-कभार किसी को रख भी लेते हैं।

चौधरी घर के बाहर तिबारी मे बैठा था। गगी पहुँची, हाथ जोडती बोली, 'हुकम करो माईबाप कैसे याद की?'

'याद गगी, बिना मतलब कौन करता है किसी को? मदद करेगी कुछ?'

'गरीबनिवाज, डूँगरो को छाया? मदद करने की मेरी औकात माईबाप? मैं तो हाजरी बजानेवाली हूँ?'

'बात यह है गगी कि बहुएँ हैं दो सोनेवाली और अगले महीने छोटे छोरे की है शादी। मिलने-जुलनेवालो का ताता लगा रहेगा, घर के और-और काम भी बहुत हैं, गोबर पाथने की फुरसत किसे? तेरे पोती है न?'

है अन्नदाता, मेरी क्या आप ही की है।'

'सुना है, छोरी सहूरवाली है?'

'सहूरवाली तो क्या, उलाहना न लाए कहीं से तो, सहूरवाली ही समझो।'

'कितनी बडी है?'

'होगी चौदह साल की तो।'

'तब तो लायक ही है?'

'महीना-डेढ महीना गोबर पाथ देगी?'

'पाथ क्यो न देगी।'

'समझले, दो घटे तो रोज लग ही जाएँगे।'

'लगो लगजाएँगे तो।'

'पैसे बोल?'

'दाई से पेट छिपा? हाथ उठाकर जो दे-देंगे चिरणामत की तरह सिर चढालूगी।

'पर सयाने कहते हैं कि हिन्दू कहता शरमाता है, पर लडता नहीं शरमाता, होठ तू ही खोलदे अपने?'

'माईबाप सौ वरस मे सइका एक ही बार आता है, पहली बार ही काम पडा है, क्या तो मैं कहदू और क्या नहीं?'

'अच्छा, जा फिर, भेज देना कल से उसे'।

गगी बडी राजी हुई। बेटे का विवाह है, साई-बधाई भी मिलेगी और मजदूरी भी मजे की।

वह घर की ओर चलदी। घर आकर उसने पूरी को सारी बात बताई तो पूरी ने कहा, 'दादी, पहले कुछ पेसगी तो ले-नेती?'

'बेटी, पैसा जिनके हाथ का मैल है, उनके पैसो का क्या डर?'

पूरी कुछ नहीं बोली, उसने काम पर जाने का निश्चय कर लिया।

वह सुबह-सुबह ही निकल पडती। बीस-बाईस तगारी गोबर होता। उसे उठाती, गिलोती और पाथती। पहले दिन की पाथी थेपडियाँ एक-दूसरे के सहारे खडा करती और पूरी तरह सूखी हुई, पास ही के पिंडारे मे लगाती–ढग से। गोबर के थल पर झाडू भी रोज निकालती। नहीं-नहीं करते ढाई-तीन घटे उसे लग ही जाते। उसके काम से चौधरन के नाक-भौं मे कहीं कोई शिकन न थी। आते समय, एक-डेढ बासी रोटी और कुछ सब्जी लेआती। किसी का लेना न देना, वह राजी थी।

काम करती गई, दिन निकलते गए।

चौधरी के बेटे का विवाह होगया–खूब गाजे-बाजे और शान-शौकत के साथ। बेटीवाला कोई बडा ठेकेदार था। दहेज मे एक जीप दी और जेवर दिए पचास तोले के करीब। चार किलो चॉदी के बर्तन थे। टीवी, कूलर, फ्रिज और स्कूटर बिना तो आज की नई सभ्यता मे दहेज ही लगडा और लगोटीवाला। यहाँ तो सब कुछ था। कपडे और वेष-बर्तन तो आम हैं, उधर किसी की ऑखे ही नहीं उठती। न उठे, यहाँ तो वे भी आकर्षक और नवीनतम नमूने के थे–एक-एक से बढकर। चार सौ आदमी बारात मे गए। नए-पुराने कई विधायक कितने ही अफसर और कई सेठ-साहूकार शामिल थे बारात मे। हर बाराती को एक ऊनी शाल और मेवे से भरी एक गिलास मिला। खातरदारी इतनी कि गले से ग्रास उतारने को जगह ही नहीं रही। चौधरी ने भी भोज दिया बदी-पूरी और सब्जी सारे गॉव ने खाई।

हीरा इसमे।' इस तरह धुथका डाल-डाल वे चलदेती। पाँच-सात दिन तो घर मे मेला-सा लगता रहा।

पूरी दोपहरी को खा-पी दादी के पास बैठी थी। ग्यारसी सोया था।

पूरी ने कहा, 'दादी विवाह का काम तो अब पूरा होगया चौधरीजी के?'

'हाँ होगया बेटी।'

'अब तो वे दो-चार दिन बाद छुट्टी कर देगे मेरी?'

'कर ही देगे। बेटे का विवाह किया है कुछ मजूरी के देगे, और कुछ साई-बधाई के भी। भागवाले हैं, सौ-पचास तो आँख तले ही नहीं आते, लिछमी उन पर हाथ धरे खडी रहती है।'

'तू कह रही थी न दादी, अबकी पैसे आते ही पहले पन्दरै-बीस कीलो गेहूँ लाने हैं?'

'हाँ बेटी जरूर लाने हैं।'

पैसे कुछ बचजाएँ दादी, तो जूते न सही,चप्पल ही मगवादे, आगे गरमी आरही है।'

पैसे ठीक मिल गए बेटी तो, चप्पल क्या जूते ही लेगे, साल-डेढ साल की चिन्ता मिटेगी।'

पूरी बडी राजी हुई।

होली के दूसरे दिन राम-राम था। चौधरन ने अपनी बेटी से कहा, 'रूक्मा, छोटी भाभी को कह, ओढ-पहनकर तैयार हो जा, दो-चार घरो मे पैर-पडने जाना है।'

बहू तैयार होने लगी। कपडे पहन लिए। गहने पहनने लगी, बींटी नहीं मिली। याद करते हुए, पलग पर देखी, नहीं मिली। लोहे की अलमारी थी, सोचा, 'उसमे रखी याद तो नहीं पडती, फिर भी टटोल लेती हूँ उसे भी।' टटोली, पर नहीं मिली वहाँ भी। वह उदास होने लगी। मन केन्द्रित कर फिर याद करने लगी, 'रात को उगली मे थी, पति ने अपनी कानी उगली में डालकर कहा था, अगूठी वाकई जोरदार है। फिर देदी मुझे, मैंने डालली अपनी अनामिका मे। भोर मे पाँच बजे पिछवाडे मे गई थी मैं टूंटी पर, ब्रश भी किया था वहाँ, बस-बस वहीं मिलेगी वह।' वह बाहर आई, और फोरन पिछवाडे मे गई। टूटी के आसपास, आँखो को चौडा कर देखा उसने, पर बींटी नजर नहीं आई। उसे याद आया, 'सुबह-सुबह उसने गाय को एक बासी फुलका दिया था।' एक राठी गाय और हरियाणी भैंस उसके बाप ने उसे दहेज मे दी थीं। गाय के साथ उसकी पीहरी आत्मीयता है। उसकी पीठ पर उसने दो-चार बार हाथ भी फिराया था। हो-न-हो, बीटीं वहीं गिरी है। वह उतावली हुई छप्पर मे गई। इधर-उधर बडे गौर से देखा। पाँच-सात मिनट रेत मे उगलिया भी चलाईं, पर बींटी नहीं मिली। सोचा, 'यहाँ होती तो, दूर से चमक न जाती?'

यह बींटी उसके चाचा ने दी थी। नहरी इलाके मे पटवारी है वह। आकाश बरसता है, बडी आमदनी है उसके। कई बार बदली हुई उसकी, कभी अपने अधिकारी का गला दबवाया-किसी नेता से, और कभी पतिष्ठा का सवाल ही आ खडा हुआ सामने तो नोटो से भरी अटेची शरण गच्छामि और सेवा-निवृत्ति तक अपनी जगह नहीं छोडी, खोह के

खूटे की तरह जमा रहा।

वह सोचने लगी, 'वह बींटी चाचा ने मुझे अपने हाथो से पहनाई थी–कितने प्यार और उल्लास से, जाते ही मुझे पूछेगे, 'शारदा, बींटी इतनी जल्दी ही गमादी–महीनेभर भी नहीं पहनी? ऐसे कैसे गमाई, बेटी? तब क्या जवाब दूगी मैं?'

उदासी उसकी और गहरागई।

चौधरन ने बहू को पिछवाडे मे आते-जाते कई बार देखलिया। उसने लडकी से कहा, 'छोरी, बहू के कुछ गडबड है क्या? पिछवाडे मे बार-बार आ-जारही है?'

'भौजाई को बींटी नहीं मिल रही माँ।'

'कहाँ गिरी, ध्यान है कुछ?'

'कहती है सुबह-सुबह ही टूँटी पर गई थी, वहाँ हाथ धोए, बुरूस किया, गिरनी तो वहीं चाहिए। वैसे गई वह छप्पर मे भी थी–गाय को रोटी देने, उसकी पीठ पर दो-चार बार हाथ भी फिराया था, हो सकता है फिर वहाँ गिरी हो, तीसरी तो कोई जगह ही नहीं।'

'बींटी कुछ ढीली थी उगली मे?'

बहू ने सिर नीचा करते, साकेतिक हाँ भरदी।

सास उठी, दो बहुएँ और दो-तीन छोरे-छोरिया पूरा काफिला सतर्कता ओढे, पिछवाडे मे जा पहुँचा। सबने खोजबीन की, पर बींटी का कोई सुराख न मिला।

चौधरन ने फिर पूछा, 'पक्का याद है न, बींटी यहीं गिरी है?'

बहू ने सिर दो बार नीचा कर-कर, अपने विश्वास को दुहराया।

'तो फिर पहले-पहल पूरी के सिवा और किसी ने तो पैर इधर रखे ही नहीं?'

बडी बहू ने कहा, 'मूतते को माधोसाई, पडी मिलगई उसे, तो क्यो छोडती वह?'

दूसरी बहू ने सलाह दी, 'छोरी को ठगा-फुसला,थोड़ा लोभ देकर पूछो, चोरी की उसे पुख्ता आदत तो अभी पडी नहीं, सीखतू है–बतादेगी।'

बेटी ने कहा, 'अपने से पार न पडे माँ तो फिर बापू को सौंप, वे उसकी आँतो मे से निकाल लेगे।'

चौधरन ने कहा,'बात को अभी हवा मत दो पहले ही क्या पता, ऊँट किस करवट बैठे?'

बडी बहू का कहना था, 'कुछ ही करले, सीधी उगली तो घी निकलेगा नहीं?'

दूसरी बहू ने सुझाया, 'ऐसा करो कि साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे?'

इस तरह बटती बात कल भोर तक के लिए स्थगित करदी गई।

अगले दिन पूरी, सूर्योदय होते-होते घर से निकली अपने दुर्भाग्य को साथ लिए। सोचती जारही थी 'अब तो एक-दो दिन का काम और है जूते आजाएँगे, फिर तो भोभर दैकती रेत पर भी मटकती चलूगी।' पैरो मे थी उसके फुर्ती, और मन पर उछल रहा था एक नया ही उल्लास।

गोबर उसने पाथ लिया। रोटी लेने आई। रोटी और मन्नी तो चौधरन ने दिए ही पाव-डेट पाव बून्दी और दो मुट्ठी भुजिया और दिए उसे। वह उसे पिछवाडे मे किनारे ले गई। टूटी के पास वह और चौधरन दोनो बैठ गई।

चौधरन ने इधर-उधर ताकते हुए बडे मिठास से कहा उसे, 'कल तो बेटी नई बहू की बींटी, उगली से छिटक कर यहीं-कहीं पिछवाडे मे गिर गई ध्यान मे आई हो तो बता लाडली? नई बहू से तुम्हे नए जूते बढिया कपडे कॉच-कागा और दस-बीस रुपए और दिलाऊँगी। मैं इनाम दूगी वह अलग। सयानी बेटी है तू बता।'

पूरी ने चौधरन की ओर फटी आँखो से देखते कहा, 'बींटी, दादीसा मैंने तो देखी ही नहीं?'

'गूगी घर लेगई तब भी, अभी तो कोई बात नहीं, कल आते लेआना, तू जाने या मैं जानू तीसरे तक तो दूर, बात मैं, घर की हवा पर भी न उछलने दू?'

'दादीसा, बींटी का चेहरा ही नहीं देखा मैंने तो?' उस पर उदासी मडरा उठी—गहरी होकर।

'अरे भोली, घबरा मत, बींटी तुम्हे पसन्द आगई तो कोई बात नहीं उसके बदले मे मैं तुम्हे एक नहीं, दो देदूगी—उससे ज्यादा फूठरी। बेटी, वह मेरे छोरे-छोरी की होती तो कोई बात न थी, वह है नई बहू की, पीहर जाएगी बहू, बात छिपी थोडी ही रहेगी? अपने को कितना बडा उलाहना मिलेगा? वे सोचेगे, बींटी वहीं छोरी की किसी ननद-जेठानी ने दबानी है, वहाँ हमारी भी बदनामी होगी, ऐसा अपन करे ही क्यो? कल आते, ले आएगी न?'

'दादीसा, लिए बिना ही लाऊँगी कहाँ से? आप कहो तो मैं यहाँ खोजू कुछ देर?'

'अच्छा, खोज, मैं यहीं बैठी हूँ।'

पूरी छप्पर में गई। मन को एकाग्र कर, उसने अपनी आँखे और उगलियाँ दोनो धूल में गाडदीं। बीस मिनट हो गए छप्पर की सारी रेत उसने, उगलियो से निकालली, पर बींटी कहीं नजर नहीं आई। गाय-भैंसो के ठाण भी उसने टटोले, बींटी हो तो मिले? देह पर पसीना छूटने लगा। वह टूटी के पास आई, वहाँ और देखा आँखे फाड-फाड़। उदासी से ढकी, आखिर वह चौधरन के पास आ खडी हुई, कहने लगी, 'दादीसा, बींटी मेरी नजर मे तो कहीं आई नहीं?'

चौधरन ने तुरत चौतटा अपना बदला। इतनी देर उस पर मिठास और धीरज तैर रहे थे। अब आँखो पर थीं उसके चिनगारिया और होठो पर थे अगारे। उसने कहा, 'छोरी, कान खोलकर सुनले, अबतक तो बात है तेरे-मेरे बीच मे, और जब चली जाएगी परमुखजी के पास तो मैं फिर कुछ नहीं कर सकूगी बेत पडेंगे, तू बींटी भी देदेगी, और तेरे को मिलेगा भी कुछ नहीं?'

पूरी सकपका गई। उसने गिडगिडाते हुए कहा, 'दादीसा, बींटी मैंने देखी ही नहीं?'

'देखी कैसे नहीं, बहू के बाद तेरे सिवा पिछवाडे मे और कोई आया ही नहीं, तो जमीन खा गई उसे या आँधी उडा ले गई? जूते खाकर ही मानेगी, इससे अच्छा है पहले ही मानजा।'

भय उतर आया छोरी पर। चेतना उसकी काँप उठी हवा मे हिलते पीपल-पत्तो की तरह। गिडगिडाती आवाज मे उसने कहा, 'दादीमा, मैंने तो बींटी का चेहरा ही नहीं देखा।'

उसकी आँखे भर आई, पर चौधरन के चौखटे पर इसका कोई असर न हुआ। जडता के मिथ्या मोह मे डूबी उसकी मानवीय सवेदनाएँ लुप्त होगई हो जैसे।

उसने फिर कहा, 'तू मार खाने से ही राजी है तो खा, मैं क्या करलूगी? जा, होना है वह हो जाएगा।'

पूरी ने अपना भाडा उठाया और आँसू ढालती, चलदी।

घर पहुँची तो दादी ने पूछा, ' बेटी, देरी करदी?'

वह बोली नहीं।

डोकरी ने आँखे अपनी उसके चेहरे पर गाडदीं।

'क्यो बेटी, रो क्यो रही है?'। उसने घबराते हुए पूछा।

वह और अधिक फूट पडी।

'अरे, बात क्या है बेटी, मारा किसीने? कह तो सही कुछ?'

आँसू और वचन साथ-साथ निकल रहे थे उसके। बात सारी उगलदी उसने।

'घबरा मत बेटी, खा-पी और आराम कर—भाई के पास? मैं जाऊँगी थोडी देर बाद, चौधरन से मिल आती हूँ, समझादूगी उसे सारी बात। बेटी कोयले हमने खाए ही नहीं तो हमारा मुँह काला क्यो? जरा भी डर मत तू।'

पूरी का उखडता जी कुछ जमा। खाने पर बैठती वह बोली, 'दादी बूढी है, कुछ तू ही खा।'

'तू खाले, मुट्ठी-आधी मुट्ठी भाई के लिए रखले।'

'काफी है दादी, है भी नरम, अकेली मैं नहीं खाऊँगी, साथ ही बैठजा तू।'

दो-चार कौर डोकरी को लेने पडे। कुल्ला कर वह बाहर आगई झोपडे की छाया मे। पूरी खा-पी भाई के पास ही लेटगई, थकी हुई थी, नींद आगई उसे।

डोकरी की सुबह से कमर कुछ दुख रही थी। जी कर रहा था अधघडी कमर सीधी करलू। लेटगई, देह पूरी तरह सीधी हुई भी नहीं थी कि गोमती नाइन सामने आ खडी हुई बोली 'राम-राम माँ?'

और इसी के साथ डोकरी की आँखे ऊपर उठीं, वह बैठी होगई।

'कौन गेरू की बहू?' उस पर नजर टिकाते उसने कहा।

'हाँ।'

'आ सुहाग लम्बा हो तेरा बेटे-पोते का सुख देख बोल बहू?'

'बडी चौधरन याद कर रही है।'

'तेरे साथ ही चलूँ तू कहे तो?'

'चल मना कौन करता है?'

लाठिया टेकती जा पहुँची डोकरी। चौधरन ने, एकान्त मे लेजाकर एडी से चोटी तक सारी बात उसे समझाई।

डोकरी ने कहा, 'मालकिन, मैंने तो ज्यादातर ऊमर अपनी गज्जू के घ[illegible] ही निक[illegible]—[illegible] छिपा नहीं। उसकी माँ, गहनो की पेटी मेरे आगे खुली छोड काम मे लग[illegible]ती। [illegible] है मैंने डोरा भी कभी छुआ हो उसका लिया तो मागकर उठाया तो [illegible]कर [illegible] जानता है। अपने मुँह बडाई करना भी पाप है माफी देना मालकिन, [illegible] पर [illegible] [illegible] आगई तो मैंने कह दिया।'

'अरे तभी तो कहती हूँ, आम मे यह आक पैदा कैसे होगया?'

'पर मालकिन, मेरा अब भी विश्वास नहीं, कि वह छोरी ऐसा महापाप भी कर सकती है। वह एक-दो दिन से नहीं बरसो से आप ही लोगो के घरो मे आती-जाती है आज तक किसी का डोरा भी उठाने की शिकायत मेरे कानो तक तो पहुँची नहीं। आप जानती है मूली खाने पर डकार तो उसकी आए बिना रहती नहीं?'

'तो मैं झूठ बोलती हूँ?'

'अरे राम-राम, आप और झूठ, ऐसा तो मैं सपने मे भी नहीं सोच सकती। बींटी गुमी है यह तो दिन के उजाले की तरह साफ है! मेरा रोना है छोरी के लेने न लेने का?'

'छोरी के साथ मेरा बैर तो नही?'

'बैर मालकिन आपका नहीं, बैर उसकी किस्मत का है उसके साथ—तभी तो होम करते हाथ जलते हैं उसके?'

'अच्छा, अब ज्ञान-गोचर को तो रहने दे, जाकर छोरी को ऊँचा-नीचा लेकर पूछ,पार पड जाए तो किस्मत उसकी अच्छी वरना ढेला हाथ से छूटने के बाद मैं कुछ नहीं कर सकूगी, परमुखजी ही करेगे। सूरज छिपने से पहले-पहले मुझे इसकी खबर दे।'

'ठीक है मालकिन,' हाथ जोडती वह विदा हुई।

सोचती जारही थी, 'सिर पर एक नई चिन्ता आ उतरी—कोढ मे खाज की तरह—बचाव कैसे होगा इससे, क्या करू, समझ भी तो साथ नहीं दे रही?'

घर आकर पूरी के पास बैठ गई, धीरे-धीरे समझाने लगी उसे, 'बेटी, परमुख का राज मे पग है गाँव मे दबदबा उसका तेरे से छिपा नहीं, हम हैं उसके जूतो की जगह बैठनेवाले, हमारी कौन सुनेगा? अपन बेटी, इस गाँव मे फिर रहने लायक भी नहीं रहेगे। जाएँगे भी कहाँ, कोई जगह भी तो नहीं दिखती। सब हम पर ही उगली उठाएँगे। झाडू-बुहारी निकलवाना तो दूर, हमे कोई अपने दरवाजे पर भी नहीं चढने देगा। थूके हुए खखार की तरह होजाएँगे हम। हमारे सामने कोई फूटी आँख भी नहीं करेगा। कहीं कोई सुराख हो तुम्हे बींटी का तो, बाहर चोर चोरी करे, पर घर मे साच बोले, मुझे साफ-साफ बतादे।'

'दादी, तेरी सौगन, मैंने तो बींटी की सूरत भी नहीं देखी—काली है कि गोरी? तुम्हारे से छिपाकर, मैं कहाँ रखूगी उसे और रखकर मैं उसका करूगी ही क्या? मुझे उसका कुछ भी पता नहीं दादी। तू ही कह दे, मैं तेरे आगे आज तक कभी झूठ बोली हूँ? तेरे से छिपाया है कुछ भी?' वाणी मे उसके, सच [illegible] करूणा मे [illegible] हुआ, चेहरे का रग उडा हुआ और मन बुझा हुआ।

'ठीक है बेटी चिन्ता मत कर फिर, अपना बेली रामजी है, दुख ही लिखा है तो भोगेगे,

टालेगा कौन उसे? पर बेटी, समझ मे नहीं आता तकलीफ अब कौन-सी बाकी रहगई? क्या सारे घर का अन्त ऐसे ही होना लिखा है? मजूरी करने जाते है, काम भी डटकर करते हैं, मेहनताना मिलने का समय आता है तो अगला जूता निकाल कर सामने होजाता है। किसी के आगे कुछ गिडगिडाएँ तो अपनी तरफ कोई कान ही नहीं करता? कैसे पाप किए थे, कैसे छूटे उनसे, किसे पूछे, कोई बताता भी नहीं।' वह उदास होती मौन होगई और दुविधाओ के कीचड से ऊपर उठने का उपाय सोचने लगी।

पूरी का मानस भय और आशकाओ से घिर गया। अन्धकार उतरने लगा उस पर। सोचने लगी, 'अब एक-एक नहीं तीनो साथ ही मरेगे, न कोई चीख सुनेगा और न कोई आँसू ही देखेगा। रोज-रोज के मरने से पिंड छूटेगा—अच्छा होगा।'

'भाई जाग गया बेटी,' दादी ने कहा।

पूरी उसे लिए-लिए, काम मे लग गई।

तेरह

चौधरन ने अपनी बात का तीखा-तिक्त रस पति और पुत्रो के कानो मे जैसे ही निचोडा, कान उनके होगए खडे और मन होगए आग-बबूला। चौधरी ने पत्नी को धीरज से कहा, 'छोरी को तो छोड एक बार पहले गगी को खूब हिला-हिलाकर परखले।'

'परख लिया, कोई कसर नहीं छोडी।'

'क्या कहा उसने?'

'उसने तो साफ सिर हिला दिया, कहा, मालकिन, वह घर पडा मिल जाए तो चोरो मे हो वही हम मे हो।'

'यह तो फरेब की बात ही कही उसने। शुरू मे तो सभी चोर ऐसा ही कहते हैं। अरे, घर मे कीलो-दो कीलो की छिपाई चीज खोज पाना भी बडा टेढा काम है, तो पाँच-चार ग्राम की बींटी क्या खोज लेगा कोई?'

उसने छोटी बहू से एक बार और पुछवाया, 'बींटी गिरी वह जगह तो सही-सही याद है न?'

बहू ने बडे भरोसे के साथ अपना पहले का सत्य फिर दुहरा दिया।

[illegible] ने पत्नी से कहा 'पूरी के सिवा और तो सुबह-सुबह कौन पहुँचा होगा वहाँ?'

'[illegible] तो मैं कह रही हूँ। आप कहे तो शाम तक एक बार भोपे तक हो आऊँ?'

'इसने क्या बताएगा थानेदार लगा है वह?'

'[illegible] तो कहेगा ही, सुनने मे कौनसी जेब कटती है? एक बानर रूठ गया तो कौनसा [illegible] होगया? एक हम नहीं गए तो क्या होगया, सारा गाँव पहुँचता है वहाँ? [illegible] न तो एक हम ही रहगए, और तो सभी भोंदू हैं?'

'अच्छा अच्छा इतना ही मन है तो हो आ।'

सूर्यास्त से करीब आध-घटा पहले वह पहुँची वहाँ—अपनी एक पडोसिन को साथ लिए। भोपे ने थान के आगे [illegible] धूणी-धर्मी जमाया ही था। सिंदूर का [illegible] टीका [illegible]

चोला, बिलान-बिलान की तिल-चावलिया दाढी और पकते-उलन्ते [illegible]। [illegible] देखकर भाँपनेवाला वह पूरा नाटकबाज और वर्षों का पेशेवर था।

लाल पत्थर की मूर्ति, होगी कोई दो फूट अन्दाज ऊँची–सिंदूर मे पुती हुई। आगे उसके हाथभर की त्रिशूल गडी। वह भी सिदूरमय। उसके एक-एक दाँते मे एकेक लाल कतरनी लटक रही थी। आगे उसके कुछ बाजरी, कुछ दताने पडे थे। टीका लगाने के लिए एक कटोरी मे सिदूर घुला था। मूर्ति कोई गवई कारीगर के हाथ की लग रही थी। न उसमे कोई कला उजागर होरही थी और न कोई ऊपरी तडक-भडक ही। तराशी हुई भी पूरी तरह नहीं थी। भोपा कहता है कि यह उसे अपने खेत मे खाई खोदते मिली थी। इसलिए वह गाँव की श्रद्धा से अधिक जुडी हुई है। आगे उसके एक घूघटा पडा था। इस समय तो पेदा उसका खाली ही था।

चौधरन को आते देख, वह सतर्क होगया, सोचने लगा, 'यह बेरत की बादली? आज इधर कैसे? केवल गरजकर के ही तो न रह जाएगी?'

आदमी ने हाथ जोडते पूछा, 'दो हो दिन हो गए बाबा, आसपास की सारी धरती छान डाली, ऊँट मिल नहीं रहा है, कोई ले लम्बा तो नहीं हुआ?'

भोपे ने एक उबासी ली और फिर हल्की-सी एक अगडाई। अब होठो पर बिखरा उसके, 'मनसूबा तो तू परसो से बना रहा है, पूछा आऊँ पूछ आऊँ, और आया आज है?'

'हाँ महाराज, ठीक फरमा रहे हैं आप।'

'ऊँट अभी, पराए हाथ नहीं चढा है, टोले मे जा मिला है, राईके को पाँच-सात रूपए चटा, मिल जाएगा। आज ही चला जा–ढील मत कर।'

आदमी उठा और चलदिया।

औरत ने हाथ जोडते कहा, 'आधा-साल हो रहा है महाराज, जवाई छोरी को लेजा ही नही रहा है।'

भोपे ने पहले जैसी ही जम्माई लेते, उसी अदाज मे कहा, 'जवाई के कान छोरी की ननद ने भर रखे हैं।'

'हाँ बापजी, लगता तो ऐसा ही है, छोरी की ननद विधवा है, चौबीसो घटे उसकी छाती पर ही खडी रहती है, काचर का बीज है, आपस के मेल-मिलाप का दूध टिकने ही नहीं देती–फाड देती है।'

'छोरी को कह, नहा-धो सुबह-सुबह ही जोगमाया के आगे धूप खे दिया करे और एक चुपडी बाट लाकर दीपक चसादे। इक्कीस दिन फेरी दे, घर से यहाँ तक रास्ते मे किसी के साथ होठ न खोले, बाद मे एक डोरा करदूगा, जवाई नाक रगडता न लेजाए तो कहना, बाबा ने कुछ कहा था।' हाथ जोडती वह भी चलदी।

चौधरन ने बताशो का ठूगा मूर्ति के आगे रख दिया। कोने मे वहीं एक ताबे का लोटा पडा था। रूपए का एक सिक्का और चवन्नी उसने उसमे डाल दिए।

चौधरन ने कहा, 'रिछपालजी?'

'हाँ, बडी-माँ।'

'घर मे एक उजाड होगया।'

'गहना है कोई?'

'हाँ, नई बहू की बींटी है।'

'काफी कीमती है।'

'तभी तो आई हूँ।'

'ध्यान होगया मुझे, पडी कहाँ, अन्दाज है कुछ?'

'पडी तो बहू ने घर के पिछवाडे मे बताई, रेत वहाँ की सारी छानली हमने तो, मिली नहीं।'

'मिले कहाँ से, बींटी अब वहाँ है ही नहीं।'

'तो कहाँ गई।'

उसने दीपक जलाया, धूपबत्ती की। सामने बैठ गया और मूर्ति की ओर एकटक ताकने लगा। अपने छलबल की कुतिया उसे कीचड मे धँसती लगी। आँखे उसने बन्द करली, सोचने लगा, 'अबके टिड्डा मौत आई तेरी, पोल खुलेगी और पेट पर लात पडेगी, कैसे तो रहे मूछ के चावल और कैसे बना रहे गाँव पर पभाव?' सहसा उसकी स्मृति पर एक पतला-सा तन्तु लटक उठा। उसके चेहरे पर मुस्कराहट नाच उठी। अब क्या था, उसे आधार मिल गया चढने को–शिखर तक। पाँच रोज पहले उसे पूरी मिली थी–चौधरन के घर से निकलती। तभी उसने, उसे पूछा था, 'छोरी तू यहाँ कैसे-ए?'

'गोबर पाथने आती हूँ बाबा ' उसने कहा था।

बस, इसी तन्तु को पकडे वह अपनी कामना के महल मे आ बैठा।

उसने आँखे खोली और कहा, 'बडी-माँ, मुझे तो कोई छोरी दिखती है। थकी-पतली सावली-सी और बारह-तेरह के आसपास। पौसाक पूरी दीखी नहीं, चड्डी ही नजर आई मुझे तो।'

'ठीक।'

भोपे के इस कथन ने चौधरन के सोचे को और पुष्ट तथा और परदर्शी करदिया।

उसने पूछा, 'बींटी अभी दूसरे के हाथ तो नहीं चढी?'

'नहीं।'

'ठीक है फिर।'

चौधरन चलदी, सोचती जारही थी, 'भोपे की करामात मे तो कोई कमी नहीं। उसने अधर मे से बहुत कुछ उतार लिया। तप से क्या नही होता? अब तो बींटी मिली ही समझो। बींटी मिलते ही इसे एक तो कसूमल साडी और साथ मे एक हरी पत्नी जरूर [illegible]।'

आकर पतिदेव के पास बैठ गई। उसने भोपे से लाए सारे मोती एक लड मे पिरो पहना दिए। चौधरी का अह चौडा होगया। उसने कहा, 'अब देख बन्दे की फेरी, [illegible]। तेरी कि मेरी? निकलवाने कितनी देर लगाता हूँ?'

[illegible]गी के हारे में खिचडी की हडिया खदबदा रही थी। उसने कहा, 'बेटी खिचडी तो अब हुई हडिया बाहर ले-ले छाछ पडी है दे नाखनी मुट्ठी आटा डाल उसमे, चूल्हा न जलाकर हारे पर ही घोलने उसे खिचडी गले आसानी से उतार लेगा।'

'हाँ अभी ले दादी।'

दो-चार मिनट ही नहीं हुए तभी किसी ने आवाज दी, 'पूरी?'

'हाँ भाई कौन है?' वह बैठी-बैठी ही बोली।

'गोपू हूँ मैं तो, जरा पूरी को भेज परमुखजी याद कर रहे हैं।'

डोकरी ने कहा, 'जा बेटी, मैं दोनो हडिया भीतर रखकर, अभी आरही हूँ भाई को लिए।'

'दो मिनट रूक लेती हूँ मेरे साथ ही चल।'

'डर मत बेटी, तेरे पीछे-पीछे ही आरही हूँ।'

पूरी चलदी। भीतर ही भीतर उसे किसी अनागत भय के आसार मडराते लग रहे थे—अपने पर। पदचाप उसके धीमे उठ रहे थे। चलती-चलती वह कभी पीछे भी ताक लेती—शायद दादी दिखजाए आती कहीं? वध-स्थल पर लेजाए जाते बकरे की तरह वह सशंकित थी। सोच रही थी, वे क्या करेगे मेरा, पीटेगे? पर पीटेगे बिना लिए ही क्यो? बींटी मैंने देखी भी तो नहीं? पूछे भले ही—एक बार नहीं सौ बार। फिर भी पीटेगे तो मैं क्या करलूगी—सिवा रोने के? दादी आ रही है—पीछे-पीछे, पर कर वह भी क्या लेगी? उसके पास कौनसी ढाल-तलवार है, गिडगिडा भले ही लो, इससे क्या होगा?' ऊहापोह के इस चक्रव्यूह मे व्यथा उसकी निकास का मार्ग कहीं भी ढूढ नहीं पारही थी। वह चौधरी के घर के बाहर, चबूतरे से सटकर, खडी होगई। बेचैनी उसकी बढ रही थी। थोडी ही देर मे, दादी भी आगई भाई को लिए। जी उसका कुछ जमा।

चौधरी भोजन पर बैठा था। पाँच-सात कौर और लेने थे उसे। आध-पौन घटा बाद शहर का रास्ता भी तो पकडना है उसे। जल्दी मे दो-कौर लिए उसने—शेष जूठन मे छोड कुल्ला कर बाहर आगया।

आँगन मे उसका भतीजा आया हुआ बैठा था। शहर के किसी थाने मे हवलदार है वह।

'क्यो हवलदार?' चौधरी ने कहा।

'तैयार हूँ मैं तो।'

और तभी चौधरी के पोते ने आकर कहा, 'बाहर पूरी खडी है दादाजी।'

'और कौन है साथ मे?'

'दादी है उसकी—पोते को लिए।'

'कहदे, पिछवाडे मे बैठे, आ रहा हूँ मैं।'

चौधरन और नई बहू की उत्सुकता बढ गई, 'देखे क्या होता है?' वे भी छप्पर मे जा, एक दीवार से सटकर खडी होगईं।

अधेरा उतर चुका था। पक्षी घोसलो मे मौन थे और चाँद अपने को हल्के-पतले और मटमैले बादली टुकडो से ढकता-नगा होता, उदास ही लग रहा था। चौधरी और हवलदार पिछवाडे मे पहुँच गए। छोरी का कलेजा धक्-धक् कर रहा था। डोकरी भी पल-पल सूख ही रही थी। ग्यारसी ऊँघने लगा था। डोकरी ने अपनी पालथी पर लिटा लिया उसे, सोगया वह।

चौधरी पास पडी एक बिना भुजावाली कुर्सी पर आ बैठा। हवलदार ने भी पास पड़े एक स्टूल को अपनी ओर खींच लिया।

चौधरी ने कहा, 'गगी इस घर से सम्बन्ध तेरा आज का नहीं है?'

'ठीक कहते हैं माई-बाप।'

'सम्बन्ध तोडेगी या रखेगी?'

'अब माई-बाप कितीक रात, किताक भोर, तोडूगी क्यो?'

'मुझे भरोसा है, नहीं तोडेगी तू, तो सुन फिर।'

'फरमावो माई-बाप?'

'छोटी बहू के बाद, आज और कल सुबह-सुबह, पिछवाडे मे सबसे पहले, पूरी ही आई है, यह तो मानती है तू?'

'माई-बाप आती तो यह सुबह-सुबह ही है।'

'दस-बारह बट्ठल गोबर भी इसीने उठाया है?'

'हाँ माई-बाप।'

'आँखे बन्द करके तो नहीं उठाया?'

'नहीं।'

'पाया भी इसी ने है?'

'हाँ।'

'बींटी रेत का कण तो थी नहीं, जिस पर नजर ही नहीं पडती हो? हीरा है उसमे अधेरे मे भी चमक देनेवाला। बींटी छोरी के हाथ लगगई? छोरी तो छोरी ही, इतनी समझ तो है नहीं कि मिलने पर घर मे दे-दे। सोच लिया,चोरी तो की नहीं, रेत मे मिली है। सस्ती-महगी का ज्ञान भी इसे है नहीं। टाबर सुभाव से इसके तो यह चित चढ गई, घर लेगई या यहीं कहीं छिपादी क्या कह सकता हूँ? पूछ-पाछ के तू दिलादे, हमारी तो चिन्ता मिटे और तेरी गाँव मे साख बनी रहे, दूध और दुहारी दोनो बसते रहजाय। दस-बीस रूपए की बींटी, उसी नकल की मैं और दिलादूगा उसे। तू लाना चाहे तो तू ले-आ, रूपए अभी देदू।'

'माँ-बाप, आपके बिना कहे ही मैंने इसे सब तरह से ऊँचा-नीचा ले लिया। इस बेचारी ने तो बींटी का चेहरा भी नहीं देखा।' उसने हाथ अपने कोहनियो तक जोडते हुए कहा।

देख मुझे चरा मत, ये बाल मैंने धूप मे सफेद नहीं किए? आपे पर आने के बाद मैं न गुर का न पीर का, तैरती-डूबती नहीं देखता? हम तो गैर वहम मे भी कुछ कर सकते हैं और अपने अन्दाज पर भी बहुत कुछ गढ सकते हैं, लेकिन भोपे ने अपने आप ना किसी लाग-लपेट के कह दिया कि एक लडकी दिखती है मुझे चुन्नी पहने सावले की बारह-तेरह साल के अनुमान और कद-काठी मे दुबली-पतली बींटी उसी के पास चली है।'

और डुबोएगी अगला घर भी, पर भोपे को बींटी छुपाई हुई जगह, एक ना एक ढूंढे
बडा पुन मिलेगा आपको लछमी आपकी चौगुनी बढेगी।

बेकार की वकालात तो कर मत मुझे जाना है गढर भोपे को जितना मालूम तो सका,बता दिया उसने, आगे उसके वश की बात न हो तो कैसे बताएगा वह?

हवलदार ने कहा, 'चाचा देर होरही है बेसिर-पैर की जिरह मे चाहे मत उलझे पल्ले तो कुछ पडेगा नहीं? सीधी उगली घी आज तक भी निकला है कभी? ऐसे [illegible] का इलाज करना मुझे आता है, यही तो करता हू रात-दिन?'

चौधरी ने कहा,'छोरी इधर आ तो?'

पूरी उठी, पास आकर खडी होगई। पैर उसके काँपने लगे हृदय की धडकन उसकी कौन देखता, कौन सुनता, जहाँ आँख-कान ही न हो?

उसने कहा, 'छोरी बींटी देदे, मैं तुझे उससे बढिया मगा दूगा, इनाम और दूगा।'

'बींटी मैंने ली ही नहीं,' उसके होठो पर धीमे से फूटा।

'फिर, मैं पीटूगा सोचले।'

'बाबोसा, बींटी मैंने देखी ही नहीं।'

और इसी के साथ एक खूब करारा थप्पड छोरी के दाएँ गाल पर पडा चीखती छोरी नीचे गिर पडी।

चीख हवा पर तैर उठी।

डोकरी के होठो पर बरबस उछल उठा, 'माई-बाप, कीडी को मत छींको भगवान देखता है।'

उधर चौधरन ने नई बहू को कहा, 'हाँ, अब आटे-दाल का भाव मालूम पडेगा इसे? लातो का देव बातो से कब माने, मैंने थोडा समझाया था इसे?'

बींटी की जड ममता ने जीवनदायी करूणा-स्रोत उनका सुखो दिया था। हवलदार ने कहा, 'भगवान की बच्ची, भगवान हमे तो देखता है, और तुझे नहीं? तू एक बार सरक यहाँ से।'

'इसकी जान लेगे आप?'

'हाँ, लेगे।'

'बींटी आजाएगी फिर तो?'

'हाँ आजाएगी, पर तूने अबकी बार चू-चप्पर की तो चन्द्रमा अपना सोच लेना।'

'तो पीटो ही नहीं मारदो इसे, बींटी मिलजानी चाहिए आपकी, राजी हूँ मैं–मारदो, मारदो।'

'तू रहने दे, ये चरित करने को, ऐसे फरेब मैं रोज देखता हूँ।'

चौधरी ने कहा, 'गगी जान से कोई नहीं मारेगा, पर तू एक बार तिबारी के पास बाहर बैठ।'

भरी आँखे और भरी छाती, ग्यारसी को गोद मे उठाती चलदी वह। पैर सम्हल-सम्हल कर उठा रही थी, लगता या कहीं गिर न पडू। फिर भी जैसे-तैसे वह तिबारी के चबूतरे

पर आ बैठी। उसने ऊपर देखा, मन्द-मन्द टिमटिमाते असख्य तारो को, उदासी मे ढकते चाँद को, नीचे धरती को और सामने गाँव को। पर अपने को उसने कहीं नहीं देखा, मानस उसका सूना था, आँखो के फलक पर ब्रह्माण्ड तो था पर अपना पिंड नहीं।

'क्या हो रहा है यह? थाना और कचहरी ये ही हैं? हाँ ये ही। जीवन और मौत पर इन्हीं का कब्जा है, ये चाहे तो किसी को छोडदें-चाहें तो मारदे?' इससे आगे वह कुछ भी नहीं सोच पा रही थी।

हवलदार के पास एक बेत थी—करीब एक मीटर लम्बी। उसने छोरी को खडा किया। पैर उसके काँपने लगे—अलगनी पर सूखते कपडो को हवा जैसे हिला रही हो।

'अब भी बतादे, सही-सही, ली या नहीं?' हवलदार ने कहा।

'मैं——ने——दे——खी——ही——नहीं,' उसने आँसू गिराते-बसबसाते हुए बहुत धीरे-धीरे कह दिया।

'बदजात है तू, ऐसे नहीं बताएगी, देखता हूँ कब तक नहीं बताती है?'

उसने पास से एक मटमैला-सा चिथडा उठाया, झडकाया भी नहीं उसे, फिर उसे गोल करता बोला, 'छोरी बतादे तो अब भी बच सकती है मार से, नहीं तो यह तेरे मुँह मे ठूस कर बेत फटकारूगा—बोल?'

छोरी ने तो जो उत्तर पहले दिया था, वही फिर दे दिया रोते-रोते।

गोल किया हुआ चिथडा छोरी के मुँह मे ठूस दिया हवलदार ने। पेट के बल लिटा उसे, हाथ उसके पीछे की ओर कर, बाध दिए और आव देखा न ताव दो बेत करारे से पटकार दिए उसने—एक पीठ पर और एक उसके नितम्बो पर। बेत के आकार उसकी चमडी पर तुरत उठगए—दो जगह। चड्डी उसकी गीली होगई और चेतना गुमशुम। देह उसकी तडफडाई हाथ-पैर सिमटे-फैले, पर चीख न फूटी, न फैली। कठो तक उठ-उठ, पानी के बुदबुदो की तरह खुद के पानी मे ही बैठती रही। भय और पीडा ने उसे ढक लिया।

चौधरन और बहू के कान सुनने को बडे उतावले हो रहे थे कि मुँह से चिथडा निकलते ही छोरी के होठो पर अब तो 'हाँ' ही उछलेगा। मानवी कोना उनका अब भी वृष्टिछाया प्रदेश की तरह बजर और वीरान, करुणा से अछूता ही था।

चौधरी के मानस पर कुछ वितृष्णा रेग आई।

उसने कहा, 'हवलदार जाने दे एक बार, छोरी मर न जाए कहीं?'

'अरे क्या कह रहे हैं आप हम तो बिजली के झटके लगा-लगा कर पीटते हैं तब भी कुछ नहीं निकलता, निखट्टू-गरीबों का—बदमाशों का? चिन्ता ही मत करो—आबादी बढ रही है नाली के मच्छरो की तरह। सरकार भी परेशान है शिविर लगाते-लगाते थक रही है। खानो-कारखानो दुर्घटनाओं बाढ-भूकम्पो और विस्फोटो मे आए दिन हजारों मरते हैं तब भी कतार दिन-दिन लम्बी ही होती है। एक बूंद निकल गई तो सागर सूखेगा नहीं- बेफिकर रहें।'

अरे जानने को हम जाने कि ये [illegible]

दाव नहीं?'

हवलदार ने हाथ उसके खोल दिए [illegible] मुँह से निकल [illegible]
छोरी?'

वह बोल नहीं पाई। होठ बन्द थे [illegible] आँखें [illegible]।

खडी हो जा सुनती नहीं?' हवलदार ने फिर [illegible]।

वह वैसे ही पडी रही।

हवलदार, छोरी कहीं विदा तो नहीं होगई—नाडी तो टटोलो? चौधरी ने [illegible]।

विदा तो नहीं हुई [illegible] जरूर है [illegible] नाडी टटोलते हवलदार ने [illegible]
दिया।

'छोडदे एक बार फिर देखेंगे।'

ग्यारसी सोया था सिर उसका डोकरी की जाघ पर था और [illegible] की
फर्श पर। डोकरी को एक-एक पल पहाड लग रहा था।

चौधरन और नई बहू वहा से निकल, घर मे चली गई। घर मे [illegible] चौधरन ने [illegible]
को कहा, 'छोरी मार खाने मे कितनी [illegible] है इतनी यातना देने पर भी उसके होठो
पर हाँ उठता मुझे तो कहीं भी लगा नहीं।'

बहू ने पास बैठी ननद के माध्यम से कहा 'तो कल-परसो [illegible] फिर मारेंगे [illegible]
तरह?'

'कुछ न कुछ तो करेगे ही पर मुझे तो अचम्भा होरहा है [illegible] छोटी-सी उम्र
मे-कितनी बुरी आदत पकडली है इसने? लम्बा जीवन कैसे लेगी यह?' बाते [illegible]
तरह विस्तार पकडती रहीं।

चौधरी और हवलदार उठकर बाहर आगए।

हवलदार ने, गगी से कहा, 'गगी ले आ छोरी को।'

चलते-चलते चौधरी ने भी कहा, 'गगी अभी तक तो घर की बात घर मे ही है, समझा
उसे देखले बींटी तो हम किसी भी सूरत मे छोडेगे नहीं?'

'मत छोडना माई-बाप बींटी नहीं तो पाण ही सही—छोडना मत।' उसके होठो से
हठात् निकल ही गया।

चौधरी भी कुछ कहता पर परिस्थितिवश रूक गया वह।

गगी पिछवाडे मे पहुँची। पूरी पडी हुई थी। उसका बेहाल देख वह अचिन्त्य पीडा मे
डूब गई। मरी तो नहीं पर पाण उसके निकलने को छटपटा उठे।

'रामजी यह क्या देख रही हूँ,' यह सोचती मिनटभर वह अवाक् और चित्रवत खडी
रही। फिर बैठ गई।

उसका सिर सहलाते हुए, फटी आवाज उसके होठो पर रेगी, ' पूरी?'

साँस तो उसके जैसे-तैसे चल रहे थे पर होंठ और नेत्र थे बिल्कुल बन्द।

डोकरी काँप गई सोचा,'यह तो घडी-दो घडी की मेहमान और लगती है।'

आँखो पर उसके भँवर उतरने लगे और प्राणो पर नाच उठे यमदूत। उसे लगा इससे

पहले मैं न चली जाऊँ? डरी हुई और काँपती वह, उसका सिर सहलाते-पुचकारते हुए बोली, 'पूरी, बोलेगी नहीं बेटी? दादी की तरफ कुछ तो देख बेटी!'

आवाज उसकी शून्य मे डूब गई, पर पूरी पर कोई असर न हुआ उसका।

डोकरी ने धीरज नहीं खोया। वह उसकी छाती और उसके सिर पर हाथ वैसे ही फिराती रही, केवल इसी आशा मे कि कैसे भी यह होठ खोलदे एक बार। दो-चार मिनट बाद उसने फिर कहा, 'पूरी?'

'हाँ,' एक झीनी और काँपती आवाज उसके कानो से आ लगी। आशा सजीव होती लगी उसे।

'उठेगी नहीं बेटी, घर चले,' उसने कहा—करूणा मे डूबते।

छोरी आँखे खोलती डर रही थी कि सामने वे दोनो दैत्य तो नहीं खडे हैं कहीं? डोकरी का मन भी रह-रह यही कह रहा था कि उन शैतानो का भय अब भी इसकी चेतना पर खडा हुआ है—उनकी देह से भी ज्यादा चौडा।

उसने कहा, 'आँखे खोल बेटी, मेरे सिवा यहाँ और कोई नहीं,।'

पूरी ने आँखे खोली, सचमुच दादी के सिवा वहाँ और कोई नहीं था। वह दादी के सामने अपलक देखती रही। डोकरी का लडखडाता धीरज कुछ स्थिर होगया।

'बेटी घर चले, तूने कुछ नहीं खाया, भाई भी भूखा है, और मेरी आँते भी बैठ रही हैं—भूख के मारे, चल उठ,' डोकरी ने बडे मिठास और याचक भाव से कहा उसे।

वह लडखडाती-सी उठी, चलने को हुई, जमीन घूमती लगी उसे। सिर पकड कर बैठ गई वह।

डोकरी ने सुझाया, 'भूखी है बेटी, आते समय पानी का एक घूट भी तो नहीं उतारा गले, सिर चकरा रहा होगा, ले मेरा कन्धा पकडले, चल धीरे-धीरे।'

दादी का कन्धा पकडे कदम धीरे-धीरे रखती, वह बाहर आगई।

पूरी को बाहर एक किनारे बिठा वह वापिस चबूतरे पर आई, जहा ग्यारसी सोया था। परली तरफ निवार के एक ढोलिये पर चौधरी और हवलदार आपस मे फुसफुसा रहे थे।

चौधरी ने कहा 'देख गंगी, अब भी समय है, समझ से काम ले, डोर हाथ से निकल जाने पर हम कुछ न कर सकेंगे, थानेवाले ही करेंगे फिर तो। तकलीफ तुम्हारी बढ जाएगी—इसी लिए कह रहा हूँ मैं बार-बार तुम्हे?'

'दटी दया कर रहे हैं मेरे पर मॉ-बाप हैं इसलिए, पर छोरी को इस तरह मारा है आपने पशु को भी नहीं मारा जाता ऐसे तो? मारना ही था तो, इस तरह अधमरी करके ही क्यो छोडदी उसे—मार ही डालते? रोम-रोम की आग से पिंड छूटता उसका? यहा उसे न पेटभर रोटी न कपडा ही पूरा? नींद भी पूरी नहीं उसके करम मे तो? मार देते तो भला हो जाता उसका? मेरे तो इतना टका ही बस म नहीं? मैं तो कहती हूँ—माई-बाप आप समरथ हो हम तीनो को ही मारदो पर छोरी आपकी छिन जानी चाहिए?'

हवलदार ने कहा 'इतनी चट-चट मत बोल चल तो कुछ नहीं होगा उसकी गत तो तेरी छाने से होगी—और तू चाहती भी यही है।'

'नाश जाए तेरा, इससे बेसी तो गाली नहीं मौत ही तो होगी वहाँ, दो दिन बाद नहीं दो दिन पहले ही सही अभी मारदो मना कौन करता है, हमारे पास न कोई हथियार और न हमारा कोई बेली ही यहाँ, पर बात बींटी मिले तब है?'

चौधरी ने हाथ अपना, सिर पर फिराते कहा, 'तुम्हे देखकर दया आती है गगी पर काम क्या आए तू समझती ही तो नहीं?'

'समझती क्यो नहीं, आप दया के सागर हैं, दया सारी मेरे लिए ही रख छोडी है माँ-बाप यह मुचे ही देना, आपकी बेल बढे।'

हवलदार कुछ आवेश मे आकर बोला, 'जीभ कुछ ज्यादा निकल रही है तेरी? ध्यान है, सवाल-जवाब किससे कर रही है?'

'ध्यान है होलदारजी मेरी जीभ से ही डर है तो खींचलो। अब न जीभ का मोह है और न जीने का निकाल लो-निकाल लो। न आपको कोई रोकनेवाला-और न मुने कोई छुडानेवाला-निकाल लो।'

चौधरी ने सोचा, 'डोकरी का माथा इस समय गरम हो रहा है, कहे मे नहीं, न इसे बोलने की सुध-बुध और न रोग इसके वश का, बेकार मे बखेडा बढाने से क्या लाभ, बिदा करो इसे।'

उसने कहा 'अच्छा गगी, बात फिर करेगे तसल्ली से, अभी तो तू जा।'

पूरी को कन्धा पकडाए वह धीरे-धीरे चलदी।

हवलदार ने कहा, 'चाचा अब तो शहर क्या चले, सोएँ?'

'हाँ, यही मैं सोच रहा हूँ।'

वे अपनी-अपनी खाट पर पसरगए।

रास्ते मे गगी को इक्का-दुक्का कई मिले।

एक ने पूछा, 'दादी इस तरह कैसे-पूरी को कन्धा पकडाए?'

'चक्कर आ रहे हैं इसे।'

'क्या हुआ?'

'बींटी निगल गई यह।'

ऐसे कैसे?'

'पूछ मत, जाने दे हमे।'

'आ कहाँ से रही हो?'

'नरक से।'

'वहाँ क्यो गई थी?'

'अपने बडको को खोजने।'

तभी एक और आगया,बोला, 'बुआ आज उलटा कैसे बोल रही हो?'

'अरे गाँव, जगल से ढक रहा है, गरीब की तो चीख भी कोई नहीं सुनता? चीख पर भी कब्जा? मुँह मे चियडा ठूसकर कैद करदी चीख को- हवा भी तो क्यो सुनले? अरे, भूखी कुतिया बींटी का क्या करेगी? उसे तो ठढा-बासी दो अगुल टुकडा चाहिए? वह न

दे सको तो बेत तो मत मारो उनके। मारलो, बेत के मालिक हो तुम यह सारी धरती तुम्हारे लिए ही है, पता नहीं रामजी ने हमे क्यो धकेल दिया इधर?'

बडबडाती और उतेजित होती, वह चल रही थी धीरे-धीरे।

एक ने कहा, 'आज यह सिरफिरी-सी कैसे बोल रही है?'

दूसरे ने समझाया, 'बहू, बेटा, पोता सभी तो चलबसे, गाडी बेचारी की पटरी उतर रही है।'

बोल डोकरी के कानो पर भी आ लगे। चलती-चलती, अध-मिनट रूक गई वह, बोली 'हाँ भाई ठीक कहते हो, पगली कहो, चोरटी और भिखारन कहो पर हाथी को जुलमी मत कहना, ऊँट किसी की खेती ही चोपट करदे तो भी, उसकी आरती ही उतारना। सिर बेत मारनेवाले का नहीं बेत खानेवाले का ही फिरेगा? तुम भी साथ बेत मारनेवाले का ही दोगे। यहाँ बसना है तो देना ही होगा—दो, जरूर दो।'

और चलदी वह।

एक के आँसू गिर रहे थे धरती पर, दूसरी का आक्रोश बिखर रहा था हवा मे। आग दोनो मे थी पर थी बेबसी की राख से ढकी हुई।

हकीकत छिपी कब तक रहती? चर्चा जगल की आग की तरह अधिकाश गाँव मे फैल गई- सोकर उठने से पहले-पहले।

डोकरी घर आगई। भूख-प्यास मन की बुझी हुई थी। खिचडी की हाडी जहाँ थी वहीं पडी थी। पूरी अपनी खटिया पर निढाल पड गई, बेसहारा बेल की तरह। भाई भूखा था। नींद गिरी थी इसलिए सोया रहा बहन के साथ।

एक बार तो डोकरी ने सोचा, 'खिचडी हाडी के पेन्दे पर कहीं लग तो नहीं गई, देखू तो सही?' फिर सोचा 'भाड मे जाए खिचडी शरीर का सत तो पडे-पडे ही निकल रहा है।' उसने भी खटिया अपनी पकडली।

हृदय उसका दहक रहा था, आवे की तरह। तन्तु सारे उत्तेजक थे। मगज उसे उछलते अगारे की तरह लग रहा था। पाँच-सात मिनट बाद ही ध्यान आया उसे 'छोरी दिनभर की भूखी-प्यासी है—जल्लादो से सताई हुई और। आँते उसकी रो-रो थक गई होगी तन्तु सूख रहा होगा।' वत्सलता उसकी मचल उठी। वह उठती हुई, बोली, 'पूरी?'

'जी ही नहीं करता।'

'भूखी को नींद कैसे आएगी?

'न सही।'

'नहीं खाएगी?'

'नहीं।'

'तो मैं भी टाल करती हूँ।'

'तू तो खा-ले दादी।'

'तू नहीं और मैं? जाने दे फिर।'

पूरी के विचार आया, 'दादी भूखी रहेगी, सुबह भी ऐसा ही खाया था, बूटी है, भूखी रात कैसे काटेगी? मेरे पीछे खाने की टाल करती है,' स्नेहाभिभूत सम्वेदना के तार उसके भी झनझना उठे। अपनी इच्छा पर उपेक्षा की धूल डाल, उसने कहा, 'दादी परोस ले फिर दो कौर तेरे साथ मैं भी ले लूगी।'

'हाँ बेटी, फिर पानी भी मीठा लगेगा, आँखो पर कुछ नींद भी आ उतरेगी।'

डोकरी को कुछ सन्तोष हुआ। वह उठने लगी कि किवाडी के पास से आवाज आई, 'बुआ, सो गई?'

'कौन जमनी?'

'हाँ।'

'आ।'

डोकरी के मन मे आया खिचडी और कौर के बीच पता नहीं फासला अभी कितना लम्बा और है? पहर से अधिक होगया- खिचडी पके, मजाल है होठ दाग भी छूले?

'बुआ आज यह क्या बखेडा सुन रही हूँ?'

'कैसे समझाऊँ, तकदीर ही दरारो से भरा है, इस जीने से तो मरना अच्छा, पर छूटने का कोई उपाय भी तो नहीं?'

'इतना दुख मत कर बुआ, सकट तो राजा हरिचन्द पर भी आया था।'

'आया था जमनी, पर एक ही बार, यहाँ तो तीसू रोज सकट सिर छोडता ही नहीं।'

दो-चार मिनट की होठिया-हमदर्दी झाड, वह चली गई।

डोकरी खिचडी लिए, पूरी के पास पहुँची, कहने लगी, उतर मत खटिया पर ही ले ले।'

'नहीं दादी, पाए का सहारा लेकर बैठ लूगी किसी तरह, भाई को जगाऊँ?'

'नींद मत तोड, रोएगा फिर।'

'तू?'

'मैं दो कौर बाद मे ही ले लूगी।'

'नहीं, साथ ही बैठ।'

एक तरफ डोकरी बैठ गई। पूरी सीधा नहीं बैठ पा रही थी। कमर पर दर्द उसका बढ रहा था । कुछ कौर उसने झुके-झुके ही लिए, पानी पी, फिर वैसे ही आ लेटी।

हडिया डलिया ठिकाने लगा डोकरी उसके पास आ बैठी, पूछा, 'बेटी, उस राक्षस ने भी थप्पड मारे होगे?'

'नहीं।'

'तो?'

'बैंत मारे।'

'बहुत?'

'नहीं दो।'

'जोर से?'

'पूछ मत दादी।'

'कहाँ?'

'पीछे।'

'और?'

'एक चियडा ठूस दिया मुँह मे।'

'और?'

'औंधा, लिटा दिया।'

'और?'

'हाथ बाध दिए पीछे की तरफ।'

किसी पतली परत को भेदते पर्वतीय-स्रोत की तरह डोकरी के होठो पर सवेग फूट निकला, 'अरे कसाई अरे धिरतराष्टर, इस गरीब गाय को क्यो सताया? कौन-सा खेत उजाड दिया तेरा?' उसका हाथ तुरत पूरी की पीठ पर होता नितम्ब तक चला गया। हाथ ज्यो-ज्यो बेत से उभरी चमडी पर फिरता गया, उसकी चेतना पर व्यथा का भार चढता गया और आक्रोश उसका किनारो से ऊपर बहने लगा। उसने कहा, 'बेटी, इस आँच मे क्या सोएगी तू, गरम पानी से सेक करदू कुछ?'

'कुछ मत कर दादी, हाथ हटाले, पीडा होरही है।'

'सेक धीरे-धीरे करदू बेटी, नीद आजाएगी?'

'कहदे पर कमर के हाथ न लगा दादी।'

'नहीं लगाऊँगी बेटी, सुन फिर–मेरे गाँव मे एक ठाकुर था कभी, पाँच गाँवो का ताजीमदार। दाहिने पैर मे सोने का कडा रखता था–हरदम। बडे राजा ने [illegible] था उसे। उसकी कँवरी का विवाह था। औरतो की भीड-भाड मे ठकुरानी के गले का कोई कीमती गहना गुम होगया। रावला के जनानखाने मे औरते ही थीं। दो-चार दरोगिनियो से पूछताछ की। एक-दो नाइनो को धीरज से पूछा, उन्हे कुछ इनाम का लोभ भी दिया पर पार नहीं पडी, सुनती हो न?'

'सुनती हूँ दादी।'

'एक नाइन और दरोगिन की पिटाई हुई, काम तब भी बना नहीं। ठाकुर की एक बहिन आई हुई थी। विधवा थी। गरीबनी ही थी लाई-खाई करनेवाली। बडी सीधी और सच्ची। उसके खिलाफ किसी ने ठकुरानी के कान खूब हिला-हिलाकर भरदिए थे। ठाकुर का कोप उसपर भी उतरा। बडी खिचाई करवाई उसकी। बहन बेचारी अन्दर ही अन्दर रो-रो, बसबसाकर रह गई, क्या करती? भाई ने तो उधर ताका भी नहीं। भौजाई के मन की होगई! ठाकुर की आसपास निन्दा खूब हुई, हुई तो होवे बेटी, उसने तो कानो मे तेल ही डाल लिया। उलटा यह और कहता कि निन्दा तो पीठ पीछे राज राम की भी होती थी। बहन तो अपने घर गई बेटी, पर मन उसका भीतर से इतना टूटा कि फिर वह भाई के साथ तो जीवनभर ही नहीं जुडा। वह ठाकुर के बडे कँवर के मरने पर भी भाई के घर तक बतलावन करने भी नहीं आई।'

'गहने का फिर क्या हुआ दादी?'

'गहना बेटी, ठकुरानी उतावल मे कहीं बाएँ हाथ से रखकर बिसर गई। दस-बीस दिन बाद एक दिन किसी रजाई की तह मे दिया हुआ वह अचानक मिल गया।'

'फिर तो दादी, ठाकुर ने फालतू ही पीटा-पिटवाया सबको? बेचारी बहन को भी नहीं बख्शा?'

'बेटी, पैसे और पद का मद आदमी की आँखे छीन लेता है। अन्धा होजाता है वह। सुनती हो न?'

अब पूरी की पलको पर कुछ नींद उतरने लगी थी। होठ उसके उत्तर देने का सामर्थ्य खो रहे थे, तब भी पलभर को वे हिले, पर श्रोता-वक्ता की समझ के बाहर।

डोकरी उठी, और खटिया अपनी पकडली पर नींद कहाँ? मन ने एक नई ही घुड-दौड शुरू करदी।

चौदह

आधी रात थी। गाँव पर सन्नाटा गहरा रहा था। डोकरी ज्यो-ज्यो सोने का प्रयास करती नींद त्यो-त्यों उससे दूर भागती और मन का चर्खा उसका तर-तर तेज होता।

वह सोचती, 'सूरज निकला नहीं, मुहल्लेवाले उससे पहले ही चमकना शुरू कर देगे। कुल्ला भी बाद मे करेगे, पहले कृपा मेरे पर ही करेगे। दादी, काकी, या बुआ-बडिया, यह क्या हुआ? भीत की मोरनी हार निगल गई? ऊँट चढे को कूकर खा गया? साँच को आँच लग गई? सोने पर काट आ लगा? सवालो की बौछार शुरू कर देगे। जवाब किस-किस को दूगी,? कितना दूगी और कब तक देती रहूँगी? फिर उनमे से कई खास बने कहेगे, दादी और सब तो पडो भट्ठी मे, हमे चिन्ता नहीं, पर बुढापे मे आते तेरे मुँह पर कालिख पुत गई वह अब कैसे छूटे? हमे तो बस, यही चिन्ता खाए जारही है? ढाल पर उतरा पानी, अब वापिस चोटी कैसे चढे? जो चाहा कहेगे, किस-किस का मुँह पकडूगी और किस-किस से झगडूगी? बहू मरी, बेटा मरा, बहुत आए कई नहीं भी आए पर इस मौके तो बुखार मे पडा भी आएगा और आँसू नहीं निकलेगे तो आँखे मसल कर ही दो बून्द तो टपकाएगा–अपनेपन पर। औरते खसम बनकर आएँगी, और आदमी आएँगे थानेदार बनकर। धीरज देने नहीं, सुई चुभोने। एक तो छोरी के आँसू ही नहीं सूखे, तभी आ बैठी जैसे हमारे आने की बाट मे सूखी जारही थी।'

करवट बदली उसने, पर इससे न चर्चो की दौड ही बन्द हुई और न बदली उसकी दिशा ही। उसे लग रहा था, 'गाँव मे एक ही चर्चा चलेगी, पोती चोरटी और दादी साव अन्धी उसे झट गले लगा ली। छोरी की हिम्मत देखो, एक घर तो डाकिन भी टालती है वह परमुरजी से भी नहीं चूकी, पर उसका भी नाम परमुरा है, अपने घर की मिट्टी ही नहीं उडने देता तो बोटी पचाने देगा उसे। डोकरी का बुढापा बिगडना था बिगड गया। क्या अन्त है ऐसी चर्चाओ का? पर यह निश्चय है, गाँव मे छोरी को अब गोबर उठाने, पाथने और लीपने, कोई नहीं बुलाएगा। कौन उसे खेत-खलिहान मे पैर रखने देगा? मजूरी कल से ही बन्द और भूख सूरज उगते ही शुरू। काम करने के दिन अब लदे ही समझो।'

चौधरी की मार से भी चर्चा की मार ज्यादा दुख देनेवाली लगी उसे। इस पानी मरने से तो एक बार मे मरना अच्छा। भय, पीडा, निन्दा और अपमान, भूख-प्यास और अभाव से सदा के लिए छुटकारा मिल जाएगा। पाँच मिनट भी तो नहीं लगेगे। दो-दो मिनट मे छोरी-छोरे के गले छुरिए के नीचे दे अलग कर दूगी, और एक घाउ मे मेरा काम पूरा होगा। रोज फटी पीड मिटी न रहना और न दुख देगा।

छोरा भी मौत मे डूब जाएगा, एक साथ नहीं रुक-रुक पता नहीं कितनी देर मे? इससे तो अच्छा है पलो मे ही हम इस लम्बी पीडा से छुटकारा पा ले? अति ममता मे हत्या भी वरदान लगने लगी उसे।

उसने कई बार सुना है, अमुक गाँव मे एक औरत ने भूख और कगाली से तग आकर अपने दो बच्चो सहित कुएँ मे छलाग लगाकर जीवनलीला अपनी पूरी करली। अमुक औरत ने रोज की कलह से ऊबकर फाँसी खा ली। उसे याद आया कई बरस पहले इसी मुहल्ले मे भी तो बाबूडा की बहू ने आएदिन की मार से तग आकर शरीर पर किरासीन छिडक, आग लगाली थी। हम यहाँ कौनसे दूध के कुल्ले करते हैं? चुटकियो मे मरने के पीछे दुनियाँ क्या कहेगी किसी ने देखा है तो हम देखेंगे, किसीने सुना है तो हम सुनेंगे? रोज तिल-तिल घुलने से तो एक बार मे जलना अच्छा।' इन घटनाओ को याद कर उसका निश्चय और पक्का होगया।

मस्तिष्क की नाडिया उसकी अनावश्यक उत्तेजना के कारण तन रही थी। उन पर काल मडराने लगा। वह फुर्ती से उठी। चारोओर सकपकाई दृष्टि से ताकती वह पूरी की खटिया के पास आ खडी हुई। दीन-दुनिया से बेखबर बहन-भाई नींद मे नीचे तक डूबे थे। उसे यही चाहिए था। चोर को अन्धेरा मिल गया–मौज बन गई।

झोपडा खोला उसने। अन्धेरा उसमे काजल की तरह पसरा था और उसके सिर पर था मौत का भूत सवार। भूत और अन्धेरे का मेल आदि से है। कच्चे गच पर हाथ फिराती वह चूल्हे के पास जा पहुँची। चूल्हे के पीछे छुरिया रखा था। उसने उठा लिया उसे और तुरत बाहर आगई।

बेंट तो छुरिया के कभी का था ही नहीं। वह था एकदम दिगम्बर और धार थी उसकी ऐसी भोथरी कि आलू-प्याज भी वह आसानी से काट न सके। सोचा, 'गरदने इससे जल्दी-जल्दी कैसे कटेगी? उसे याद आया, गलियारे मे एक भीलवाडी भाठा पडा है। धार कुछ तेज करलू उसपर अध-मिट का काम है? पहले पूरी को फिर छोरे को और बाद मे अपने को,' मन में योजना बनाती वह भाठे के पास जा पहुँची। धार ज्यो हीं घिसने को हुई दूर सोई कुतिया कान फडफडा उठी। सन्नाटा टूटा और वह एकदम से चौंकी, हाथ उसका रुक गया। बडा अखरा उसे। मन पर उभरा, 'मौत खाए इसे, पहले कौर मे ही मक्खी? शकुन उलटा?' और तुरत बाद उसके तर्क ने नया रास्ता निकाल लिया, 'पागल हुई है, मरने मे भी शकुन-अशकुन देखे जाते हैं कभी? मन की कमजोरी है यह।' वह तुरत सम्भल गई।

धार ज्योही घिसने को हुई, पडोस मे होती छींक उसके कानो से सहसा टकराई, सहम गई वह। सोचा, 'रोग क्या है? सम्मुख छींक महा दुखदाई, छींक होने को भी समय अभी मिला है? जरूर कोई पेशाब करने उठा है, रगड सुन क्या पता मुँह वह इधर ही करले और पूछ बैठे, 'कौन है रे, क्या कर रहा है इतनी रात गए? गगी तू है क्या? तब? होठ खुलने भी मुश्किल हो जाएँगे।' वह फौरन चलदी, और एक बार फिर अपनी खटिया पर आ दुबकी। सोचा, 'कानी के व्याह में सौ जोखिम , मरने मे भी बाधा?' बोझिल हुई वह

अपनी पिंडलिया सहलाने लगी। इतनी देर मे उत्तेजना का अन्धा झोका पता नहीं कितनी दूर निकल गया? लोहा ठडा होगया, चोट खाने लायक रहा नहीं।

विचार आया, 'पिंडलिया जब भी दुखतीं, कमर सीधी नहीं होती और सिर कभी फटने लगता तो यह छोरी मुझे कितने चाव से दबाती–अपने रेश्म से नरम हाथो से। यह नहीं उठती, मैं ही कहती इसे, अब सो बेटी, तभी उठती यह। थकी-मादी देख मुझे, खाना-पीना अपना ताक मे रख मेरे पर गलने लगती। माँ-बाप इसके गए और यह जीती-जागती गिरवी जाते-जाते मुझे सौंप गए। मैं अभागिन ऐसी निकली कि उनके गले पर छुरी फेरने की उतावल मे हूँ? मेरे-सा गया-गुजरा इस धरती पर तो शायद ही कोई हो? यह जीवन इनको मेरा दिया हुआ तो नहीं, इन्हे मारने का हक मेरा कैसे होगया?' आत्मग्लानि के बढते बोझ से वह व्यथित हो उठी। दुस्साहस और दुष्कर्म पर ममता पसरने लगी। पलायन से उपजा उफान बैठने लगा।

प्रवाह बन्द नहीं हुआ, 'हमने पहले कभी किसी का कुछ न कुछ जरूर चुराया होगा, किसी निरदोस पर चोरी का झूठा इलजाम मढा होगा, बोया वह तो काटना ही पडेगा। मुरलीदादा कथा मे कहते नहीं कि राव हो चाहे रक, किया हुआ तो भोगना ही पडता है। अरे इतना तो अन्धा भी जानता है कि करन्ता सो भुगन्ता, खनन्ता सो पडन्ता, फिर क्या रह गया बाकी?'

अब ध्यान उसका ग्यारसी की ओर गया। 'अरे यह बालक, कल की-सी बात है, आधी रात, घर में ढिबरी तक नहीं। उस तपसिन ने क्या-क्या जुटाया, वही जानती है। अपने घर को ही नहीं, अपनी जाति-बिरादरी की ऊँचाई को भी नहीं, खुद को भी भूल गई थी वह। आधी रात तक गन्द और बदबू से जूझती रही। मौत के जबडो से नया जीवन निकाला उसने। पंडिताइन है, हम लोगो की छाया से भी परहेज रखता है उसका परवार–छोरे और उसकी माँ को वचाने के लिए अपनी नींद, अपनी पाठपूजा, अपना उपवास सब ताक मे रख दिए। जिसके लिए उसने बकरी बाधी, पालना लगाया और लगा दिया खिलौनो का ढेर। पदमा कितना ख्याल रखती है इसका, मौत के मुँह मे जाते को खींच लाई, आज भी दूध देती है इसे, यह आखिर क्या लगता है इन सबके? न जात मे न गोत मे? इससे वडा पाप और क्या होगा? हाँ, मैं अपनी हत्या कर सकती हूँ? जीभ का कसूर सिर को भी तो भुगतना पडता है? मार भी तो कई बार अचानक आ पडती –विना सोची, और निदा किसकी नहीं होती? दूध का धोया कौन है यहाँ? निदा पर तो कानून कोई वना नहीं आगे अब क्या बनेगा? मैं किस गिनती मे हूँ?' अपने मे अपने को वह देखने लगी। उसे कालिख कहीं नजर नहीं आई।

उसे याद आया, गज्जू की माँ ने कभी कहा था उसे, 'गगी, आत्महत्या सबसे बडा पाप है, पगडडी उसकी है खाडे की धार, लाश अपनी सिर पर लिए चलना पडता है उसपर----काजल से घने अन्धेरे मे।'

'अन्धेरे मे क्यो?' उसने पूछा था।

उत्तर था, 'गगी आत्महत्या हमेशा अन्धेरे मे ही की जाती है और अन्धेरा बाहर नहीं,

करनेवाले के भीतर होता है।'

भय उसका बढ गया। उसे याद आया 'एक दिन वह सिर पीडा से छटपटा रही थी दर्द के मारे आँखे भी नहीं खुल रही थी। उसे कुछ आराम अनुभव हुआ आँखे खोली उसने तो दयाबाई उसके सिर पर धीरे-धीरे कोई मल्हम मल रही थी, उसने हाथ रोकते कहा था, 'बाईसा यह आप क्या कर रही है? मेरे पर पहाड नहीं चढा रही?'

'गगी, मैं दूसरे का कहा तो कभी टाल भी सकती हूँ पर अपना कहा अपने लिए कैसे टालू?'

'मैं समझी नहीं' मैंने कहा था।

उनके होठो पर फूटा, 'यह मैं तुम्हारे लिए नहीं, अपने लिए कर रही हूँ। यह मेरा व्यौपार है, घाटे का नहीं पूरे लाभ का। सेवा में घाटा तो कभी होता ही नहीं और लाभ का कोई अन्दाज नहीं।'

मैं बोली नहीं थी, उनकी ओर कुछ देर खोई हुई-सी देखती रही थी पर समझ न सकी थी कि वह औरत है या इस रूप मे कोई देवी? मै उसकी छाया मे बरसो रही हूँ, उसकी सगति की है और जाते-जाते अब मैं, आत्महत्या की बदबू छोड जाऊँ यहाँ? अपनी लाश उठाए, खाडे की धार पर चल कैसे पाऊँगी?'

दयाबाई जैसे उसमे फिर से जी उठी हो। वह अपने आपसे डर गई।

'गाँव मे काम न मिलेगा तो न सही, अपग तो हम है नही, दो कोस कहीं आगे ही सही, रोटी तो खटने पर मिलेगी। यहाँ ऐसा कौनसा सोना बरसता है? टूटता-बिखरता झोपडा ही तो है? कुत्ते-बिल्ले कूदते हैं उसमे। इससे तो कोई टीबडा लाख गुना अच्छा।'

वह उठी और छुरिया उसने झोपडे के फूस मे ठूस दिया।

वह पूरी की खटिया के पास आई। भाई-बहन को सोये देखा। उनके चौखटों पर बहुत धीमे-धीमे अपना काँपता हाथ फिराया उसने। सारी चेतना उसकी वत्सलता से भर गई और आँखे भर गई आँसुओ से। वह खोई हुई-सी खडी रही, मन पर उसके उतरा, 'अहा रामजी, इस जैसी लडकी गाँव भर मे कहाँ? खटना जानती है, थकना नहीं, जूझना जानती है, मुँह फेरना नहीं, भूख निकालना मालूम है, पर उसके आगे पसरना नहीं, भाई पर लुटनेवाली, दादी पर मरनेवाली? मेरी लाडली, क्या दशा करदी—दुष्टो ने तेरी? तेरे लिए मैं प्राण दे दू तो भी सस्ते, पर करू क्या कोई उपाय भी तो नहीं सूझता?'

उसका हाथ गुदडी पर गया। एक जगह वह गीली-गीली लगी। वह समझ गई, आँसू डालती-डालती को नींद फिर गई है। देह दुखती होगी क्या करू? किनारा कहाँ खोजू? वह अपनी खटिया पर फिर आगई। नींद तो क्या आनी थी। एक-दो करवटे बदलीं—भोर हो गया।

सूरज निकले अध-घटा ही हुआ होगा, पंडिताइन आती दिखाई दी। डोकरी दो कदम सामने चलकर उसके आगे हाथ से गिरती लठिया की तरह रेत पर लम्बी होगई।

'उठ गगी, उठे बिना पार नहीं पडेगी'।

वह सायास उठती-उठती बोली, 'क्या उठू मालकिन, घुटने मेरे टूट गए ही

धुवा तो नहीं दिखता पर धुख रही हूँ, आग नहीं दिखती पर जल रही हूँ–पानी बचना मुश्किल है।'

'चल आँगन मे चल, धीरज से किस्सा सारा समझा मुझे, पागलो की तरह न कर।'

'मालकिन, तुम माँ हो, कुछ भी कहो, अब तक पालती रही हो, तुम्हारे बेटा-बेटी हैं हम। हमारी आदत, हमारे लच्छन, हमारा उठना-बैठना तुमसे कुछ भी तो नहीं छिपा?'

उसके आँसू भी उसकी वाणी का साथ दे रहे थे। होठ और हाथ उसके काँप रहे थे। रातभर नींद की झपकी भी वह ले नहीं पाई थी, देह वह मुश्किल से सम्हाल पा रही थी।

बेटा-बहू चले गए मालकिन, घोर दुख हुआ पर इस दुख ने तो उस पहाड को भी बित्तेभर का कर दिया?'

'ठीक है तेरा कहना, पर असलियत तो बता? वैसे उडता-पडता सुना तो कुछ मैंने भी है?'

आँगन मे एक तरफ आ बैठीं वे।

धीरे-धीरे व्यथा अपनी सारी उगलदी गगी ने।

पडिताइन ने कहा, 'पर इस तरह रोने-पीटने और घबराने से क्या होगा? कोयलो के होठ ही नहीं लगने दिए तो मुँह काला कैसे होजाएगा?'

'कोई करने पर ही तुला हो तो?'

'तो वह भोगेगा–तू चिन्ता क्या करती है?'

'इस समय तो हम ही भोग रहे हैं?'

'कभी-कभी, किसी बडे प्रयोजन की सिद्धि के लिए गगी, ऐसा भी होजाता है, उसके भावी अर्थ को हम पहले नहीं जान सकते और उसे जानने के लिए हमे उतावला होने की जरूरत भी नहीं। धीरज अपना है- अपनी गाँठ का है, उसे तो रख ही सकते हैं या चिन्ता कर-कर उसे भी आँसुओ की नाली मे फेंकदे?'

पूरी उठ तो गई थी, पर थी पाला मारी बेल की तरह। भाई को धो-पोछकर आँगन मे आ खडी हुई।

'बैठजा बेटी,' पडिताइन ने कहा।

बैठ गई वह। आँखे उसकी जमीन मे गडी थीं। चेहरे का रग उडा हुआ, भय और निराशा उसपर जमे थे। लगता था चाँद अब भी राहु की छाया से मुक्त नहीं हुआ है।

उसने उसके सिर पर हाथ रखते हुए पूछा, 'तुम्हे पीटा बेटी?'

पूछने के साथ ही, सीपियाँ उसकी बह उठीं। पडिताइन की आँखे उसके एक कपोल पर टिकीं, उस पर उगलियो के उभरे स्पष्ट निशान अब भी दृष्टा का ध्यान अपनी ओर खींच रहे थे। उसकी पीठ देखी उसने। बेत के निशान दो जगह ऊँचे आए हुए थे। वे किसी नराधम की क्रूरता बिना होठ खोले ही उजागर कर रहे थे। इस निश्छल-निरपराध, और गलते-पिघलते पिंड को देख, वह भी अपने आँसुओ को रोक न पाई–सजल हो उठी वह। सोच रही थी, 'अन्याय से उपजी आँच कितनी तेज होती है? ज्यों-ज्यो आँसू इसके बह रहे हैं त्यो-त्यो आग इसकी और तेज हो रही है।'

उसने अपनी आँखे भी पोछी, और उस रोती को भी समझा-बुझा रोका किसी तरह। पुचकारते बडे प्यार से पूछा उसे, 'बेटी, बींटी के बारे मे तुमने भी कुछ तो सुना ही होगा?'

अपनी सरल और करूणार्द्र चितवन पडिताइन के चेहरे पर रोपते उसने कहा—'दादीसा मैंने तो बींटी का चेहरा भी नहीं देखा, कब गुमी कहाँ गुमी मुझे इसके बारे मे कुछ भी पता नहीं?'

उसकी पीठ थपथपाते उसने कहा, 'बेटी, फिर तू डर ही मत खुली खेल तुझे अब कोई कुछ न कहेगा मैं सीधी चौधरन के यहीं जारही हूँ। बींटी उसकी मैं दूँगी तू जा पानी भर ला कुएँ से।'

वह चौधरन की ओर चलदी, और पूरी घडा लिए कुएँ की ओर।

पन्द्रह

पीढे पर बैठी चौधरन दही-बाटी का नाश्ता कर रही थी। तभी उसे पडिताइन दिखाई पडी। जल्दी से बाटका उसने पीढे के नीचे सरका दिया। पानी का घूट ले मुँह पोछा और सधकर बैठ गई।

चार आँखे होते ही, हाथ जोडती वह बोली, 'आओ गुरआइनजी, 'पाएलागू?'

'सुखी रहो—सुहाग लम्बा हो।'

'विराजो,' और वह पास पडे एक पीढे पर बैठ गई

सहज भाव से उसने पूछा, 'सुना है नई बहू की बींटी खो गई?'

'हाँ, खो गई, क्या बताऊँ, चिता खडी हो गई?'

'बडा बुरा हुआ, पर यह कैसे मालूम पडा तुम्हे कि पूरी ने ही ली है वह?'

'हमारा भी सोचना है और भोपे ने भी वही कहा जो हमने सोचा।'

'भोपे ने कहा है पूरी ने ली?'

'हमारे बिना कुछ कहे ही उसने पूरी का हूबहू हुलिया सामने रख दिया, बताने मे फिर क्या बचा?'

'भोपे की कही सारी मानली तुमने तो कुछ मेरी भी मानो।'

'कहदो।'

'यह छोरी मेरे घर चार-पाँच साल से आती है। गलियारा बुहारती है,ठान साफ करती है और गोबर पाथती है। एक बार नहीं, कई बार इसने मुझे छल्ला-बींटी, सिक्का और बटुवा तक ला-ला कर दिए हैं। तुम्हारी वह बींटी चुरालेगी?'

'चुराली है न?'

'चौधरन, भोपे ने एकदम अन्धेरे मे हाथ मारा है, बिना कुछ देखे और बिना कुछ सोचे -समझे—धूर्त है वह और मैं कह रही हूँ आँखो देखी और आजमाई हुई।'

'गुरआइनजी, बिवाई जिसके कभी फटी ही नहीं, वह क्या जाने पीर पराई? दुख-दरद उपदेस से नहीं मिटता?'

'तुम्हारी आँखो पर चौधरन, चश्मा इस समय घरू नहीं, उधार का चढा हुआ है, पर मैं तो तुम्हारी हितू होकर कह रही हूँ कि जिस गरीब सिगडी को तुमने अकारण उकेरा है, वह छोटी और गारे-गोबर की जरूर है, पर आँच उसकी आँसुओ से जलती है—बडी तेज है, तुम और इसका अन्दाज ही नहीं लगा सकतीं। न करे भगवान, तुम्हारी भरी-पूरी हरियाली पर उस आँच का असर हो कहीं? पर धन्धा तुमने घाटे का ही किया है?'

'आप उसकी उकील बन रही हैं तो यह भी बतादें, धन्धा यह कितने घाटे का है?'

'मैं तो इतना ही कह सकती हूँ कि पीडा के सौदे मे पल्ले पीडा ही पडेगी, असली आक तो तुम्हें भोपे के बहीखातो से ही मिलेगे, उसे ही पूछो।'

और वह चुपचाप चलदी।

चौधरन पीढे के नीचे से बाटका निकाल फिर खाने लगी।

पूरी कुएँ की ओर रवाना हुई। सिर पर भरे घडे लिए कुछ औरते सामने मिलीं। उसे देख वे रूक गईं।

एक ने कहा, 'छोरी यह क्या कर दिया तूने?'

पर पूरी न रूकी, न बोली।

दूसरी ने कहा, 'बोले क्या, चोर के होठो पर ताला नहीं पडजाता?'

तीसरी पीछे क्यो रहती, उसने भी कहा, 'चोर इसे कौन कहे, हरिचद की जाई को?'

प्रत्युत्तर मे एक जबान और उभरी, 'हरिचन्द की जाई का चेहरा ऐसा ही होता होगा?'

कुएँ पहुँच घड़ा भरने लगी वह। वहाँ कई और भी भर रही थीं। उस पर नजर पडते ही, सवाल फिर उछलने लगे, 'छोरी, परमुखजी की बींटी चुराली तूने?'

'मैने देखी ही नहीं,' न चाहते हुए भी होठ उसके खुल गए।

'देखी तो हमने नहीं, हमारा नाम तो कोई नहीं ले रहा? तुम कैसे कहती हो, मैंने देखी ही नहीं?'

दूसरी ने कहा, 'ली है तभी तो आरती हुई है तेरी?'

लगे-हाथ तीसरी बोली, 'पर याद रख उसका नाम भी परमुख है, छठी का खाया उगलवा देगा तेरा, दे-दिवाकर पीछा क्यो नहीं छुडाती?'

फिर इसी तरह अलग-अलग आवाजे हवा मे उछलीं। घडे भर गए पानी उनके ऊपर जह रहा है, पर आँखे किसी की उधर उठती ही नहीं, वे तो बाण छोडने मे लगी इस घायल और गरीब कपोती पर।

'छोरी, टाटियो के छाते से हाथ अपने अब भी हटाले?'

'अरे, वह मार-मार मूज बनादेगा तेरी? क्यो बिना बुलाई मौत को न्यौंतती है?'

दो नई और आगईं, एक ने कहा, 'डोकरी घर को ऊँचा नहीं उठा सकी पर यह छोरी जरूर उठाएगी।'

दूसरी बोली, 'अरे छोरी बडी होसियार है–आकास के तारे तोडनेवाली, अपने ब्याह का सामान अभी से जुटा रही है? बिदा मोटर मे बैठकर होगी।'

तभी एक कोई बूढी आगई, हृदय की साफ पर बोली की अक्खड, कहने लगी 'क्यो छोरी को घेर रखी है ए? थानेदारी लगाती हो बिना मतलब की--फैसला जाने तुम्हारे ही हाथो मे है सारा? टूटिया चल रही हैं, पानी बह रहा है, दूसरे भी तो घडे भरेंगे इसका भी ध्यान है कुछ?'

एक बार सब चुप होगई पर पूरी न किसी से उलझी और न किसी के आगे अपनी सफाई ही भुगताती रही। घडा लिये, घर आगई चुपचाप।

घर आकर उसने देखा, आगन मे मुहल्ले की औरतो का ताता लगा हुआ है। उसने सोचा, 'एक जमघट तो कुएँ पर छोडकर आई हूँ दूसरा उससे भी बडा यहाँ और तैयार है?' गगी रह-रह सबको समझाने मे लगी थी, पर वह भीड के गले उतर नहीं रहा था। पूरी और सकपका गई। भाई को लिए झोपडे के पीछे चली गई।

मुरलीदादा को मालूम हुआ कि, पडिताइन, सुबह-सुबह ही चौधरन को कुछ अट-सट सुना आई है। उन्होने उसे टोका, 'अरे भली आदमिन, पाठ-पूजा को तो बीच मे छोडा होगा, भागी सुबह-सुबह ही उलाहना बटोरने, कोई पूछे, चाहे मत पूछे, हूँ लाडे री भुआ, पराई पचायती मे पडने को कमर हरदम कसे ही रखती है? आखिर तेरी ऐसी कौनसी धरोहर गडी है उस चमारी के घर, समझ मे नहीं आता? मुझे तो केवल इतना बतादे कि तू गई क्यो थी वहाँ?'

'गई तो कोई पहाड ढह पडा?'

'पहाड की माँ, मेरी बात का जवाब दे पहले? आखिर उस चमारी की पीठ इतनी क्यो थपथपा रही है तू? उसके बदले मे, 'आ बैल मुझे मार' हरेक से उलझ लेती है? ऐसा क्या मोहिनी-मन्त्र है उसके पास, समझा तो सही मुझे?'

'उस जितनी नेक और उजली औरत गाँव मे मुझे तो और कोई दिखती ही नहीं? जिसका मन पवित्र है, उसके विश्वास की रक्षा करना हमारा धर्म है।'

'जूते तो उसके पड रहे है, सिर छिपाने को जगह उसे मिल नहीं रही है, तब भी तुम्हें तो उसका उजलापन ही दिख रहा है?'

'कुम्हार मे कुम्हारी को कहने की तो हिम्मत नहीं, गधे के कान ऐठता है वह? मुझे इतना कहते हैं तो उस चौधरी को क्यो नहीं कहते कुछ?'

'उसी की वींटी चोरी गई और उसी को कहूँ कुछ, अकल भाग खाई है मेरी?'

'वींटी छोरी ने ली है?'

'ले ली हो फिर?'

'नहीं ली हो फिर?'

'ली, नहीं ली वह जाने, हम इस फन्दे मे पडे ही क्यों? जानते-बूझते ढेला उछाल कर सिर पर ले ही क्यो? अपने और चौधरी के सात सुख, हमे तो आए साल कुछ न कुछ देता

ही है? किसी काम का कह दिया तो पैरो मे जूतिया ही नहीं डालता, तुरत चल पडता है, हम उसके लिए खारे तूम्बे तोडे ही क्यो? और ऐसा करके क्या बिगाड लोगी उसका तुम? मालूम है हाथ उसके कितने लम्बे हैं?'

'लम्बे हाथ गरीबो को उजाडने के लिए हैं?'

'उजाडने-बसाने की सारी चिन्ता तूने ही ओढ रखी है?'

'मैंने न सही, पर इस छोरी की जगह आपकी पोती होती तो?'

'तो मैं क्या करता, तू ही करती, बिना मतलब की बात करती है? चौधरी कल को थाने जाएगा, कचहरी के चक्कर काटेगा, तब गगी की तरफ से तू जाएगी?'

'मैं क्यो, आप जाएँगे।'

'मेरी बेटी का ब्याह बिगडता है—मैं जाऊँगा?'

'तो फिर मैं जाऊँगी, लेकिन बाद मे वाल्मीकि आपको नहीं पढने दूगी।'

'उससे तुम्हे अपने पर कोई गाज गिरने का भय है?'

'हाँ है, मेरे पर ही नहीं गाँव पर भी।'

है तो बतादे—छिपाने की जरूरत ही नहीं?'

'आप मुझे ही नहीं सारे गाँव को ढोल पीट-पीट कर सुनाते रहे है कि वाल्मीकि ने व्याध के बाण से छटपटाते क्रौंच को उठा कर गले लगा लिया तथा व्याकुल क्रौंची की हिरदै चीरती चीख सुनकर पीडा से भर गए थे वे। क्रौंच का बाण निकाल कर, वे उसे अपने आश्रम मे ले आए, और उसके उपचार मे जुट गए।'

'हाँ सुनाया है फिर?'

'कभी आचरण मे भी उतारा है उसे?'

उन्होने एक बार उसकी ओर पैनी दृष्टि से देखा फिर झाका अपने दर्पण मे अपना चेहरा। आज तक के आचरण फलक पर उन्हे कहीं भी ऐसा कोई उभार नजर नही आया जो महर्षि के अनुकरण की दिशा इगित करता हो। उन्हे उस ओर अधिक देखना रूचा नहीं। झट मुँह फेर लिया उससे उन्होने। अपना थूक कुछ सूखता-सा लगा उन्हे, तब भी होठ अपने खोले उन्होने, 'अरे कम-बेस कुछ न कुछ तो आचरण मे कभी उतारा ही है मैंने--उतना न सही?'

'हकीकत से हट रहे हैं आप। जीभ आपकी बोलने पर रही है—बरसाती मेढक की तरह, और आँखे रही हैं आपकी कथा के चढापे पर? क्रौंच-क्रौंची केवल पढा ही है आपने, देखा नहीं है, कहे तो दिखाऊँ?'

'दिखा, नहीं क्यो?'

'हिम्मत करेगे फिर तो उसे गले लगाने की? उसका उपचार करने की?'

वे उसकी ओर देखते, कुछ क्षणो के लिए अपने भीतर उतर गए।

उसने पूरी को घर से बुलवाया। वह पडितजी के सामने आ खडी हुई। अपनी प्रथम दृष्टि मे ही उन्होने उसके गाल पर उभरे उगलियो के निशान देखे। फिर पडिताइन के आग्रह पर दूर तक उसकी पीठ देखी। बेत के उभरे निशान नीली झाँई देती चमडी पर

अपनी मूक पीडा पकट कर रहे थे। उनके मानस पर दर्द ेग उठा।

पडिताइन ने कहा 'बेत के इन उभारो मे परमुखजी के भतीजे का चेहरा भी उभर रहा है-कहीं न कहीं। और इसके गाल पर उठी उगलिया परमु जी के ि छ ला परिचय दे रही हैं। आँखे इन दोनो मे ही गायब हैं, कान हैं पर हैं वे बहरे। ऐसे भूत चेहरो की कल्पना से ही जी मिचलाता है तो ताके कौन उनकी ओर?

वे बोले 'पीटा तो बडी बेरहमी से है–कानून को ताक मे रखकर। लगता है गना कचहरी तो उन्होने घर मे ही लगा लिए?'

देख नहीं रहे आप, चाँद से मुस्कराते चेहरे को तवे की पीठ नहीं ना दिया–उन निर्दय, नर पिशाचो ने? कहदे, कोई व्याध इसके पाणे से न खेला हो तो? टूटी कौडी-सी इसकी दादी रातभर आँसे टपकाती रही। उसके सूखते होठ, बुन्ती आँखे और भूखा पेट इसके चारोओर घूमते रहे। न उसके पैरो मे जान और न हाथो मे सत। एक की पीडा चोटी पर और दूसरी की बेचैनी आकाश को छूती। इनमे कम कौनसी आप ही बताे? छोरी कभी बेहोश, कभी आँखे कुछ खोलदीं तो कभी बन्द करलीं। होठ कभी हिल गए और कभी ताला लग गया उनके। रह-रह मौत उसे छू रही थी। मौत की नदी छोकरी के नाक से ऊपर आने की उतावल मे थी। चलबसती तो अचरज नहीं था। बच गई तो अचरज है।'

'इस हिसाब से तो एक-दो बेत और पड जाते छोरी पर तो शायद महा अनर्थ हो जाता?'

हो जाता तो हो जाता, बडे-कुत्ते का लाय मे क्या जलता? व्याधो के कान पर शिकार की चीख रेंगी है आज तक कभी? जरा सोचे आप, वाल्मीकि थे वन के ऋषि, जो ऐसे महा अनर्थ से पहले ही सम्हल गए थे, और आप हैं इस बस्ती के वाल्मीकि, आपका सम्हलना तो दूर पशुता के आगे होठ खोलते भी आप सकोच मे पड जाते हैं?'

'कैसे भला?'

'आप पमुख को दो टूक सुना नहीं सकते–छोरी के आचरण के बारे मे?'

'पराए जी की मैं कैसे कहूँ?'

'अपने जी की तो कह सकते हैं?'

'क्या?'

'आपको अच्छी तरह याद है कि इसने एक बार आपका बटुवा लाकर दिया था, ज्यो का त्यो?'

'दिया था याद है।'

'तो हाथ कगन को आरसी क्या? एक बार एक सिक्का और एक बार एक अगूठी मुझे भी दिए थे।'

'तू कहती है तो फिर दिए ही थे।'

'दिए थे तभी कहती हूँ? आप चौधरी के पास जाएँ, समझाएँ और पूरे जोर से कहे उसे कि इस छोरी के पास कभी भी वींटी मिली या इसके पास होने का पता लगा तो वींटी

की कीमत मे भरूगा–मुझे चाहे अपने गहने ही बेचने पडे? विश्वास न हो तो पक्के कागज पर लिखवाले मुझसे।'

वे उसकी ओर ताकने लगे, दुविधा मडरा उठी उन पर। पडिताइन समझ गई दुर्बलता उनकी।

उसने कहा, 'इतना क्या सोच रहे हैं, राज्य तो नहीं हार रहे? गहने तो मेरे पहनने के हैं, या आप भी पहनने की इच्छा रखते हैं उन्हे? बात पर जाएँगे तो दो गहने चले जाएँगे, चोर भी तो ले जा सकते हैं, मन छोटा क्यो कर रहे हैं इतना? रोग आपके वश का नहीं है तो मैं चलती हूँ?'

विवेक ने साथ दिया, उन्होने सोचा, बींटी छोरी ने ली ही नही तो कहने मे कौनसा आकाश गिरता है? यह इतना ही कहती है तो अब घोडे को मैदान मे उतार ही देना चाहिए, बोले, 'तू रहने दे, चलने को, मैं ही चला जाता हूँ।'

साफा उन्होने सिर पर रखा, बेत की गेडी हाथ मे ली और चौधरी के घर की ओर चल पडे।

उनकी पीठ ताकती वह प्रसन्नता से भर गई । ऐसी प्रसन्न तो वह उनके दूल्हा बनकर आने पर भी नहीं हुई थी। उसे लगा, उसके स्वामी मे आज सचमुच तमसा तट का तपस्वी जाग उठा है–किसी कौंची की असीम पीडा से पीडित होकर। वह करूणा के निर्मल जल से भरी-पुरी तमसा बनगई एक बार–स्वामी के पद प्रक्षालन करने को। घर उसका बनगया वाल्मीकि-आश्रम, शान्ति और अपूर्व सुगन्ध से भरा हुआ।

सोलह

चर्चा की गर्म हुवा चली तो ऐसी चली कि गाँव के हर चूल्हे-चौके तक जा पहुँची। शौच जाती भी दो मिल गई कहीं तो,पैर वहीं थाम दिए, और नहीं-नहीं करते दस-बीस मिनट तो थूक हवा मे उछाल ही दिया, पीछे घर मे चाहे उनके घी का घडा ही औंधा करदे कोई, उन्हे परवाह नहीं।

देख, बहन जमाना तू, जिस थाली मे खाए, उसी मे छेद करे? आदमी आखिर विश्वास करे तो किसका करे? रोटी दी, मजदूरी दी, क्या बुरा किया परमुख ने?'

'अरे तभी तो रामजी बरसते नहीं, आए साल अकाल पडता है।'

'रामजी किसका बिगाडते हैं बहन, आदमी की नीयत ही फलती है–सब जगह। चोरो के भी धन होता तो हवेलिया नहीं झुका लेते वे?'

'बात तो तेरी सोलह-आना ठीक है, पर कोई सोचे भी तो? बहू गई, बेटा गया, पोता गया, अब रह ही क्या गया–डोकरी के पास–सिवा रोने-झींखने के?'

बात लम्बाई पकडने लगी, तभी एक छोरा भागता हुआ आया, कहने लगा, 'काकी, रसोई मे कुत्ता घुस आया, दूध जूठ दिया और घी की पतीली औंधी करदी।'

'दादी तेरी कहाँ मरी थी–वैकुठ चली गई थी?' उसने झल्लाते हुए कहा।
'वह गली मे खडी बाते कर रही थी–रुक्मा नानी से।'
'साँप काटे उसे, बात-पुरान उसका कभी बन्द होगा कि नहीं? दो-घडी आई इतने मे रसोई सारी उजडवा के रखदी।'
पानी रेत पर फैंक, लोटा माज वे दोनो अपने-अपने घर को चलदीं।
ऐसी चर्चा के लिए औरतो को सुबह का समय बडा रास आता है। स्थान यदि मन्दिर मिल गया तो सोने मे सुगन्ध। ठाकुरजी तो किसी को रोके-टोके नहीं, और वे होठो पर लगाम जल्दी से लगाएँ नहीं? चर्चा को फिर द्रौपदी का चीर होना ही है।
नहा-धोकर आई औरतो ने अगले दिन सुबह-सुबह ही मन्दिर मे प्रवेश किया। ज्ञान-भक्ति की चर्चा तो भूल गई, गगी और पूरी की चर्चा पर उतर पडीं सारी की सारी।
'बींटी सौ-पचास की नहीं, हजारो की बताते हैं?'
'अरे बडी कीमती, मैंने देखी है, हीरा था उसमे।'
'जितने की भी हो, पर सीधे साल पचाने कौन देगा?'
'विवाह मे चौधरी ने बहन-बेटी से लेकर नाई-ढोली तक को बधाइयाँ दीं गगी बाकी बचती?'
'बधाई मे तो सौ-पचास ही मिलते, हाथ की सफाई मे माल हजारो का नहीं मारलिया?'
'थानेवाले छोरी को तो पीट-पाट कर मार ही देंगे–समझो।'
'मार छोरी को तो पडेगी कि नहीं, राम जाने, पर बुढली के तो परसादी मे दो-चार थप्पड औंधे-सौंधे लगेगे ही–उसे तो बस इतनी खुराक ही काफी।'
'इस घर के तो अब ताला हमेशा-हमेशा के लिए ही लगा समझो।'
पुजारी अपने आसन पर जमा था। हाथ उसका कभी गोमुखी मे ओर कभी चलता तुलसी चरणामृत देने मे। होठ और जीभ उसके योग देते चर्चा के पारायण मे। कान पगे थे निंदा-रस मे और आँखे रीझ रही थीं, ठाकुर के रूप विग्रह पर नहीं- और ही कहीं।
औरतो के चिकने-चुपडे चौखटो पर नजर टाँगते उसने कहा, 'घर तो देखो हो रहा उसका सूना, खुद का एक पैर है आँगन मे और दूसरा पहुँच रहा है मरघट पर, फिर भी आँखे नहीं खुलतीं, 'ममता तू न गई मोरे मन ते,' सोचा जाते-जाते छोरी के हाथ तो पीले कर ही जाऊँ?'
'हाथ पीले तो पता नहीं कब होगे, मुँह काला तो सामने दिखता है,' कहती एक औरत ने चढापे की थाली मे एक अठन्नी फैंकी।
खनक सुनते ही, पुजारी का ध्यान एक बार औरतो से हट, अठन्नी पर जा ठहरा। उसने चरणामृत और चार मखाने दिए उसे।
तभी एक नवोढा ने बटुवे से रूपए का एक सिक्का निकाला और थाली मे कुछ ऊपर से डाला। रूपए का आकार तो छोटा ही था पर झनकार उसका सारी मडली तक पसर गया। पुजारी ने उसे चरणामृत ही नहीं, आधी-मुट्ठी मिश्री भी दी।
उसने एक प्रौढा से पूछा, 'यह बहू?'

'मुनीमजी के बेटे की।'

'रमेश की ही तो? दो ही महीने तो हुए हैं विवाह हुए'

'हाँ'

'बडी समझदार लगती है, इसकी उगली मे भी तो बींटी है?'

'हाँ है।'

'ध्यान रखना, गिर गई कहीं तो पुजारीजी-पूरी न बनजाय? जमाना बडा अटपटा है?'

कई उनमे से हँसी और कई मुस्कराई।

एक ने कहा, 'गिर पडे इससे तो ठाकुरजी पर चढाना अच्छा?'

अबकी बार पुजारी मुस्करा दिया, और कोई नहीं केवल वही।

पदमा परिकमा करती सब सुन रही थी। परिक्रमाएँ पूरी कर, बोली, 'पूजारीजी यह मन्दिर है या चिडियाघर? भजन-पूजन के समय क्यो किसी का मैल निचोडते हो, क्या अन्त है उसका?'

पुजारी के मुँह की हवा खिसकने लगी और औरते उठ-उठकर चलती बनीं।

चरणामृत ले वह भी चलदी। चलती-चलती सोचने लगी, 'गगी के पास जाऊँ, उसे कुछ धीरज दू, कुछ सहायता भी करू उसकी, अब नहीं तो कब? वे दादी-पोती तो मेरी आवाज के साथ आधी रात को भी आ खडी होती हैं, दिया कुछ तो ले लिया, नहीं तो खाली हाथ ही चल पडीं, पर मजाल है, नाराजगी कभी ऊपर आई हो? ऐसा क्या गुनाह किया है उसने, गाँव उससे घृणा करता है-बलगम समझकर? पर पहले चौधरी के पास चलू, पाप शुरू वहाँ से हुआ है? चौधरी सिह तो नहीं जो जाते ही दबोच लेगा मुझे? बाटी अपनी,अपने चूल्हे पर सेकती हूँ, छाया उसकी बैठना है नहीं, बैर-विरोध कोई उसके साथ है नहीं, फिर ठकुरसुहाती उसकी किस बात की? पर किसी असहाय के पख मे अपने साच को दबाए रखू तो वह साच भी कजूस के धन की तरह बीमारी ही है?'

अपना दृढ सकल्प सजोए वह चौधरी के पास जा पहुँची।

देखते ही चौधरी ने कहा, 'आ काकी आज सुबह-सुबह ही कैसे?'

'आगई मिलने।'

'वडी कृपा की, मुड्ढा पडा वैठ।'

'वैठू तो विशेप नहीं, दो मिनट बात करनी है तेरे से, किसी स्वार्थ को लेकर नहीं-केवल अपना समझकर।'

'कर, नहीं क्यो, मैं कौनसा दूसरा हूँ?'

'वींटी गई सुना, बडा दुख हुआ, भगवान ने चाहा तो वह मिल भी सकती है पर बात गई हुई, लाख उपाय करने पर भी न मिल सकती न आ सकती। पहले तो यह बता कि बकरी के मुँह मे तूम्बा आ सकता है कभी?'

'नहीं, आ सकता।'

'तो पहली वात है कि छोरी वींटी ले ही नहीं सकती और ले-ले तो पचा नहीं सकती

किसी भी हालत मे, मेरा दावा है।'

'पर मेरा ध्यान अभी तो उसी पर है?'

'ध्यान है नहीं, ध्यान तेरा करवाया गया है।'

'मेरे हित मे ही तो करवाया गया है?'

'हित है नहीं, वह मोह के अन्धेरे मे लगता है तुम्हे—हिरनो को गरमी मे बालू पर पानी उछलता दिखता है जैसे। मेरे सयाने! कुछ तो सोच, चोरी, डकैती, हत्या ये सब भोपे बताने लग जाते तो सरकार थाने-कचहरियो मे एक-एक भोपा ही नहीं बैठा देती? क्यो खरच करती करोडों? चसमा उतार दे, नफे मे रहेगा, बस इतना ही कहना है मुझे तो?'

वह चलदी।

गगी और पूरी को गाँव मे अधिकाश लोग प्रश्नवाचक की तरह देखते। उनसे चौडे मे बात करते भी हिचकिचाते। मुरलीदादा और पदमा के ही घर ऐसे थे जहाँ वे चुग्गा-पानी जुटाने चली जातीं। अनेक घर गगी और पूरी को एडी से चोटी तक जानते थे कि छोरी पराया डोरा भी उठानेवाली नहीं, पर मुँह खोलकर प्रमुख की नाराजगी कौन ओढे—किसका घर पानी मे है? सोचते, 'चौधरी तो कभी कुछ गई भी कर सकता है पर बेटा उसका सरपच, अडियल और पियक्कड़ पहले दर्जे का, चाहे जिसकी पगडी उछाल दे, चलता ही किसी सफेद चद्दर पर काले हाथ पोछ दे, गाँव के दो-चार गुडे तो उसकी जेब मे हर समय जागते ही रहते हैं। ऐसे भिड के छाते मे कौन हाथ डाले?'

चर्चा की खब दो-दिन तो अनाधार ऊँचाई पकडे रही, फिर मन्द पडती हवा के साथ, सम धरती पर उतरने लगी।

जातीय जहर मे डूबे, दो-चार घर मुहल्ले मे ऐसे भी थे जो गगी पर टूटते पहाड को देखते रहने के लिए आँखे फैलाए हुए थे। सोचते थे, 'थाना आएगा, छोरी को ले जाएगा, छोडेगा डोकरी को भी नहीं? माल को पचानेवाली पाप का बाप तो वही है। असली जुरम ही इस पर बनता है। ठुकाई होगी, और पहली ठुकाई मे ही इसका तो राम-राम सत बोल जाएगा।' पर दुर्वह लालसाओ के इस उठते धान पर निराशा के ओले गिरे तो ऐसे गिरे कि वे फिर उठे ही नहीं। न थाना आया, और न चौधरी ने ही उन्हे दुबारा तग किया। हाँ, उस घर पर उमस अब भी बनी हुई थी।

मुरलीदादा का अपनी अब तक की लम्बी यात्रा मे, यह पहला ही पडाव था, जहाँ उन्हे किसी मानवी-कौंची की कातर चीख ने कुछ करूणा विगलित कर दिया। उन्होने अपनी ब्राह्मण बुद्धि से काम निकालने का मन ही मन निश्चय कर लिया।

जिस समय वे पहुँचे, चौधरी अपनी जीप के पास खडा शहर जाने की सोच रहा था। पंडितजी को देख वह हाथ जोडता बोला, 'प्रणाम गुरूजी?'

'आयुष्यमान-सौभाग्यवान भव।'

'पधारो, हुकम करो मेरे लिए कोई?'

'हुकम कुछ नहीं, असुविधा न हो तो दो मिनट बात करता?'

'असुविधा किस बात की, फिर आपके लिए सवाल ही नहीं—फरमावो?'

तिबारी मे जाकर बैठ गए दोनो।

पडितजी ने कहा, 'बहू की बींटी खो गई सुना?'

'हाँ, खो ही गई।'

'सोना गया बुरा।'

'क्या उपाय?'

'पर जिसके हाथ लगा है, लाभ उसे भी नहीं, मन मे राजी भले ही हो ले कोई?'

'यह तो अगला सोचे तब हो, अपना नुक्सान तो सामने है?'

'पर तुम लोगो को लगता है कि बींटी उस छोरी के सिवा और कहीं नहीं गई?'

'हाँ।'

'पर मेरा जहाँ तक विश्वास है बींटी छोरी नहीं ले सकती, कारण उसने कई बार हमारे गलियारे मे गुमे छल्ले, बींटी और सिक्के हमे अपने आप ही लाकर सौंपे हैं। ऐसा उसने मेरे यहाँ हीं नहीं, कई अन्य घरो मे भी किया है।'

'किया वह ठीक है गुरूजी, पर मन की अवस्था हर समय एक-सी ही रहती है, इसकी क्या गारटी है?'

'इसकी गारटी तो उसका पिछला आचरण ही है।'

'हमारा विश्वास तो फिर आपके विपरीत है गुरूजी?'

'चलो किसी हद तक तुम्हारे विश्वास को ही मान लेता हूँ पर देर-सवेर बींटी को वह, कभी निकालेगी तो सही? केवल गाडे रखने के लिए ही तो नहीं चुराई उसने?'

'निकालेगी तो जरूर पर यह हमे कैसे मालूम होगा?'

'तुम्हे मालूम मै कराऊगा।'

'वह कैसे?'

'कपडे-लत्ते या बर्तन-भाडे पर गगी जब भी सौ-दो सौ खर्च करेगी तो मेरे घर से छिपा न रहेगा। वह डाल-डाल तो हम पात-पात, दूकानदार के बयान तो होगे बाद मे, पहले पूछताछ होगी उसकी हमारे थाने मे। 'बता ये पैसे कहाँ से आए? किससे लिया यह समान? क्या-क्या लिया है बता?' सुराख कहीं न कहीं तो मिलेगा ही? धीरज तो कुछ रखना ही पडेगा, पर फल अपने हक मे ही होगा। एक पते की बात और सुनले कि तुम्हारा अहित मैं अपना सिर कटने पर भी नहीं सोच सकता। तुम्हारा-हमारा सम्बन्ध तो है पीढियो का ठीक वैसा ही जैसा रघुकुल और वशिष्ट का था। उसे तो मैं तोडू और ना कुछ चमारी के लिए झूठी गगाजली उठाऊँ, इतना दीवाना तो मैं, हर्गिज नहीं?'

'आप इतना ही कहते हैं तो रख लूगा धीरज।'

'मेरे विश्वास को जीवित रखा है तुमने, दीर्घायु मिले तुम्हे, बडी प्रसन्नता है मुझे। छोरे के विवाह मे हजारो रुपए बाजो मे लगे हजारो लगे भोज मे, और हजारो उडगए पीने-पिलाने मे? इन खर्चों मे एक खर्च बींटी का और जुडजाय तो अर्थ की छत तुम्हारी टपकने नहीं लगेगी? पर छोरी कहीं मर गई या जीवन के कगार पर खडी डोकरी कहीं

मौत की नदी मे फिसल गई तो तुम्हारे खानदान के दूधिया इतिहास मे वह काला टूठ कोढ की तरह और जुड जाएगा यह न मैं चाहता और न तुम्हीं चाहोगे।'

चौधरी के होठो पर स्वत ही फूट उठा, 'यह तो ठीक ही फरमा रहे हैं आप।

'सुनहला इतिहास चौधरी एक-दो दिन मे नहीं बनता। कई पीढिया तपती हैं उजलापन तब आता है उसमे। तुम्हारा दादा तुमने तो देखा ही नहीं, मेरे पिता कहा करते थे 'बडा साधु आदमी था। घटो किसी खेजडे के नीचे बैठ माला मे खोया रहता। गाय को रोटी भिखारी को मुट्ठी आटा और चिडियो को एक-लप चुग्गा, यह उसका रोज का व्रत था। गर्मी-गर्मी ढाई-तीन महीने, अपनी प्याऊ पर आप ही बैठता। खटकर खानेवाले ऐसे तपस्वी का लगाया हुआ यह वशवृक्ष है, तुम्हारा?'

'आप कहते हैं तो ठीक ही कहते हैं गुरुजी।' वह फूलकर कुप्पा होगया।

'दूसरी खास बात यह है यजमान, कि तुम्हारा भरा-पुरा परिवार मुझे उस सघन आम्रवृक्ष की तरह लगता है जिसकी शाखाएँ चारो ओर फैली हुई हैं, और वे शाखाए पत्तो के भार से झुक रही हैं, क्या पता अभी वे और कितनी झुकेगी? उस वृक्ष का तना तुम दोनो हो—पति-पत्नी। उस वृक्ष की एक भी शाखा यदि असमय मे टूट जाए तो सारा वृक्ष उदासी मे डूब जाएगा, उजडा हुआ लगेगा वह। कई बार किसी असहाय की आह से ऐसा हो भी जाता है। मैं जड बींटी से, ज्यादा तूल तुम्हारे वृक्ष को देता हूँ। उसका किंचित भी अमगल सोचना मेरी बुद्धि से परे की बात है। सौ बातो की एक बात है चौधरी, कि मेरी अपनी इच्छा तो यह है कि इतिहास के उस देववृक्ष पर मैं तुम्हे फूलो की डाली की तरह हँसता-पसरता देखू और यही इच्छा तुम्हारे इतिहास की रही है—सुगन्ध पसार की।'

चौधरी भावाभिभूत होगया। श्रद्धा उसकी अतीत से जुड गई और मोह उसका अपने वर्तमान से—अपने परिवार से। वह एकटक हो पडितजी की ओर देखने लगा।

मिथ्या मे कितना बल होता है? खानदान के दूधिया इतिहास का गुणगान सुन चौधरी के अह पर श्रद्धा की एक ऐसी रागात्मक परत आ चढी, जिसने उसका विवेक ढक लिया। अह उसका दो पीढी पीछे जाकर अस्तित्वहीन भूत मे जीवित स्वर्णकाल खोजने लगा।

दादा इसका अपने और अपने पडोसी गाँवो के ढोर पार करवाने मे अपनी किस्म का एक ही था सिद्धहस्त। ग्वाले, गडरिए, और राइके उसके दोस्त भी थे और कमाऊ बेटे भी। और बाप गाँव मे ही नहीं गाँव के बाहर भी जिसे चश्मदीद गवाह कहीं नहीं मिलता, वह सिर पर गीता और हथेली मे गगाजल लिए हाजिर मिलता। यह है खानदानी इतिहास का सुनहला अध्याय।

पडितजी ने कहा, 'भगवान न करे चौधरी, डोकरी के कुछ होजाय, पर होजाय तो?' एक पल वे रुके, फिर बोले, 'मुझे तो सोचते ही कपकपी छूटती है। भाई-बहन के इस अनाथ जोडे का भार ढोनेवाला सबल कन्धा सिवा तुम्हारे, गाँव मे मुझे तो दूसरा कोई दिखता ही नहीं?'

'गुरुजी, बींटी की मुझे इतनी चिन्ता नहीं जितनी उससे उपजे अपशकुन से है?'

'अपशकुन मन का वहम है, सचाई भी हो कुछ तो दान-पुण्य उसका उपचार है पर

किसी के प्राण जाने के वाद उपचार उसका कहीं नहीं। आह से उपजी आग न दान से दबती है और न अनुष्ठान से।'

'ठीक है गुरूजी मन एक बार तो आपके कहे पर ही टिका लेता हूँ।

वे आश्वस्त हुए घर आगए।

कौंची का बाण एक बार तो निकाल ही दिया उन्होने।

गगी एक-दो दिन मे ही इतनी टूटी और बुझी कि उससे अपना शरीर सम्हलना दूभर होगया। घर से निकलने को उसका जी ही नहीं करता था। वह सोचती, 'झोपडा बन्द कर अन्दर ही पडी रहूँ, न किसी को दीखू , और न किसी के आगे होठ ही खोलू। रात के किसी अन्धे पहर मे पोता-पोती को लिए यहाँ से चुपचाप चलदू कहीं तो कितना अच्छा हो?'

दिन में कुछ देर पडिताइन के यहाँ चली गई, आँखो के नीचे सूजन, आकाश उसका खखिया, और चेहरा खेह खाए दर्पण-सा।

पडिताइन ने उसकी ओर गौर से देखा, चौखटे की भाषा पढकर वह द्रवित तो हुई, पर निराश नहीं। उसने पूछा, 'क्यो गगी, नींद नहीं आई? लगता है रो-रो आँखो की रोशनी बुझाने मे लगी हो और खोपडी खाली करने मे?'

'मालकन, मौत ने घोडा बना रखा है मुझे?'

'और घोडे ने छोड रखा है दाना-पानी और नींद भी तो नहीं लेता वह? मौत को इतना ही चाहिए?'

'क्या करू उपाय भी तो नहीं सूझता?'

'पर मौत घोडे पर अपने आप नहीं आ बैठी?'

'तो मैं बुलाने गई थी उसे?'

'बुलाने गई या नहीं गई, छोड, तूने चाहा जरूर है, इसीलिए तो समय से पहले ही अपनी पीठ तूने सौंपी है उसे? सही बता जीना चाहती है?'

'चाहती तो हूँ मालकिन पर इस हालत मे कैसे जीया जाय?'

'न हाथ-पैर हिलाएगी और न हिम्मत ही रखेगी तो हर्गिज ही न जी सकेगी, मेरे से लिखवाले चाहे? खाना-पीना भी पडेगा, हारी-बीमारी और दुख-दर्द से जूझना भी पडेगा। खाट पकडली और सास ले लिए कुछ दिन, वह जीना थोडा ही है, वह तो भुगतना है?'

वह विस्फारित आँखो से उसके सामने देखने लगी।

'अच्छा यह वता मुझे कि आँधी, अकाल और ओलो के भय से किसान खेत जोतना बन्द करदेगा?'

'वन्द तो नहीं करेगा।'

'जोतना किसान का तप है, अकाल चाहे कितनी ही बार पडे? हर एक का अपना-अपना तप है, सब छोडदे तो समाज का ढाँचा ही लडखडा जाए। इतने वरस तूने गाँव की वडी सेवा वजाई, वह तप था पर अव तक वह रहा अधूरा ही। अव परमात्मा ने तुम्हे

अवसर देकर, तुम पर मेहरवानी की है तो उस अधूरेपन को पूरा करना चाहिए। [illegible] चूक गई तो चौरासी है?'

'मेरे पर यह मेहरवानी हुई है, मैं समझी नहीं।'

'मेहरवानी ही नहीं, पूरी मेहरवानी। अवसर ही नहीं बड़ा सुनहला अवसर दिया है रामजी ने तुम्हे। तेरा अब तक का तप था शरीर का, अब करना है मन का?'

'मालकिन, समझाओ मुझे?'

'भाग, धतूरा, शराब, अफीम और गाजा जहर है कि नहीं?'

'जहर ही हैं।'

'फिर बहुत से इनका सेवन करते हैं।'

'करते हैं।

'कई तो कई बार मर भी जाते हैं?'

'हाँ।'

'और कई दुख पाते हैं।'

'हाँ।'

'निदा, अपमान, ईरखा, और कडवे बोल ये सब जहर नहीं।'

'हैं तो जहर ही।'

'मीरा इन्हे हँसती-हँसती नहीं पी गई?'

'पी गई।'

'मरी तो नहीं।'

'नहीं।'

'और तू पीएगी तो मर जाएगी?'

'मरूगी तो नहीं, पर दुख तो पाऊँगी ही।'

'दुख इसलिए कि तुम्हे पीना नहीं आता।'

'कैसे पीऊँ?'

'हँसते-हँसते। अच्छा एक बात बता?'

'फरमावो?'

'निदा, ईरखा, और अपमान के वचन तुम्हारे शरीर पर लगेगे?'

'तो कहाँ?'

'शरीर पर नहीं, वे लगेगे तुम्हारे मन पर।'

'समझगई।'

'और मन पर घाव होगा कहीं?'

'नहीं।'

'खून निकलेगा उसके कहीं?'

'नहीं।'

'तेरे घर से क्या गया?'

'कुछ नहीं।'

'कुछ नहीं के लिए चिन्ता करना मूर्खता नहीं?'

'मूर्खता ही है।'

'सहन तो करना ही पडेगा,रोकर कर चाहे हँसकर, फिर हँसकर ही कर–रोकर क्यो? दुनिया की कतार है लम्बी, और तू है अकेली, किस-किस से उलझेगी? और उलझकर क्या कर लेगी किसीका?'

'कुछ नहीं।'

'रोकर करेगी तो शरीर मे होगा जहर पैदा और बढाएगा बीमारी और बेचैनी, न रोटी रूचेगी, न वह पचेगी, और न पलको पर गहरी नींद ही उतरेगी। हँसकर करेगी तो रोटी रूचेगी-पचेगी, नींद आएगी दौडती और चेहरे पर तुम्हारे नाचेगी खुशी। सबसे बडी बात होगी तप होगा पूरा और रामजी होगे राजी। राजी इसलिए कि उनके दिए अवसर का तू ने मान किया। मान देने से कौन राजी नहीं होता?'

'यह काम मालकिन आसान तो नहीं?'

'यह किसने कह दिया तुम्हे? यह तो रोटी के कौर से भी ज्यादा सहज है। कौर पकाने मे भी सौ लफडे और पचाने मे भी। दाँत-आँत सभी को खटना पडता है, तब कहीं जाकर वह पचता है। इसमे तो हींग लगे न फिटकरी, मन मे केवल निश्चय करले कि मन, तेरे नचाए अब नहीं नाचूगी, बस रास्ता मिल गया, मजिल आएगी ही। कठिन लगने का एक कारण और भी है?'

'बतादे।'

'आज तक मान-बडाई पाकर तू फूलती रही है?'

'हाँ।'

'बस कठिन इसलिए लगता है। मन अपना बिगडा नौकर है, आज का नहीं जन्म-जन्म का। कुपथ वह छोडना चाहता नहीं, और सुपथ उसे भाता नहीं। तूने अब तक तो मेरा कहना माना ही है?'

'मुझसे जैसा बना, माना ही है।'

'अब नहीं मानेगी?'

'मानूगी क्यो नहीं?'

'तो छाती ठोक कर, मेरे पीछे-पीछे कह, रामजी जो कुछ हुआ, मै इसे अपना उपकार मानती हूँ और आपकी मेहरबानी भी।'

शपथ-ग्रहण की रस्म की तरह, यह सब अच्छी तरह कह दिया उसने।

पंडिताइन ने पलभर, आँखे बन्द करलीं और मन ही मन कहने लगी, 'रामजी इस बुझते-बिखरते चूल्हे मे, अपनी ओर से मैं ईंधन देने की भरसक कोशिश कर रही हूँ, इसलिए कि अन्यायी की ठोकर से वह असमय मे ही बुझे नहीं, आँच अपनी देता रहे तो दो भोले अबोध प्राणी जीवन की पगडडी पकडले किसी तरह। इससे अधिक मेरा कोई स्वार्थ नहीं- बल दे मुझे।'

उसने आँखे उठाईं और गगी के चेहरे की ओर देखा। उसके अन्धे क्षितिज पर आसार

उसे कुछ उजले लगे। होठो पर मुस्कान बिखेरते उसने कहा [illegible]
किया तूने, बडी खुश हूँ मै तेरे से। तू मालकिन है अपने मन की उसके आगे [illegible]
मत हुकम दे उसे। खिचडी-कढी रखे हैं, यहीं खाएगी या घर ले जाएगी?

'घर हम सभी खा लेगे।'

'पूरी को भेजदे फिर।'

वह घर की ओर चलदी किसी बोझ उतारे थके-मादे कुली की तरह।

सत्रह

हफ्ताभर होगया- यह अपत्याशित घटना घटे। इसमें डोकरी भी कम नहीं टूटी पर पूरी की पीडा तो मोत के होठो तक जा लगी थी। मौत ने उसे क्यो छोड दिया वह नहीं समझती।

उसकी बुझती ऑखे, उडता चेहरा और भय व्याप्त मन बता रहे थे कि अवसाद और उदासी उसकी चेतना पर कितने गहरे चिपके है? भाई तथा दादी की ममता और अपनी भूख-प्यास के वशीभूत वह खटती तो है पर उखडी हुई-सी। जीवन उसे भार लगता है दिन लगते हैं खाली-खाली और दिशाएँ अन्धकार से ढकीं।

सूर्योदय से कुछ पहले ही वह मुरलीदादा के यहाँ चली गई। ठान साफ किए, गलियारा बुहारा और गोबर पाथा। धूप पसरने लगी। वह चाडी और बाटका उठाए किवाडी के पास आ खडी हुई। उसने देखा, उससे दो-ढाई हाथ परे, एक अधेड-सा आदमी अपने हाथ धोरहा है—मिट्टी से मल-मल। दाहिने कान पर उसके जनेऊ के ऑटे लगे है। कोई मेहमान है, उसने सोचा।

हाथ-पैर धो वह पूरी की ओर पारदर्शी दृष्टि से देखने लगा।

नगे पैर, पतली पिंडलिया, मैली आसमानी चड्डी, जिस पर दो थेगडिया पडी हुई, कुर्तानुमा कोट जो इतना ढीला था, लगता था किसी बडी उम्रवाली का दिया हुआ है उसे। रूखे बाल और रूखा ही चेहरा। ऑखे बडीं पर विषाद मे डूबीं। देह दुबली-पतली लगती थी जैसे कोई लम्बी बीमारी भोगकर उठी हो। उसने सोचा, कोई अकाल पीडित है या है किसी निर्दय सौतेली माँ से बेजा सताई हुई असहाय कोई। 'जानने मे क्या दोष है, पूछू तो सही?' उत्सुकता उसके होठो पर आ लगी।

उसने सहज भाव से पूछा, 'किसकी लडकी है, मुन्नी?'

'दीनू चमार की,' उसने धीमे से कहा।

'नाम तेरा?'

'पूरी।'

'दीनू यहीं है या कहीं बाहर गया हुआ?'

छोरी के चेहरे पर अवसाद की बिखरती झीनी छाया, कुछ और गहरी होगई। अपने मे डूबी वह उसके सामने देखने लगी।

बेटी बोलती क्यो नहीं?'

'बापू तो ' होंठ आगे बन्द और आँखे सजल, घटता वाक्य मानो आँसुओ ने पूरा कर दिया।

वह समझ गया। उसने विषादयुक्त वाणी मे कहा, 'दीनू चलबसा बेटी?'

'हाँ।'

'कब?'

'गई दिवाली से कुछ पहले।'

'बीमार था?'

'नहर की तरफ गए थे, वहीं किसी टरक ने कुचल दिया उनको।'

'माँ तो है?'

'वह भी चलबसी।'

'घर मे तब कौन है?'

'दादी, छोटा भाई और मैं।'

'यहाँ तू गोबर पाथने आती है?'

'हाँ।'

'साथ मे दादी नहीं आती?'

'बीमार है दो दिन से।'

'तू भी तो बीमार ही लगती है।'

वह बोली नहीं, आँखे नीची करलीं उसने।

'गोबर तू अच्छी तरह पाथ लेती है?'

'हाँ।'

'कितने बरस आगए तुम्हे?'

'चौदह बरस तीन महीने, दादी ने कल कहा था।'

उत्तर से वह बडा प्रभावित हुआ।

'अच्छा पूरी, दादी से कहना, अभी दोपहर को तुम्हारा भानजा आएगा तुमसे मिलने के लिए।'

'कह दूगी।'

'क्या कहेगी, बता देखे?'

'दादी तुम्हारा भानजा आएगा दोपहर को—तुमसे मिलने के लिए।'

'शाबास याददाश्त तुम्हारी बडी तेज है?'

तभी पंडिताइन कुछ छाछ और ठढा-बासी लिए आ पहुँची, कहने लगी, 'गजानन, यह दीनू की छोरी है, आजकल इन बेचारो पर तो आफत का पहाड टूट रहा है।'

'हाँ, बेटा, वहू गुजरगए बेचारी के।'

'अरे उन्हे छोड, उनसे भी एक बडा पहाड ढह रहा है इन पर, समझले ज्वालामुखी के होठों पर खडे हैं गे—इस समय। छोरी और डोकरी दिनभर उफनती रहती हैं—पता नहीं

तेरा आशीर्वाद है।'

'कैसे आगया?'

'किसनू काका के गडबड का सामाचार पाकर।'

'रहेगा दो-चार दिन?'

'नहीं, कल सुबह ही जाऊँगा।'

'जा भाई, मिल लिया, अच्छा किया।'

'तुम कहती हो अच्छा किया, मैं कहता हूँ गजानन जैसा गधा इस धरती पर तो शायद ही कोई होगा?'

'उस सयानी-समझनी साधु माँ का बेटा गधा क्यो रे? देवता है तू तो?'

'देवता अगर ऐसा ही होता है तो उसे ठोकर मारकर दूर कर देना चाहिए।'

'ऐसा क्यो कह रहे हो, मेरी समझ मे नहीं आया?'

'समझाता हूँ सुन, आज सुबह-सुबह ही घूमता-घूमता मैं खेत जा पहुँचा। जिस टीबडे पर अपनी झोपडी हुआ करती थी, वहाँ जा बैठा।'

'बहुत बरसो बाद खेत देखा तुमने?'

'हाँ।'

'कैसा लगा?'

'कैसा बताऊँ मौसी, रोम-रोम मे नया जीवन भरनेवाली हवा, ठढी, निर्मल, मखमल-सी कोमल बालू पर बैठ गया–पालथी मारकर। मेरी याद पर चढी सारी अन्धी परते उखडती चली गई और बचपन ऊपर आ, चेतना पर नाच उठा। मेरी माँ भी जी उठी मुझ मे और तेरे प्यार की तस्वीर भी। भगवान कृष्णा की माँ देवकी ही थी न?'

'हाँ।'

'पर पालन-पोषण उनका यशोदा ने ही किया।'

'हाँ।'

'उसे माँ से भी ऊँचा मान, वे यशोदा के स्नेह मे बन्ध गए?'

'हाँ।'

'ऐसा अनूठा प्रेम निभानेवाला भगवान कृष्ण के सिवा ससार मे और भी कोई हो सकता है?'

'पता नहीं भाई, और तो कौन होगा ऐसा?'

'पता नहीं के मार गोली, कोई नहीं हुआ वैसा, होगा भी नहीं कोई। पर जो बरसो किसी की गोदी मे खेला, बरसो जिसने किसी का मलमूत्र धोया, वह उसके दुख के दिनो मे, उसे कुछ देना तो दूर, अपने ही मकडी-जाल मे अन्धेरा सेता उससे राम-राम भी न करे, ऐसा नीच भी ध्यान में है कोई?'

'मेरे ध्यान मे तो कोई नहीं।'

'ध्यान करने दूर मत जा जीता-जागता मैं तेरे सामने ही बैठा।'

वह अवाक्-सी उसके सामने देखने लगी।

'मौसी देखती क्या है, सच सच ही होता है कड़वा भले ही लगे वह। तेरे [illegible] पालन-पोषण का बदला मैंने यह चुकाया? [illegible] मे घुट-घुट मर रही हो तुम और मैं अपने को ढकने मे लगा हूँ। कृतघ्न ने तोलना तो दूर उस तरफ [illegible] देखने का [illegible] भी नहीं किया। कम से कम इतना तो देखता कि [illegible] चेहरा उसका कितना नीचे [illegible] आया है? पर क्या देखे आँखे ही खो दी उसने अपनी?'

'मेरे करम ही ऐसे हो तो तू इसमे क्या करेगा?'

'मैं क्या करूँ? मेरी जगह तू किसी पिल्ले को गोदी मे लिए घूमती उसे [illegible] चटाती-खिलाती तो वह तेरे लिए कभी जान देकर भी राजी होता और मैं आदमी [illegible] पैरवाला पिल्ला, उसने कितना गया-गुजरा जो अपनी ही पीड़ा के पोखर मे [illegible] मैंने अच्छा नहीं किया लेकिन तू अच्छा कर मेरी कमजोरी को मिटा। मिटाना तेरा स्वभाव है और बनाना तेरी रुचि।'

'मैं क्या मिटाऊँगी रे खुद ही मिट रही हूँ मैं तो? उमर का एक ही डग [illegible] बचा है?'

'पर अगले डग की लम्बाई का तुम्हे मालूम नहीं मौसी?'

'मालूम मे अब क्या रह गया लाडेसर डग पड़ा और जातरा पूरी हुई?'

'मौसी जातरा तू सोचती है उतनी ही नहीं है। क्या पता तेरा अगला डग उठे तब तक सूरज अपने रथ का मार्ग कितनी बार बदले? कितनी बरसात और कितने पाले आ-आकर निकल जाएँ और तब भी अगला डग तेरा आगे टिकना तो दूर अंगद के पाँव की तरह अपनी जगह से शायद टस से मस भी न हो।'

'भाई आग लगन्ते खोदे कुआँ? गिनती के पल हैं काले बालो मे भी कुछ नहीं हुआ तो अब गिरते बालो मे क्या होगा?'

'इतनी लम्बी निराशा मत ओढ मौसी, तुम्हे क्या पता कि तुम्हारे अगले पल ऐसे सुनहले हैं जो तुम्हारी पीडा और आँसुओ से मैली हुई चादर को धोकर काँच की तरह निर्मल बनादे। अगले पल की आशा मे ससार जीता है—नया बनता है वह। तू उसका अनादर करती है—तुच्छ समझती है उसे?'

'तू कुछ ही कह, मुझे तो उम्मीद नहीं कि मेरे करम मे भी ऐसी कोई लकीर है जो अब चमकेगी—उजास करेगी। ऐसा चकमक कहाँ?'

'उम्मीद कर मत कर, पर ऐसा भी होता है और होता रहता है। चकमक तेरा तेरे मे ही है।'

'है तो बता क्या करने लगू मैं?'

'करना बाद मे, पहले सुन।'

'सुना फिर?'

'सरकारी नौकरी मैंने पूरी करली, पैन्शन मिल रही है, एक साथ पैसे भी अच्छे मिल गए थे। घरवाली के मना करने पर भी, निजी पाठशाला खोल ली मैंने, मिले हुए सारे पैसे उसीमे लगा दिये।'

'खानेवाले, मिया-बीबी तुम दो, तीरथ-बरत करते, दान-पुन मे लगाते, कथा-भागवत सुनते, पाठशाला का अडगा–जानबूझकर क्यो बाधा गले से? बहुत गई, थोडी रही, किसके लिए सचोगे? इस गधा-खटनी मे क्या लोगे, नींद बेचकर सिवा उच्चाटन के?'

'मेरी इच्छा है मौसी, मैं पढाता-पढाता, बालको के बीच ही मरू, भगवान का रूप है वे, मुझे तो इससे सरल और सच्ची भक्ति और कोई लगी नहीं।'

'तेरी बात ऊँची है, लगी तो कर, मेरी समझ मे तो आई नहीं?'

'मौसी, छोटे-मोटे पाँच तो कमरे हैं उसमे, नल है, बिजली लेलूगा। कमरो मे बुहारी पूरी निकाल देगी, पोता तेरा पढेगा और तू बैठी मौज करेगी। भानजे से हॅस-हँस दो-घडी बात करना। पाप इससे मेरा घटेगा नहीं तो बढेगा निश्चय ही नहीं। मुझे इससे सुख मिले तो तुम्हारा इसमे जाता क्या है?'

'पाप तेरे पर है ही नहीं तो घटने-बढने का सवाल ही नहीं। रही चलने की बात, दुख-सुख करमो के हैं बेटा, दिन बचे-खुचे, यहीं पूरे करलूगी–किसी भी तरह। कस्बे मे जगह कम, दिक्कत ज्यादा, तुम्हे तकलीफ तो मुझे सबसे पहले, डूगर दूर से ही सुहावने लगते हैं, कहाँ घींसेगा बेकार के बोझ को, आक का कीडा आक मे ही रहने दे, पडे हैं यहीं, हाथो ढेला उछालकर सिर पर मत ले, मेरा कहना मान।'

'ससुराल देखी ही नहीं, लडकी पहले ही सूख रही है? जगह देखे बिना ही सर्दी लगने लगी तुम्हे? घींसूगा मैं नहीं, पैदल तुम्हे चलना नहीं, ट्रक मे बैठाकर लेजाऊँगा, वहॉ केद लगे तो महीने-बीस दिन मे वापिस आजाना, झोपडा तेरा कहीं सरकेगा नहीं, यहीं मिलेगा। ट्रक परसो आएगा, अपना तवा, अपनी थाली-कटोरी ले लेना और कुछ नहीं। झोपडा किसी को सम्हला देना या ढक देना।'

'गज्जू, कस्बे मे हम निभेगे नहीं यहीं ठीक हैं।'

'न तू मेरा मन छोटा कर और न अपना ही।'

'अभागो को मत ढो, भारी पडेगे हम?'

'भारी ही चाहिए मुझे, हल्के का मै करू ही क्या?'

'तो तेरी मरजी।'

'हॉ यो कह मैं राजी मेरा राम राजी मेरा आना सफल और तेरा कहना सफल।'

'पर गज्जू, चौधरी हमे जाने देगा यहॉ से?'

'इसकी चिन्ता तू मत कर।'

'ठीक है फिर।'

उसने बालक को गौर से देखा। पुचकारा उसे। नन्हीं सीप के पाटो की तरह ऑखे सामने करदीं उसने, उनके श्वेत-सकान्त जल मे तैरते दो श्याम कोरक और उनमे छन-छन ऊपर आता उसका पारदर्शी भोलापन–यही था उसका सर्वोपरि आकर्षण। वह बडा प्यारा लगा उसे।

उसने ऑगन को देखा। उसके बीचोबीच सफेद और लाल बेल-बूटो के धुधले पडते माडनो ने अपनी पहचान अभी खोई नहीं थी। पूछा, 'ये किसने कोरे पूरी?'

'मैंने,' उसने धीरे से कहा।

'बुरूश से?'

'दो घोचे थे उन पर पूर लपेट कर।'

'घोल तैयार कैसे किया?'

'सफेद और लाल मिट्टी अलग-अलग कुल्हडो मे एक दिन पहले ही घोलली थी, घोल फिर छान लिए।'

सामने देखा, दीवार पर रेखाओ मे बने दो पेड थे, पूछा, 'ये किसने बनाए?'

'मैंने।'

'पेडों पर कोई चिडिया नहीं बैठाई?'

वह सामने देखने लगी, तभी गगी ने कहा, 'गज्जू, माडने कोरने मे हाथ इसका बडा साफ है, कोरने का इसे कोड भी है।'

'ठीक कहती हो मौसी।'

उसने सोचा, धरती उपजाऊ, बीज बढिया और मौसम बुवाई का, खाद-पानी का पूरा सहयोग हो तो चित्रकला का वटवृक्ष इसका ऊपर उठने मे सशय ही क्या?

'अच्छा मौसी, परसो तैयार रहना, अब तो जा रहा हूँ।'

और वह चलदिया।

अठारह

ट्रक सुबह-सुबह ही, गगी के घर के आगे आ खडा हुआ। मुहल्लेवाले कई तो सोचने लगे, 'यह है थानेवालो का, अब पता लगेगा छोरी को कि हाथ की सफाई कितनी महगी पडती है कभी-कभी?' 'बींटी छोरी निगल तो बताशे की तरह गई, पर अब निकलेगी तब, रोडा बनकर। आँखे और आँते दोनो ही बाहर न आजायँ तो कहना?'

कई बेचारे दुखी भी हो रहे थे कि गगी गरीबनी बेमौत मारी जाएगी, छोरी का हाल भी बुरा होगा, यह घर तो अब कटते कगार पर ही आया समझो।

गजानन पडित कुछ पहले ही उतर पडे और सीधे प्रमुख के यहाँ पहुँचे। तिबारी मे बैठा था वह।

देखते ही बोला, 'आओ, गजानन महाराज, आज तो भोराभोर ही अच्छे दर्शन दिए, कब आए?'

'बस आ ही रहा हूँ।'

'अरे कभी तो साथ पढते थे?'

'बिल्कुल।'

'दिन मे दस बार मिलते?'

'मिलते ही नही, खेलते-कूदते और खाते-पीते भी साथ ही थे।'

'पर आज बरस के बरस निकल जाते हैं बिना मिले?'

'गाँव दूर तो शरीर का मिलना नजदीक कैसे? और मन से मिलना दूर कभी होगा नहीं?'

'ठीक कह रहे हो, रिटायर होगए?'

'हाँ।'

'कोई काम आए?'

'आया तो वैसे परसो भी था, किसनू काका बीमार थे, उनसे मिलकर चला गया था, जल्दी मे था इसलिए मिलना आपमे हो नहीं पाया पर आपके सुख-स्वास्थ्य की जानकारी सारी मैंने ले ली। आपकी बींटी की चर्चा भी मैंने सुनी, बडा दुख हुआ।'

'अरे क्या बताऊँ गुरू, दिनग्रह का चक्कर, बैठे-सूते घर पर चिन्ता आ उतरी।'

'चौधरी साब, होनहार को दरवाजे सब जगह खुले मिलते हैं--चौबीसो घटे। कभी-कभी सहज-सहज मे ही असहज घटजाता है, हवन करते हाथ जलजायँ तब दोष किसे दे? इसके बारे मे मैंने गगी की पोती की चर्चा भी सुनी, गगी आपको मालूम ही है, इस गाँव मे आई तभी से हमारे घर आती-जाती रही है?'

'मुझे क्या सारे गाँव को मालूम है?'

'उसके बेटा-बहू गुजर गए, इसलिए भी उससे मिलना था और आपकी बींटी बाबत भी जानना था कुछ। एक पथ दो काज, उसके यहाँ गया मैं—अपने मन की तुष्टि के लिए। छोरी को मैंने हर तरह से ऊँचा-नीचा लिया। उसका जवाब एक ही था। बाबाजी, मैंने बींटी का चेहरा भी नहीं देखा।'

'वह कुछ भी कहे, बींटी उसे छोड, और कहीं सरकी ही नहीं?'

'ऐसे तो क्या कह सकता हूँ, जल मे मूते सो जाने, पर कोई कितना ही छिपाए, बात हवा पर बैठकर कहीं की कहीं पहुँच जाती है, वह किसी का पहरा नहीं मानती, विश्वास रखे, भेद खुल के रहेगा।'

'अब की घडी तो विश्वास है नहीं, आगे का कैसे कहूँ?'

'आगे के विश्वास का वाहक आप मुझे समझे।'

'आपको कैसे भला?'

'दस महीने हुए हैं, मैंने अपनी निजी पाठशाला शुरू की है। पाँच कमरे हैं उसमे लडके और जमीन काफी। कमरे बुहारने के लिए मुझे किसी न किसी को कुछ देना ही पडता है। मैं गगी के परिवार की अवस्था देख उसे वहाँ ले जारहा हूँ, मेरा तो काम बन जाएगा और उसे मिल जाएगी रोज की दाल-रोटी। शाला मे एक कोठडी अलग से बनी हुई है, ह उसे देदूगा। खाने-पीने और पहनने-ओढने का सारा सामान मैं ही दिलाऊँगा। शाला के बाहर वे जाएँगी नहीं, पेटी, सन्दूक उनके पास है नहीं, जो कुछ होगा वह कोठडी मे खुली प्रदर्शनी होगा। बींटी तो बहुत बडी बात है, मेरे से छिपाकर वे धागा भी नहीं रख सकेगी। ज्यादा क्या, आप इतने मे ही समझले कि बींटी आपकी नहीं खोई, मेरी खोई है—मेरे बेटे की बहू की?'

'यही विचार है आपका तो लेजाओ।'

'कुछ देर बाद वे ट्रक चढेगे, आप चाहें तो उनकी, उनके सामान की तलाशी लिवाले?'

'अरे नही, आप पर पूरा विश्वास है मुझे।'

'बहुत अच्छा, पर बुरा न माने तो एक बात कहूँ?'

'एक क्यो दो कहो, बुरा मानने की तो सोचो ही मत।'

'छोरी पीटी बडी कूरता से गई है।'

'सन्देह की आग मे तो आप जानते ही हैं सूखे और गीले सभी जलते हैं?'

'पात्रता भी तो देखनी चाहिए?'

'मतलब?'

'उसकी शारीरिक और मानसिक अवस्था, उसकी उठ-बैठ और उसके सम्पर्क मे आनेवालो की राय-रूख, ध्यान तो सभी पर देना चाहिए।'

'अपनी तरफ से तो सभी कुछ किया था।'

'मानी दोषी है, और पिट गई तो बुरा नहीं, अगर निर्दोष है तो?'

'तो फिर क्या, पिट गई सो पिट गई।'

'उसका दड विधान फिर?'

'आप ही बतादो?'

'जिससे अपनी मक्खी भी नहीं उडती, वह तो करेगा ही क्या? पर सौ सयानो का मत है कि उसके लिए तो करेगा फिर नीली छतरीवाला ही। क्या करेगा, कब करेगा, यह तो वही जाने पर करेगा जरूर, देर हो सकती है पर अन्धेर नहीं। जड की पूर्ति हम जड से कर सकते हैं पर चौधरी साव, किसी आह से उपजे घाटे को हम अपनी सारी सम्पति गिरवी रखकर भी पूरा नहीं कर सकते। चेतन को दी गई यातना, कभी दाता के चेतन पर ही लौटेगी, व्याज सहित। मैं यहाँ होता तो आपको ऐसी ही राय देता। चलो हुआ सो हुआ, अब वह, नहीं हुआ तो कैसे हो, आज्ञा हो, चलू?'

'जलपान तो करो कुछ?'

'जलपान से काम नहीं चलेगा,थाली पर ही बैठूगा कभी। अब तो पहले स्नान करूगा, बाद मे ही लूगा कुछ।'

और वह उठकर चलदिया।

ठटा-बासी जैसा भी घर मे था, गगी के परिवार ने खा-पी लिया। पेट पूरे तो नहीं भरे पर कुछ आधार अवश्य आगया। पूरी थाली, कटोरी माजने लगी। गगी ग्यारसी को लिए बैठ गई।

ऊदे और उखडे मन वह सोचने लगी, 'न यहाँ हवा का साथ, और न पानी का प्यार। पेट मे कताला होठो पर ताला, यहाँ है क्या–सिवा घुट-घुट मरने के? दिन का चैन कुएँ मे पडा रात को नींद भी नहीं? इतनी खटनी किसी भाठे की भी की होती तो वह भी

पिघल जाता। यहाँ से तो निकलने मे ही लाभ है। अब तो यहाँ एक पल भी पहाड लगता है। घर है, पर है इसमे क्या खाख? पेट मे इसके दो-चार छींछर हुए गूदड-गूदडिया, घूरा भी जिन्हे लेकर राजी नहीं। पाँच-सात माटी के भाडे? कइयो मे छेद और कइयो मे दरारे। जग खाया एक पीपा, और दो-चार मुचे और बिना ढक्कन के डबलिए, दो खाली और चीकट जमी शीशिया, दो घडे और दो मटकिया। घडे होठ कटे हुए, और मटकियो के गर्दने नहीं, साथ लेजाने लायक कुछ भी तो नहीं यहाँ—सिवा पछतावे के?'

फिर झोपडे की तरफ देखने लगी। विचार उठने लगे, 'दमे के मरीज-सा यह झोपडा, सास रूक-रूक ले रहा है। अगली बरखा निकाल दे तो ज्यादा मे है? ऊपर फूस माँगता है और नीचे मरम्मत। बाहर घाव और भीतर काँपती थूनियाँ, आधे मे छाया, आधे मे उजाला। इसमे ढिबरी का भी तो सुख नहीं? न धुवा निकले, और न बन्द हो। घुखता रहा है सदा से। चूहो के बिल रोकती-रोकती बहू मर गई, मैं थक गई, और छोरी हार गई। ढक कर जाऊँ तो कौनसा खजाना गडा है इसमे? खुला छोड जाऊँ तो, क्या टूट जाएगा इसका, टूट तो रहा ही है? समझदार तो इसे मुफ्त मे भी नहीं लेगा।'

घर की ओर से वह एकदम से वितृष्णा से भर गई।

'बरतन सब माज लिए दादी,' पूरी ने धीरे से कहा।

कतता तार टूट गया, वह चौंकी, 'माज लिए तो रख टरक मे।'

'चींपिया भी?'

'क्या करेगी, वाजू तो उसके एक ही है?'

'और क्या लू दादी?'

'क्या लेगी—क्या है यहाँ लेने लायक?'

'ओढने-बिछाने के लिए पूछती हूँ दादी?'

'खेस-चदरा कोई ओढने लायक है तो ले-ले, बिछाने के लिए धरती-माता की गोद आगे है ही—बिछी-बिछाई तैयार।'

'घर फिर?'

'सुरजी दादी को सौंप आती हूँ।'

उठने लगी तो विचार आया, 'सौंपू या बन्द कर जाऊँ? तकदीर तो है जैसा शीशे के सामने है, कुछ दिन वाद ही लौटना पड गया तो किसका घर ताकूगी? कौन घुसने देगा? टूटा-फूटा यही तो काम आएगा। ममता की गाँठ रिस उठी, बीमारी फिर खडी होगई। वह बूढी झुर्रियो की श्रखलाएँ तोड, सारी चेतना पर पसर गई। आँखे भर आई। मर-पचकर कितनी मुश्किल से खडा किया था इसे? ढके मुँह इसमे आई, ढके मुँह ही निकल पाती यहाँ से, मजेदारी तब होती?'

सहसा पूरी ने कहा, 'सामान तो सारा रख आई दादी देर नहीं होरही? मुरलीदादा ने भी तो चलना है अभी?'

'अरे हाँ।' वह अपने पसरते मोह से और अधिक न उलझ सकी।

डग फुर्ती से भरती, भरे कलेजे भरी आखे, पडोसिन के घर जा पहुँची। बुढिया छप्पर

में थी। पास ही गर्दन दोहरी किए एक बीमार बछिया बैठी थी। एक आँख में डोकरी के मोतियाबिंद उत्तर रहा था, दूसरी पर धुंधली दृष्टि अभी जीवित थी।

गगी ने खासते हुए कहा, 'सुरजी दादी?'

'कौन गगी?'

'हाँ।'

'आ।'

'हम तो आज जा रहे है दादी, घर अब तुम्हें ही दिए जा रही हूँ।'

'ढकजा, आए तब खोल लेना अपना।'

'जीवनभर खोले रख लिया, अब क्या लेना है उससे? क्या है उसमे?'

'अपना घर, थूक-थूक भर, अपना-अपना ही है? पता नहीं कब जरूरत पडजाए?'

'दादी, घर वहीं जहाँ समै गुजरे।'

'पर घर ने तेरा क्या बिगाडा? आज की आग, कल नहीं रहेगी गगी।'

'तब?'

'झोपडे के हलका-पतला कोई ताला अटकादे, चाबी देजा मुझे, खडा रहे तो खोल लेना कभी, गिर जाए तो फिर से उठा लेना।'

'ठीक है फिर।'

चाबी उसे थमादी।

'कभी कुछ कह-सुन दिया हो दादी झाड-पोछ परे फैंकना उसे, देर हो रही है, आज्ञा दे?'

पैर छूने लगी वह।

बुढिया ने उसे बाहो मे भर लिया।

दोनो सजल होगईं।

'कैकेई से वनवास पाए रामजी भी एक दिन आगए थे, तो तू नहीं आएगी--कभी?' बुढिया ने काँपते-कठ कहा।

'क्या पता क्या होगा दादी?' कहती वह चलदी।

ये तीनो मुरलीदादा के यहाँ जा पहुँचे।

पंडिताइन ने देखते ही कहा, 'गगी, दोस्ती छोड रही हो?'

'दोस्ती क्या, आपकी छाया छूट रही है, क्या होगा, समझ मे नहीं आरहा?'

'समझने की तुम्हे जरूरत ही नहीं, समझेगा अब गजानन ही।'

'मालकिन, घुघट खींचकर आई तब से बरसों गजानन की माँ ने समझा, वह चलबसी तब से आपने समझा और अब चुटकीभर जातरा और बची है, तब समझेगा गजानन, मैं तो जीवनभर बेसमझ ही रही, मेरी क्या गति होगी?'

'भोली बात करती है, बेसमझ को गले लगाता है कोई? तू आवाज पर हाजिर रही और इशारे पर नाची, यही तो तेरी समझ थी, फिर बेसमझ कैसे?'

'मालकिन इस देह मे सास रामजी ने डाले और अन्न-पानी आपने। यह छोरी आपकी,

आपने इसे रोटी ही नहीं, सूझ भी दी, इसे खटना सिखाया,माँगना नहीं। इस अबोध बालक की बन्द होती घडी मे, चाबी आपने भरी, सूखती आँते इसकी दूध से नहाने लगीं। हमारे पास न भुजबल ही था, और न गाँठ का ही, सगी माँ भी इतनी दौड़-धूप नहीं करती, जितनी आपने की। अब अजल हमारा चुकगया, न किसी को उलाहना, न गाली, और न कहीं दाद-फरियाद, जारहे है—जहाँ भी जारहे हैं।'

'जाने का दुख है?'

'तगी या हारी बीमारी मे जाते तो दुख नहीं होता, मुँह छिपाकर जारहे हैं, दुख इसका है। रह-रह मन पर आता है, आपका करजा कुछ तो उतार पाती? आपके पैरो की जूतिया मेरी चमडी से भी बनती तो मैं अपनी तकदीर सराहती।'

तेरा ऐसा सोचना भी गलत है और कहना भी। मुझे यह सुनना भी शोभा नहीं देता। करने-करानेवाला एक ही है—केवल एक ही। तुम जा रही हो, इसमे भी रामजी का ही हाथ है, उसका हाथ अशुभ कभी होता ही नहीं—किसी भी अवस्था मे। गजानन साधु आदमी है, तुम्हारे हायो मे खेला-कूदा है, वहाँ तुम्हे कष्ट ही क्या?'

'कष्ट मालकिन भूख-प्यास का नहीं, कष्ट है बिना कारण भोगे हुए का।'

'भोगे हुए को चिपकाए फिरोगी तो न कष्ट जाएगा और न रोना। देर हो रही है खा-पी लो कुछ?'

'खा-पी लिया है कुछ तो।'

'कुछ से क्या होगा, पेट तो भरना ही पडेगा। खीर खिलाती तुम्हे, पर बिदाई के समय, वह ठीक नहीं।'

घी-शक्कर पड़ा हुआ, बाजरे की रोटी का चूरमा और फोगले का रायता, छककर खाया उन्होने। थाली पूरी ने माजदी।

पडिताइन ने गगी को एक ओढनी दी। पूरी को एक चप्पलो की जोडी देती बोली, 'पूरी, इसे पहनकर देख तो?'

पूरी ने पहनीं। उनकी ओर देखती पडिताइन ने कहा, 'कैसी फबी हैं तेरे पैरो में, जैसे नाप देकर ये आज ही बनवाई गई हो, पैरो का रूप नहीं बदल गया, देख तू भी तो?'

पूरी ने पैरो की ओर देखा। बरसो से पीडा भोगते पैरो की तकदीर आज अचानक जाग उठी। उसकी ऑखे एक बार ठगी-सी रहगई। चौडाई बढ गई उनकी और मन पर उसके प्रसन्नता थिरक उठी—नर्तकी की-सी।

ग्यारसी को गजी,कच्छा और एक खोपरा दिए। इतने मे गजानन आगए। उन्होने कहा, 'थोडा पानी डाल लू सिर पर फिर मैं भी पेट मे कुछ डाल-सरकू?'

'हाँ, नहा, रोटी तो तैयार है,' पडिताइन ने कहा।

गगी ने कहा, 'हम इतने चलते हैं गजानन, बिसराम की खेजडी नीचे बैठते हैं, टरक वहीं से तो गुजरेगा?'

'हॉ वहीं से, चलो तुम, मैं बस आ ही रहा हूँ।'

पंडिताइन ने पूरी के सिर पर हाथ ज्योंही रखा, एकटक सामने देखती पूरी की आँख

बह चलीं, पर होठ बन्द,गिरा अनयन, नयन बिनु बानी,अवस्था विचित्र होगई उसकी।

ऐसा न कर बेटी, हँसती-मुस्कराती जा, दादी की सेवा करना और भाई का रखना लाड,काम तो कहीं जा करना ही पडेगा--रामजी इसी मे राजी।'

ग्यारसी को डोकरी ने पडिताइन के पैरो मे डाल दिया और आँखे भरलीं। भर्राए गले से वह बोली, 'कैसा जीव है मालकिन, न इसे माँ सुहाई और न सुहाया बाप, न गाँव सुहाया और न सुहाए हम? हमे गर छुडवा रहा है, पता नहीं कहाँ ले जाएगा? कौन है, यह, क्या गुजरेगी इस पर, कौन जाने?'

बालक को पंडिताइन ने उठा, छाती से लगा लिया और कहने लगी, 'गगी, 'माँ-बाप तुलसीदासजी ने भी नहीं देखे। माँ उनकी अपने नवजात बेटे को अपनी एक विश्वासपात्र दासी को सौंप चलबसी। दुर्भाग्य देख तू, कुछ समय बाद वह दासी भी नहीं रही। दाने-दाने को मुहताज वह बालक भूख और उदासी भोगता रहा। भाग्य ने फिर करवट ली तो ऐसी ली कि आगे चलकर वही बालक चमका तो ऐसा चमका, कि आज भी लाखो लोग उसके रचे मानस मे डूब-डूब अपनी प्यास बुझाते हैं--पानी उसका न कभी घटता,न कभी बिगडता--समय की मार से मुक्त है वह। वह मरा कहाँ वह तो अमर होगया। माँ-बाप कबीर ने भी नहीं देखे। पैदा किसी ने किया, पाला किसी ने? वे आज भी जीवित हैं। यह सब उसी का खेल है, अपनी तरफ से तुम न उसमे कुछ जोडो और न कुछ घटाओ, हार-जीत सब उसकी, राम-दडी चौडे पड़ी, सब कोई खेलो आय, अपने तो खुल कर खेलो, काम तो हम उसका करे, और तलब किसी दूसरे से माँगे, क्यो करे हम ऐसा?'

पूरी ने लेलिया भाई को और डोकरी ने थमा लिया पानी का लोटा। भरी आँखे, रवाना होगई वे। दस कदम ही तो नहीं रखे होगे उन्होने, मुरलीदादा सामने ही मिल गए। दादी-पोती दो हाथ दूर ही रूक, हाथ जोडती नत मस्तक हो गईं। पंडितजी का रोम-रोम खिल उठा। उन्हे लगा, मानो सन्तोष सदेह उनकी चेतना पर आ खडा हुआ हो और शुभ शकुन सारे उनके आँगन मे नाचने लगे हो। अपना दाहिना हाथ उठाकर आशीर्वाद की मुद्रा मे उन्होने कहा, 'गगी वहाँ बहुत बढिया रहेगा। यहाँ था ही क्या? साढे-साती तुम्हारे सिर से कभी उतरी ही तो नहीं?'

'आपका आसीरबाद है।'

और वे चलदीं।

पंडितजी ने उनकी पीठ की तरफ देखा एक बार, और फिर मन ही मन कहा, 'अन्तर्यामिन, करूणा-वरूणालय, बडा उपकार किया मेरा, वर्षो का सकट हरलिया एक साथ ही। बरसो बाद सुख की नींद आज सोऊँगा। भद्रा गई, घर का रूप सुधर जाएगा। लगता है सर्वसिद्धि योग इसी क्षण आ उत्तरा है--आँगन पर, निहाल कर दिया दीनानाथ। घर-मालकिन की देह तो रहती यहाँ और मन उसका अटका रहता इस चमारी के झोपडे मे। कठपुतली हुई आप तो उसके चारो ओर नाचती ही, कभी-कभार मुझे भी घसीट लेती उधर। नहीं-नहीं करते गेहूँ के साथ घुन भी पिसता। अब न रहेगा बास, और न

बजेगी बासुरी, ग्रह जाने और डाकोत, मेरी तो बला टली।' उनकी पीठ की ओर उन्होने एक बार फिर देखा, तब तक वे आँखो से ओझल होचुकी थी। सशयहीन हुए वे घर मे प्रविष्ट हुए।

गगी ने बस्ती से बाहर होते ही, मार्ग से सटे एक घूरे की ऊँचाई पर खडी होकर, बस्ती को पूरी आँखो से देखा। लोटा रख दिया। हाथ जोड हवा मे ही कहा, 'बस्ती-माता, तेरे पेट में हजारो औरत-आदमी बसते हैं, ठौर केवल हमारे लिए ही नहीं रही–किस्मत हमारी, पर तुम माँ हो, दोस तुम्हे कैसे दू? अब न घाव कभी भरे हमारे, और न तेरे दरसन हो माता, पर याद तुम्हारी कभी मिटेगी नहीं, उपकार तुम्हारा सिर से कभी उतरेगा नहीं?'

सिर झुकाया, लोटा उठाया और वह चलदी।

सामने जिम्मी ढोलन मिल गई। एक हाथ पोती के कन्धे पर था, दूसरे मे था मजा हुआ लोहे का एक पुराना डबलिया। कदम वह सम्हाल-सम्हाल कर रख रही थी। बेटे-पोते सब हैं पर खुद लम्बे समय से अन्धी भी है और विधवा भी। किसी पोती-पोते को साथ लिए गाँव के आठ-दस घर रोज माँग लाती हैं। एक समय मे उसे तो, एक-सवा रोटी बहुत, शेष सारे से पेट नाती-पोती ही भरते हैं। महीने मे दस-बीस रूपए साई-बधाई के कर लाती है, वे भी घर के देवताओं पर ही चढते हैं। कभी किसी को बीडी-पेटी चाहिए और किसी को साबुन की टिकिया। वह पिघल जाती है, छिपाए भी तो कहाँ? बिना आँखोवाली से घर को इतना सहारा और आँखोवाले बेटे-बहुओं का–उसे कुछ देना तो दूर, बिना मतलब सीधे मुँह बात भी नहीं करते उससे।

'जिम्मी राम-राम?'

'कौन है?'

'यह तो गगी।'

'अरे गगी भली मिली आज तो? लगता है मालिक आज बडा राजी है मुझ पर। कई दफा मैंने घर मे कहा, गगी से थोड़ा मुझे भी मिलाओ रे। बहुओ ने चाबुक मारा–मिलकर वींटी मे हिस्सा लोगी क्या? आँखे बाहर की तो फूटीं, अन्दर की भी फूट गईं? हम तो नही जातीं, तुम्हारा कलेजा बिना मिले नीचे सरक रहा है तो चली जाओ तुम। रार मैं क्यो बढाती, मन मार कर रह गई, पर लगन कितनी सही थी मेरी, तुम अपने आप आ मिली, अब इस समय कहाँ बहन?'

'गॉव से बिदाई अब लम्बी ही समझ जिम्मी, जा रही हूँ।'

'वापिस फिर?'

'वापिस कभी अगले घर जाने के समाचार मिले तो सुन लेना।'

'थूक मुँह से, चौथ का चाँद तो नहीं देखा था कभी?'

'चौथ का चाँद तो याद नहीं, चौधरी-चौधरन का चाँद तो देखती ही थी।'

'मजूरी भी डकार ली होगी?'

'डाकिन बेटा दे कि ले, मजूरी वहाँ कहाँ थी?'

'वहाँ दौडी-भागी, इससे तो अच्छा था, दो घडे किन्नी पीज्ज [illegible]
मेरी-सी आँखे नहीं, अँधी हैं उनकी जो अभिमान के ऊँट पर बैठे [illegible]
माल-असबाब लादे। तुलसी को पीटा है, वह तो दिन गुजरे फिर [illegible]। [illegible]
के हाथो पर उगे काँटे, इमरत पडने पर भी हरे नहीं होंगे मेरी [illegible]
टाबर कहाँ है?'

'बिसराम की खेजडी तले।'

'पास ही है वह तो?'

'हाँ यह रही दस कदम पर।'

'चल मै भी चलती हूँ। उनको परसू-पुचकारू।'

'नहीं क्यो, चल।'

पोती के कन्धे पर हाथ रखे, वह भी खेजडी की छाया मे आ बैठी [illegible]
है घोडा?'

'हाँ, है।'

'हाथो पर डाल, दो चुल्लू।'

हाथ धो, उसने अपनी ओढनी की गाँठ खोली और कहा, 'ये पैसे गिन [illegible]'

गगी ने गिने, एक सिक्का था एक रूपए का, शेष छुटकर पैसे थे साठ।

जिम्मी ने रूपया लिया और कहा, 'पूरी?'

'हाँ जिम्मी दादी।'

उसके सिर पर हाथ रखते, 'ले बेटी फल-फूल तू, दादी की सेवा करना और [illegible]
प्यार बरसाना—बादली बनकर।'

गगी ने कहा, 'रूपए का यह क्या करेगी जिम्मी, तू रख, तेरे कोई कमानेवाला बेटा है,
तेरे को दें या तेरे से ले?'

'गगी, तू समझदार होकर यह कहती है? मेरे भी तो पोखरी है, तेरे ही जैसी—प्यार से
भरी,वह भी उफनना जानती है, मुझे अन्धी समझकर, उसे अनदेखा करती है तू?' उसकी
अन्धी आँखे सजल हो उठी और उसके होठो का राग सक्रिय होगया।

गगी उसकी भाव-भगीमा देख, बिंध गई, आगे कुछ भी न बोल सकी, तर्क उसका
भोथरा और पगु हो चला।

उसने केवल इतना ही कहा, 'इतनी उदास मत हो जिम्मी, दे-दे, ये तेरे ही तो हैं।'

साठ पैसे उसने ग्यारसी का सिर सहलाते, उसके हाथ पर रखदिए और कहा, 'ले बेटा,
सबसे ज्यादा जीत मे तू रहेगा, साठ हैं ये, ठाठ रहेगे तेरे, मेरे पास तो इतने ही थे, पर
खुदा का खजाना खुला है तेरे लिए, अनगिन हैं उसमे। गगी, यह धरती की खुशबू
बनेगा—खुशबू?'

'तेरी जबान फले जिम्मी।'

'अरे तूने कितनी दफा, गज्जू की माँ से मदद करवाई मेरी, वह सारी मेरे कालजे पर खुदी है।'

'मेरे घर का क्या गया उसमे?'

'तेरा परेम था और आज तूने मेरे परेम का मान किया है तो यह याद रख, तेरा मान दिन-दिन बढेगा। गाँव से निकलते ही मैं मिली हूँ तुम्हे ढोलन, गाने-बजानेवाली, ऐसे सगुन तकदीर से ही मिलते हैं–किसी को? सितारा तेरा चमके नहीं तो मेरे मुँह पर थूक देना–ले तेरे को एक भजन सुनाऊँ–याद आगया मुझे।

उसने लोहे का खाली डबलिया अपना हाथ मे लिया। बाएँ हाथ से आगे का किनारा उसका पकडा, दूसरा हाथ उसके पैंदे पर थिरकने लगा। पहले अगली दो उगलिया नाचीं–एक-दूसरी का पीछा करतीं, फिर चारों उगलिया साद्र ठब-ठब कर, थम गईं। तदनन्तर सारा आस्फोट उसी क्रम से होने लगा–लयबद्ध और बडे कौशल से। डबलिया एक डफली बन गया–सरसता बिखेरता।

अब जिम्मी के होठो पर फूटा

सीसोद्यो रुठैलो तो म्हाँरो काँई कर लेसी?
म्हे तो गुण गोविन्द का गास्या हो माई।
राणोजी रूठया बारो देस राखसी,
लोक लाज की काण न माना
निरभै निसाण घुरास्या हो माई।

खेजडी पर चिड़िया चहकना भूल, राग मे डूब गई। लय और लोच, रस और मिठास का मिश्रण बिखर उठा। आसपास का सूनापन मुखरित हो जीवन्त बनगया।

गगी और पूरी एकटक उसकी ओर देख रही थीं–पूगी पर आपा बिसरे विषधर की तरह। गगी सोच रही थी, 'आँखे अन्धी पर अभ्यास इसका अब भी कितना जागता, लौ कितनी सधी हुई? रूप पर इसके मक्खिया पसरे, पर कठो से मिसरी बिखरे, वेस देख भिखारिन भी मुँह मोडले पर राग पर अप्सरा रीझे।' उसकी करूणा विगलित चेतना पर जैसे वीर रस उतर आया हो, बडा बल मिला उसे। वह उसकी राग पर रीझे या अनवरत नाचती-थिरकती उसकी उगलियो पर? समझ ही नहीं पारही थी। हाथ की करामात देखो, बेजान और काले-कोझे डबलिए को जानदार बना दिया–राग से जुडता, जैसे जादू हो इसके हाथ मे? हाथ और कठो की साथ-साथ साधना आसान नहीं। अपनी साधना से इसने हमारे आँसू पोछे हैं–क्या सत्कार करू इसका, कुछ भी तो नहीं पास मे? उसने भारी कठो से कहा, 'जिम्मी, डूबती हुई को जहाज दिया है तुमने, तुम्हारा उपकार कैसे भूलू?'

'गगी, असली उपकार तो मालिक का है, याद उसको करना चाहिए। मैं तो यही सोचती हूँ कि गॉव की गगा जा रही है, पर प्यास मरना होता है वह किनारे आकर भी बैरग लौट जाता है। प्यास तू नहीं मरेगी मरेगा कोई अभागा दूसरा ही।'

गले मिल, पोती के कन्धे पर हाथ धरे वह चल पडी।

गगी उठी, खेजडी की परिकमा की, और लोटे का पानी उसके एकाकी चरण पर ढाल दिया।

आकर वह पूरी से कहने लगी, 'बेटी, मैं यहाँ आई तब यह खेजडी भी मेरी ही ऊमर की थी। मैं भी जवानी मे पैर रख रही थी और यह भी। खेत जाती तो दो मिट इसके नीचे रूकती, लकडियों की भारी लाती तो भी कुछ देर यहीं सुस्ताती। कभी-कभी पानी का लोटा भी ढालती इस पर। आज यह तो देख, वैसे ही हँस रही है–हरी चूनडी ओढे और मैं ढखर हो गई हूँ जेठ मे झुलसी झरबेरी की तरह। बोरिए बिखर गए मेरे, पीडा से पिट-पिट कर। इसका कारण समझती है तू?'

'नहीं दादी।'

'इसने कभी किसी से मागा नहीं, किसी से कुछ चाहा नहीं, दिया ही दिया। तू जानती है, देनेवाला फलता है।'

'क्या दिया दादी इसने?'

'छाया, फल,और लकडी, नहीं जानती तू?'

और तभी एक चिडिया पूरी के सिर पर बैठ, फुर से उड गई।

'पूरी, सुगन तो बडे बढिया है बेटी?'

'कैसे दादी?'

'चिडिया का सिर पर बैठना, बढिया फल देता है बेटी?'

'और चिडे का?'

'वह चिढाता है, देता कुछ नहीं।'

सहसा ट्रक का हॉर्न सुनाई पडा। वे खडे होगए। बैठ गए ट्रक मे, चल पडा वह, गाँव की जमीन को पीछे छोडता हुआ।

ट्रक जब तक अपने गन्तव्य पर नहीं पहुँच जाता, प्रिय पाठक तब तक यदि इतना और जानले कि मुरलीदादा की बहू और गजानन का अपने गाँव की सहज परम्परा से कुछ अलगाकर, उसका कुछ उफान झेलकर भी, चमारी की उस अस्पर्श्य और उपेक्षित धरती पर इतना झुकाव आखिर क्यो होगया, यह जाने बिना न आपकी जिज्ञासा का सहज शमन ही होगा और न होगा उन्हे वाछनीय भी।

उन्नीस

मुरलीदादा की बहू को ब्याहे आठवा साल लग रहा था पर गोदी उसकी अब भी सूनी ही थी और आबाद होने के आसार भी ऊँचे आते कहीं लग नहीं रहे थे।

अक्षर-ज्ञान उसका औसत से ऊँचा था। सस्कार और आचार-विचार उसके वैष्णव

परम्परा मे पले आम आदमी की पकड से अछूते और एकागी थे। दिन मे दो बार नहाती। 'विष्णु सहस्रनाम' और एक अध्याय 'गीता' पढे बिना तुलसी का पान भी जीभ पर नहीं रखती। कई स्तोत्र कठस्थ थे। कद-काठी फबती। आकृति सौम्य और सम्मोहक पर पुत्रैषणा की प्रबल पिपासा, चेहरे की कान्ति चाटती, उसकी चेतना पर रोज एक नई उदासी को जन्म दे जाती। उसके निराकरण के लिए अपनी ओर से उसने कोई कसर न रखी, पर आशा-वल्लरी उसकी तब भी, इच्छित अकुर से अछूती ही रही।

गगी वहाँ गोबर पाथने आया करती। पडिताइन के सरल स्वभाव ने उसके हृदय का एक पूरा कोना घेर रखा था। वह उसकी दुश्चिन्ता से परिचित भी थी और कुछ उदास भी। यदाकदा पीडा उसकी इसे भी चुभती। एक दिन वह अपनी ही बिरादरी की एक प्रौढा को लिए, सुबह-सुबह ही आ पहुँची। मालकिन को उसकी जानकारी दी और हाथ जोडते कहा, 'बहूरानी, दो मिट आप इससे थोडी बात करे, मेरी अरज है।'

मान गई पडिताइन।

राम-रमी और आवश्यक परिचय के बाद प्रौढा ने पडिताइन को टटोला-स्थूल हाथो से नहीं, अपनी दृष्टि के सूक्ष्म अनुभूत उपकरणों से। लिफाफा देखते ही, समाचार वह भाप गई। हाथ जोडते उसने कहा, 'बहूरानी, हुकम हो तो हफ्ते भर के लिए घडी-दो घड़ी कुछ मैनत करू आप पर?'

पडिताइन ने उसके रूखे और सावले चेहरे की ओर बडे विस्मय से देखा। आँखो का पानी उसका रेतिया, वेश गवई और मटमैला पर बोली मीठी और तराशी हुई।

उसने सोचा, 'मेरे पर क्या तो यह मेहनत करेगी और क्या इसे आता-जाता होगा? अगर ऐसी ही कोई जादू की पुडिया होती इसके पास तो घर बैठे ही नहीं पुजती यह? अपने वाग्जाल मे फाँसना चाहती है मुझे? भधम जात, स्पर्श हुअ' इसका, तो फिर से नहाओ, कपड़े धोओ-बदलो, और तुलसी-गगाजल लो। दुनिया भर के झझट और आनी-जानी कुछ भी नहीं?'

उसके होठो पर तुरत फूटा, 'माफ कर सयानी बैदाइन, मेहनत की तकलीफ तुम्हे हर्गिज नहीं दूगी, होना है वह होता रहेगा। रूपया-धेली कुछ लेना है तो यो ही लेजा।'

'बहूरानी, लूगी कुछ भी नहीं, छाछ का धोवन भी मरजी हो तो डालना, नहीं चाहो तो बूद भी मत डालना, मुझे उसकी जरा भी नाराजगी नहीं? उदासी तो आपकी भगवान मेटेगा, मैं तो अजमाइस करती हूँ, जस मिल गया तो मैनत मेरी फलगई समझो।'

पडिताइन ने उसकी ओर वेधक दृष्टि से देखते सोचा, 'बात की तो उस्ताद है, अपना लिया होने दो, अपने पर तो रग इसका चढने से रहा?'

उसने कहा, 'दवा भी दोगी कोई?'

'दवा-दारू तो मैं जानती ही नहीं, बहूरानी।'

'तो क्या करोगी?'

'कुल्हड़ा चढाती हूँ पेट पर-अपने हिसाब से।'

'क्या होगा उससे?'

'बच्चादानी का मुँह कहीं जरा भी बाका-टेढा हुआ तो वह अपनी सैज-सीध पकडलेगा। अपनी ओर आते बीज को वह सीधा अपनी धरती पर उतार लेगा। बच्चादानी सून-दो सूत इधर-उधर खिसकी हुई होगी तो वह भी अपनी सही जगह पर आ ठैरेगी।'

'कब से करती हो यह धधा?'

'धधा तो यह नहीं है मेरा, पर थोडा-बहुत करती मैं बरसो से ही हूँ।'

'फायदा भी हुआ है किसीको?'

'फायदा कुछ को तो नहीं हुआ, बहुतो को हुआ भी है रानी, हाँ इतना मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि नुक्सान किसी को नहीं हुआ।'

'ठीक ही कह रही हो तुम, पर मेरा मन नहीं मानता, माफ करो मुझे।'

'रानी, आप तो पढी-लिखी हो, इतना सकोच सिर पर क्यो लाद रखा है? मेरी देह को आप अछूत समझती हैं तो समझो, है तो वह आप जैसी ही, पर मैनत तो मेरी अछूत नहीं, और न नीयत ही मेरी वैसी? बहुत-कुछ तो मैं पहले दिन बतादूगी आपको, जरूरत अगर नहीं दीखी तो बेकार की मैनत मैं करूगी ही क्यो, मुझे चाव थोडा ही है? बात असली यह है कि उदासी के भाठे नीचे दबी, हरियाली आपकी यदि ऊपर आने को तरस रही हो तो, उसे ऊपर आने देने मे, हानि क्या है? आप उसका लम्बा सुख लेकर राजी होओगी, जीती रही तो मैं भी देख-सुन उसे, कम राजी नहीं होऊँगी। लाभ सबको, नुक्सान किसीको नहीं, सको मत, कम से कम एक दिन का मौका तो मुझे दो ही।'

चाशनी मे सनी वाणी सुनाती अपनी बात पर वह चींचड-सी चिपकी रही कुछ देर।

न चाहते हुए भी, पंडिताइन की एषणा-भ्रमरी उसके सम्मोहक शब्द-शतदल पर उतर आई और बन्ध गई उसमे। हाँ भरदी उसने।

वह आती रही सप्ताहभर। यहाँ पीहर था उसका। दस दिन रह कर वह अपने सुसराल चली गई। नाम पेमी था उसका।

अधिक समय नहीं निकला, पंडिताइन मे मातृत्व के आसार झलकने लगे। चेहरे पर उसके नई आभा खेलने लगी। सहसा एक दिन थाली बज उठी। घर का ही नहीं, सारे मुहल्ले का आकाश झकृत हो उठा। बालक हुआ उसके। उसकी चेतना पर एक चिर प्रतीक्षित सुख प्रात कालीन सुनहरी धूप की तरह पसर उठा। शिशु के साथ ही एक नया सोच भी जन्म ले उठा उसमे। धरातल वही, पर उपज उसकी, एक नई गन्ध लिए बदल गई। तग वृत्त मे सास लेती, बोदी-बासी परम्पराएँ उसने जीर्ण-शीर्ण वस्त्र की तरह, अपने अन्त करण से दूर फैंकदी। उसकी दृष्टि गिद्ध की तरह दूरगामी होगई। उसके उजले दर्पण पर चमक उठा, 'फेफडे सबके एकसे एकसे ही धमनी-धडकन भी। द्वार सबके एकसे मलाकुल। रूप,रस, शब्द, स्पर्ण, गन्ध की अनुभूति सबकी एकसी। घृणा का स्थल आदमी नहीं। घृणित है तो केवल किसी का देहाभिमान और उससे उपजे निंद्य कर्म। सर्वभूताशय स्थित विश्वात्मा सब मे एकसा और एकसी जगह घेरे हुए।' आँखे नहीं, चश्मा बदल गया उसका।

उसने पेमी को बुलाया। होठो के राग को पसारते, बालक को उसकी गोदी मे देते बडे

प्रेम से कहा उसने, 'मेरी बैदाइन अम्मा, ले इसे, नजर भर कर देख इसे, थुयका डाल और पीठ थपथपा इसकी। अपने प्यार मे बाध इसे, ताकि धरती का प्यार इसमे चौडा हो—अपने ही आगन के आकाश से घिरा न रह जाए वह।'

वह गरीबिन क्या बाधती, स्वय बन्ध गई एक दुर्लभ राग मे। आश्चर्यचकित हुई, वह पडिताइन की ओर झाक रही थी। बधाइयाँ उसे कई जगह मिली थीं, पर ऐसा स्पर्शी सामीप्य उसे कहीं नहीं मिला। वह गद्‌गद् हो उठी। पडिताइन ने जी भर विदाई दे, उसे सम्मानपूर्वक विदा किया।

गगी के साथ तो उसके प्रेम की एक नई खिडकी खुल गई, जो जातीय निन्दा–स्तुति के आँधी-तूफानो मे भी कभी बन्द नहीं हुई। उसने सोचा, 'रोटी यह अपनी खाती है, और चिन्ता मेरी रखती है।' उसे लगा, 'चिन्ता इसकी एक नदी है, और एषणा मेरी, एक सागर। 'दोउ मिल एक वरन भए, अब वे गगा-सागर की तरह अभिन्न होगए हैं।'

देह-गेह की विभाजक रेखा, पडिताइन के सहयोग मे कभी बाधक नहीं हुई।

गजानन भी इसी राह का पथिक था। उसके नाना वैद्य थे। नाडी परीक्षण मे बडे निष्णात। काष्टादिक औषधिया, अधिकाश वे घर पर ही तैयार करवाते। स्वाभाव से वे उदार और निर्भीक। विचारो से बडे सुलझे हुए और हठधर्मिता से परे। रोग को काटते, और रोगी को पनपाते। पैसे के लोभ मे रोग किसी का लटकता नहीं छोडते।

वे कहा करते, 'नाडी सबकी एक और लहू का रग-रूप सबका एक। रोग अलग-अलग पर नीरोगिता की चाह सबकी एक। मौत और मादगी न जाति देखती और न जगह। घृणा रोग से करो, रोगी से नहीं।'

गजानन की माँ पर अपने पिता के विचारो की छाप बडी गहरी थी और गजानन के चेतना पुज पर उसकी माँ का स्वभाव जीवन्त होकर पसरा था।

दूसरा प्रमुख कारण यह भी था कि गजानन की माँ दयावती और गगी एक ही गाँव की थीं। उसका मिलन उदार स्वामी और निष्ठावान् सेवक की तरह रोज होता, मजाल है आँधी और मेह मे भी वह नागा होजाय।

गगी की माँ वैद्यजी के यहाँ बरसो से गोबर पाथने और बाखल बुहारने आया करती। करीव एक दसक से वह दमे की मरीज थी। पिछले तीन-चार सालो से तो दमा उस पर इतना हावी हो गया था कि बूर की बुहारी लगाते समय उठती खेह से सास उसके धोकनी की तरह तेज हो उठते। लाचार, दो मिनट उसे सुस्ताना पडता, फिर लगती काम मे। तव भी वह नाक पर अपनी ओढनी का पल्ला लगाकर काम को किसी तरह पार लगाती थी। वस पडते, पेट तो किसी तरह भरना ही पडता।

गगी छ वरस की हुई तभी से, वह भी माँ के काम मे कुछ हाथ बटाने लगी। गोवर वह एक जगह इकट्ठा कर देती, और पाथ बैठी-बैठी माँ लेती। छोरी सूखी हुई थेपडियाँ पिंडारे के पास ला-ला डाल देती, और माँ उन्हे पिंडारे मे तरतीव से लगा देती। पर सबसे वडा सहारा मॉ को यह हुआ कि बाखल भी सारी की सारी छोरी ही बुहारने लगी। कोर-कसर कुछ रह गई कहीं तो मॉ उसे दिशा-निर्देश देती फिर से ठीक करवा देती।

ठाण साफ भी छोरी ही करती। गगी को यह सब खेल-सा सहज लगता। माँ का काम हल्का क्या होगया, उसे एक नया जीवन अनुभव होने लगा।

जाते समय इन्हे बाजरे की एक-डेढ रोटी और कुछ छाछ-राबडी मिल जाते। तीज-त्यौहार कुछ मिष्ठान्न के साथ कोई नया-पुराना कपडा भी नसीब होजाता। हर महीने पगार के दो रुपए और मिलते।

एक बार की बात है, सर्दी कडाके की थी। गोबर पाथने गगी अकेली ही आई—माँ साथ नहीं थी।

दयावती ने पूछ लिया, 'छोरी आज अकेली ही कैसे? माँ को कहाँ छोड आई?'

'माँ का दम उठ रहा है बाईसा,' गगी ने सकोच मे डूबते धीरे से कहा।

'दम ज्यादा तो नहीं उठ रहा?'

'गूदडा ओढे सोई है, हाँप तो जोर-जोर से रही थी।'

वह अपने पिता से 'श्वास कुठार' की कुछ गोलियाँ लाई, उसे देकर उतावलवश एक ही सास मे कह गई, 'कह देना उसे सोठ के गर्म पानी से दो-दो गोलियाँ दो बार ले-ले दिन मे।'

चलते-चलते वह सहज मे ही पूछ बैठी, 'क्या कहेगी बता तो?'

'सोंठ के गरम पानी के साथ दो गोली दो दिन मे एक बार ले-ले।'

दयावती अनायास ही हँस पडी, कहने लगी, 'क्यो माँ नहीं चाहिए तुम्हे? मारना चाहती है उसे?'

छोरी विस्फारित आँखों से अवाक्-सी देखने लगी उसकी ओर। सोचने लगी, 'ऐसा क्या कह दिया मैंने? माँ को भला, मारना मैं क्यो चाहूँगी?'

दयावती ने उसके म्लान पडते चेहरे की ओर देखा और मन ही मन सोचा, 'अरे दोष इसका नहीं, प्रमाद वास्तव मे मेरे से ही हुआ है। मैं सब कुछ एकसाथ ही कह गई—एक ही सास मे, बालक को कहीं, इस तरह तूफानमेल होकर समझाया जाता है?' उसने उसे पुन समझाया धीरे-धीरे और फिर बडे स्नेह से उसे पूछा, 'समझगई अब तो?'

'हाँ।'

'कह तो?'

'सुबह-शाम दो-दो गोली लेनी है—सोठ के गरम पानी के साथ।'

'शाबास, बडी समझदार है तू, गल्ती तैने नहीं, मैंने ही की थी।'

छोरी के जी-मे-जी आया, म्लानता उसकी अदृष्ट हुई।

इसी तरह कभी गगी भी नहीं आई, दयावती तब भी पूछ लेती, 'काकी, आज छोरी नहीं दिखती? तू ज्यादा काम तो नही लेने लगी उससे?'

'नहीं बाईसा, काम से तो वह जी कभी चुराती ही नहीं, उसे तो सरदी मार कर गई —पडी है गूदडा ओढे।'

'तब तेरे तो बडी आफत खडी होगई, आज बुहारी फिर जाने दे।'

'नहीं बाईसा, यो कोई मर थोडे ही जाऊँगी, दे लूगी धीरे-धीरे, यही तो होगा घडी-

अधघडी बेसी लग जाएगी।'

दयावती 'लक्ष्मी विलास' की कुछ गोलियाँ लिए आजाती, कहती, 'दो-दो गोलियाँ गर्म पानी से दे-देना।'

'खाने को, बाईसा?'

'बाजरे का दलिया दे-देना और पानी खू-निवाया। चिन्ता मत कर ठीक होजायेगी सुबह तक।'

आत्मीयता का यह व्यौपार नैसर्गिक था—कृत्रिम और स्वार्थपरक नहीं।

साल मे ऐसा कई बार घटजाता।

गगी के माँ-बाप और एक भाई, परिवार उसका यही था। भाई बाईस साल के करीब था पर था अवारा और पियक्कड। शरीर मे भी कृश ही था। चार-छ महीनो मे मुँह एक बार दिखा दिया तो ठीक है, वरना रात जहाँ गुजर गई मुकाम वहीं। न कागज-पत्र और न समाचार।

माँ को दमे का रोग और बेटे की चिन्ता उसकी नासूर की तरह सूखती ही नहीं थी। पर पुत्र कुपुत्र हो तो क्या, माँ कुमाता कैसे हो? उसे तो बेटे का दुख शालता ही रहता। दिन-दिन ऊर्जा उसकी चिन्ता की मौतिया गुहा मे धँसती कब तक निभती? गगी को नौ साल की छोड, आखिर एक दिन प्राण पखेरू उसके उडगए—अनन्त आकाश मे कहीं।

अब परिवार मे गगी और उसका बाप मोती दो ही समझो। छोरे की तो सालभर से ऊपर होरहा है कोई खोज-खबर ही नहीं।

मोती बडा सीधा और सबसे राम-रमी रखनेवाला व्यक्ति था। आज के छलछद्म से बिल्कुल अछूता। वह दस-बारह घरो की गाएँ चराया करता। सात-आठ घटे उसके जगल मे ही बीतते—दिलीप की तरह गोधन के पीछे-पीछे फिरते। गोधूलि वेला होते-होते गाएँ वह गाँव मे ला छोडता। एक गाय के पीछे दो रूपए मिलते उसे। गगी वैद्यजी के यहा अपनी माँ की तरह जाती ही थी। अपने लायक कुछ कलेवा तो वहाँ से मिल ही जाता और कुछ रोटियाँ पका लेती। बाप-बेटी के गुजर-बसर की गाडी चलने लगी, कुछ धीमी जरूर पर बिना कहीं अटके।

देखते-देखते, समय के छ वर्ष निकल गए—बिना व्यवधान।

गगी ने कदम अपना सोलहवे साल मे रखा। बाप को उसके हाथ पीले करने की चिन्ता हुई। इधर-उधर चक्कर काटते लडका एक दयावती के ससुरालवाले गाव मे ही मिल गया उसे।

एक दिन वह वैद्यजी के यहाँ आया। उनके घर के पिछवाडे बने चबूतरे पर बैठ गया। दयावती ने उसे देख लिया, वह बोली 'आओ मोती काका, कैसे आगए?'

'बाई एक अरज है—फुरसत हो तो सुनाऊ?'

'एक क्यो दो सुनाओ, कौनसे गिनने हैं मुझे?' उसने [illegible] कहा। वह खडी हो गई एक तरफ।

'बाई तुम्हारे ससुरालवाले गाँव मे एक छोरा देखा है गगी के लिए। [illegible]

जीव हैं। छोरा मजदूर है। बडी बात यह है कि लत उसमे तमाखू पीने की भी नहीं है। है हमारी तरह लाई-लाई करनेवाला ही। हाँ शायद, मै न भी भरता पर अचानक ध्यान आया, 'अरे यहाँ तो दयाबाई है,' तो सोचना ही क्या था, मैंने तुरत हाँ भरली।'

'वहाँ मेरे होने से क्या होगया काका?'

'बाई मेरे लिए तो सोने मे सुगन्ध हुई ही समझ।'

'वह कैसे भला?'

'छोरी के हारी-बीमारी हुई कभी मजूरी मिली नहीं दो दिन तो रोटी-भूखी तो नहीं रहेगी। हाजरी तुम्हारी यहाँ भी बजाती रही है तो वहाँ बजाने मे क्या घिसता है उसका?'

'हाँ काका, बस-पडते रोटी-भूखी तो मैं नहीं रहने दूगी उसे, हाजरी चाहे न भी बजाए। तीज-त्यौहार कपडा-लता भी कोई न कोई दे दूँगी और बोलो?'

मोती की धमनियो मे जैसे नया खून दौड गया हो, उसने कहा, 'बाई, अन्धे को तो दो आँखे चाहिए इससे ज्यादा क्या बोलू? माँ इसके है नहीं भाई मे तन्त नहीं धूल के दो दाने जितना भी और मैं हूँ टीके का चावल, पता नहीं कब गिर पडू? अब इसके माँ-बाप और भाई पीहर और ससुराल सब कुछ तुम्हीं हो--केवल तुम्हीं। दिन यह अपने, यहाँ भी तुम्हारे सहारे तोडती रही है, तो वहाँ भी तोड लेगी।'

दयावती गद्‌गद्‌ होगई। एक पवित्र मातृभाव तैर उठा उसकी शुद्ध सलिला हृदय पुष्करणी पर। उसकी चेतना पर गगी की माँ नाच उठी। उसे याद आया, बीमार और अभावग्रस्त होते हुए भी वह कितनी ईमानदार थी और अपने काम के प्रति थी कितनी सजग और निष्ठावान्। अभाव मे भी अलोभ? कहाँ मिलता है ऐसा सयोग? माँसा बापजी और बाईसा बिना कभी बोलती ही नहीं थी। बेटी की ओर सकेत करती, कई बार कहती, 'बाईसा अपनी चिन्ता तो मुझे जरा भी नहीं चिन्ता है इस चिडकली की, पता नहीं किस तरफ उडेगी यह और घोसला अपना कहाँ बनाएगी? कौन लेजाएगा इस गरीबनी को, कोई दूजवर खासता खूसट मिल गया तो घूघट मे ही रो-रो पूरी होगी,' और फिर आँखे भर लेती। उसे इसके ब्याह तक जीने का भरोसा नहीं था। मैं कहती, 'बावली हुई हो, क्या पता है किसी के भाग्य का? तू सोचती है वही थोडा ही होगा?'

उसने कहा, 'मोती काका, एक गाँव की हम दो होजाएँगी तो अच्छा ही है, दो घडी अपने मन की तो करेगी कभी। वहाँ मेरे गाएँ भी है और लम्बी-चौडी बाखल भी। उनका काम मैं इसे ही सौंप दूगी। यहाँ-वहाँ मे अन्तर ही क्या है? काम कभी उन्नीस-बीस कर देगी तो न होठ चटाऊँगी और न आँखे ही लाल करूगी स्नेह से दुबारा करवालूगी--अपनी बेटी बहन समझ कर फिर तो ठीक है?'

[illegible]-सा उसके मुख की ओर देखता मोती स्नेह विभोर हो उठा। उसे लगा जैसे स्वय [illegible] ही बोल रही हो इसके मुख से।

[illegible] होठो से अनायास फूट पडा 'वाह बाई जय हो तुम्हारी सुख बसो फूलो-फलो [illegible] तक मेरी सारी चिन्ता धो दी तुमने बिना साबुन--बिना पानी। इतना खुश तो [illegible] गाँव का पट्टा पाकर भी नहीं होता।' आशीष देता वह चला गया।

वही गगी बहू बनकर एक दिन उसी गाँव मे आ बैठी जहाँ अमृतवल्लरी दयावती की स्वस्थ-सघन छाया पसरी थी।

वह उसके यहाँ आने-जाने लगी। अवसर आ पडने पर कभी उसके बर्तन भी मल लिए कभी बालक को भी गोदी मे उठा लिया दो घडी। चर्चा तो गाँव मे उछलनी ही थी।

बुढियाओ ने कहा, 'बहू यह क्या अनर्थ कर रही हो? घर की मर्यादा को ताक मे रख रही हो?'

बूढे तो घोषणा ही कर उठे, 'यह घर तो अब चमारो का ही हुआ समझो। पुन पूरे ही होगए–इस खानदान के तो?'

दयावती सभी से कहती, 'इसके लिए आप मुझे दोष न दे, इसमे दोषी है परमात्मा।

'यह कैसे?'

'उसने हमारे और चमारो के खेतो मे मोठ-बाजरे की अलग-अलग किस्मे नहीं बनाईं। ऐसा होता तो हम खाते उससे होतीं सोने की मेगनिया उत्सर्जित और वे खाते उससे होती विष्ठा उत्सर्जित। क्यो फुला रहे हैं नाहक मे नथने अपने। युगो से चली आरही देश की हँसती विशालता है यह, जीवित और जागती। टूटने पर फिर सिर धुन-धुन कर रोना भले ही, न इसके टाका लगेगा और न जोड ही कहीं। न यह कपडा है और न ईंट गारे की कोई दीवार। विशालता है भावो से जुडी। परमात्मा की सृष्टि का तिरस्कार न करो सत्कार करना सीखो।'

'सिर फिरा है इसका, पुर्जे ढीले हैं इसके, वायुग्रस्त है यह' सिवा इसके और क्या उछालते वे।

उन्होने अपना स्वभाव नहीं छोडा, और उसने अपना। आक्रोश और प्रतिक्रियाओ के अवरोध की दीवारे वे खडी करते रहे पर उसके हिमाचली विवेक से उद्भूत आत्मीयता की उस अन्त सलिला के प्रवाह को रोक पाना तो दूर मन्द भी न कर सकी वे।

भगवान् अशुमाली का निरन्तर दौडता रथ अपनी यात्रा का अन्तिम सोपान पकडता क्षितिज से कोई हाथभर दूर रह गया था। सूर्य भगवान् का चेहरा दुपहरिया के फूल की तरह तमतमा उठा। सारथि अरुण ने उनकी ओर देखा सहम गया वह और समझ भी गया। उत्साहहीन वह भी तो दिनभर से एकासन पर बैठा, विश्राम के लिए बेचैन होरहा था। घोडो की वल्गा खींचते रथ को उसने और तेज कर दिया।

गगी पश्चिम की ओर झाकी। उसके चेहरे पर एक अनाहूत चिन्ता आ बैठी। सोचने लगी, 'अन्धेरा तो देखते-देखते आ उतरेगा। रात का समय अनदेखी [illegible] न कुछ सूझेगा न सम्हलेगा न बत्ती न ढिबरी हमारा खाना-पीना तो गया भाड मे पर छोरा तो चीं-चीं किए बिना मानेगा नहीं गजानन अपनी छोटी दुकान मे लोगो या [illegible] मेहमानो के चक्कर काटेगा? इससे तो झोपडा ही ठीक था दुरूम्-सुराख़ पर [illegible]।'

और तभी ट्रक सहसा रुका।

'मौसी उतरो डेरा आगया अपना।' गजानन ने कहा।

'आगया तो बडा अच्छा हुआ, भाई, थोडा सहारा दे उतरू।'

गजानन ने सहारा देकर उसे उतारा। फलसा खोला। गगी उसके पीछे-पीछे पवेश करगई। सामान था ही कितना, पूरी ने उठाया, भाई को लिया और वह भी भीतर जा पहुँची। एक बाल -नीम के नीचे बैठ सुस्ताने लगे वे। ठढी रेत थी बडी ही सुहावनी। गगी ने देखा पक्के कमरे हैं, जगह खूब खुली, छोटे-छोटे दसियो पेड--ईंटो के थावलो से घिरे हुए। शाला के चारो ओर बाड थी। ऋषियो की तपोभूमि-सी, जगह बडी रमणीक लगी उसे।

उसके क्षुब्ध मन पर नाच उठा, 'अहा, अब दिन हमारे, यहाँ कटेगे, बालको के बीच। वाह पभु तेरी लीला, कहाँ ला उतारा तूने? तू-तू ही है, तेरी मिसाल तो कहीं भी नहीं।' उसकी शिथिलाती चेतना पर एक नई आशा उतर आई--नया उल्लास लिए।

गगी ने गाँव छोडा था दिन के पखर उजाले मे--लुक-छिपकर नहीं, सबके सामने। रात-दिन की कच-कच से सिर की नाडिया उसकी हरदम तनीं रहती। भूख-प्यास दोनो ही बुझ रही थीं। गाँव की बाडे भी बैरिन होरही थीं। अब न किसी का लेन-देन और न किसी का झगडा ही कोई। जिधर मुँह करो, उधर ही बहार।

उधर गाँव की छाती पर कई विपरीतगामी विषधर रेंग रहे थे, जिन्हे कानी का काजल नहीं सुहाता था। वे अब भी उस दबी आग को, हवा देने मे लगे थे। उन्हे तो बींद चाहिए था बराती तो वे थे ही। इसके लिए सरपच-सा उपयुक्त पात्र और कौन होता? चौधरी का बेटा, उसके घर की बींटी? दर्द तो कहीं न कहीं जीवित था ही उसमे। उसे तो केवल चिनगारी चाहिए थी। पद-पैसा, यौवन, अज्ञान और साथ मे चमचो की कतार, अब बाकी क्या रह गया आँखो पर अन्धेरा उतरने मे?

साँझ धीरे-धीरे उतरने लगी--गाँव की धरती पर। सरपच, पचायत भवन के एक कमरे मे अपने चमचो से घिरा था--उन्मत्त मुद्रा मे। शराब की तिक्त गन्ध हवा मे बिखर रही थी। बोतले अभी-अभी ही खाली हुई थीं।

आज एक ऐसा ही शिकार आ फँसा था--सरपच के पसरते जाल मे। बोतले सारी उसी के सिर पर फूटी थीं। हकीकत यह थी कि उसे बैंक से ऋण मिलना था--ऊँट-गाडे के लिए पर समस्या यह थी कि हाजिर करने के लिए उसके पास न ऊँट था और न गाडा ही। निराश हुए को रास्ता कोई नजर आ नहीं रहा था। ऋण निरस्त होता लग रहा था।

सरपच ने कहा 'घबरा मत, घबरा मत, किसनिया, सारा देश ही इस समय फरजीवाडे पर जी रहा है सरकार खुद ही इस पर टिकी है तो तू-मैं पीछे क्यो? जा, रामू कुम्हार के और ऊँट-गाडा उसका ले आ मेरा नाम लेकर।'

कहने की ही देर थी, ऐसा ही किया उसने। अब जरूरत थी, सरपच, सेकरेटरी, गवाह, पटवारी जमिन और मतदाता सूची की। जहाँ हर की पैडी वहीं पडा भी सारे एक ही

जगह मिल गए। कागजी-कार्रवाई तुरत पूरी करवादी गई। ऋण था पाँच हजार का, मिले उसे साढे-तीन ही। डेढ हजार पसाद मे बट गए, पाप्तकर्ता तब भी पसन्न था और सिर अपना बोझ मुक्त समझ रहा था।

ऊँट-गाडा थे जिसके सही-सलामत लौटा दिए गए उसे। यहाँ अमूमन ऐसा घट जाया करता है कि कटडियाँ दिखाकर भैंसो का, और बछडियाँ दिखाकर गायो का ऋण ले लिया जाता है पर पलोथन भठियारिन के घर का नहीं लगता। सरपच की आँखो के नीचे जिसे भी जायज-नाजायज लाभ मिलता है, बोतलो का भार उसी के कन्धो को ढोना पडता है।

सरपच ने कह रखा है, 'ऋण लो निधडक होकर चुनाव आते रहते हैं और साथ मे उनके ऋण माफी के अवसर भी।'खाया सोई ऊबरा,' वोट बाद मे, ऋण माफी की घोषणा पहले।'

ऐसे सरपच की लोकप्रियता का क्या कहना?

हाँ, तो खुमारी सबके चढ रही थी। सरपच के पतीले मे पडे एक चमचे ने छछून्दर छोडा, 'सरपच-साब, गगी गई तो बींटी भी अब गई ही समझो।'

दूसरे ने कहा, 'गगी गई है, मर तो नहीं गई?'

सरपच ने उनके सामने आँखे चौडी करते कहा, 'अरे मै उस समय घर पर होता तो वहीं नहीं उतार लेता उसे? पर याद रखो छोडूगा उसे अब भी नहीं?'

एक ने कहा, 'साब, इसमे गगी का दोस इतना नहीं जितना गजानन महाराज का है?

इतना सुनते ही सरपच की आग मे एक आहुति और पडी।

उसने कहा, 'उस बाम्हन का तकदीर ही अच्छा था, निकल गया वह। चार आखे होजातीं हमारी आमने-सामने तो हाथ उसका वहीं पकड लेता। कहता, हमारे भावे, इसे जहन्नुम मे ले जाओ चाहे, पहले बींटी रखदो यहाँ।'

यह शुरूआत तो उगली से पहुँचा पकडने का पूर्वभ्यास था। मूल पर प्रहार तो अभी बाकी था। वहाँ बैठे दो-चार आदमियो की मुरलीदादा से अनबन थी, मामूली नहीं लालचुट। उन्होने सोच लिया, 'बदला लेने का ऐसा मौका फिर कब मिलेगा?'

एक ने कहा, 'सरपच साब, इसमे कसूर न गगी का और न गजानन का, पाप का बाप इसमे मुरली महाराज है। उसने चौधरी-साब पर पता नहीं क्या बसीकरन पढा वे अपनी सूझ बिसर उसी के होगए। भोले-भडारी तो वे वैसे ही हैं?।'

दूसरे ने कहा, 'साब इतना तो अन्धा भी जानता है कि घुघची पहचानेवाली जात हीरे के मोल क्या जाने? हीरा गया गुरु के घर और गगी गई मजदूरी पर।

तीसरे ने कहा 'गजानन कौन है—मुरली महाराज का भतीजा ही तो है। वह गया नहीं उसे तो बुलाया गया था। दो-चार महीने यह निकल जाएगी नई बात दो दिन खींची-तानी तेरह दिन, बात इते पुरानी पड जाएगी बींटी फिर आई-गई समझ। गगी को लेजाना तो नाटक था सिर्फ।

पश्नोत्तर फिर होने लगे—आपस मे ही।

'अरे इस हिसाब तो बडा घाघ है मुरली महाराज?

'छिपकली लगती सीधी है पर मक्खियाँ जीती ही निगलती है?'

'और औरत भी तो आकाश के तारे तोडनेवाली–बडी चालबाज है?'

'असली भूमिका तो उसी की है?'

'साब चोरी का असली राज तो अब खुला?'

'पंडित-पडिताइन ने मौके का फायदा उठा लिया। खाने को सूअर और पिटने को पाडे।'

सरपच ने आवेश मे आकर कहा, 'मै समझ गया, अब देखूगा उस महाराज के बच्चे को? देखता हूँ कैसे पचाता है बींटी? कल ही लो, न निकलवालू तो असली की औलाद मत कहना मुझे? इसमे न मैं चौधरी-साब की सुनू और न और किसी की?'

इसके साथ लगी कहानी, रात भर मे सारे गाँव मे फैल गई–सुरसा के बदन की तरह चौडी होकर।

मुरली महाराज अछूते कैसे रहते? सुबह-सुबह ही नहा-धोकर गाँव मे गए, अपने काम से कहीं।

गृह-स्वामी ने कहा, 'पधारो गुरूजी, आपके विषय मे यह क्या सुन रहे हैं?'

'क्या सुन रहे हो?' उन्होने पूछा।

और रात की सारी चर्चा उन्हें परोस दी गई।

'बैठा बैठा बनिया क्या करे, इस मटके का धान उस मटके मे डाले, निठ्ले आदमी, यही करेगे।' यह कहकर बात को उन्होने खत्म किया।

अगले घर गए, वहाँ भी यही चर्चा। दो आदमी गली में मिल गए, पणाम उन्होने बाद मे किया पहले रात की चर्चा डाली उनके कानो मे।

उन्होने यही कहा, 'दुनियाँ है, कुछ भी कहे, जीभ तो किसी की पकडने से रहा?'

मन पर उनके चिन्ता उतर आई सोचने लगे, 'सरपच है, पोतडो मे बिगडा हुआ और शराबी-कबाबी। पास से निकलता कभी अटशट कुछ भी बकदे, क्या पता? हाथा-पाई खुद न करे किसी और से करवादे, झगडने के सौ बहाने हैं? सकपकाऊँ तो शर्म, सामना करूँ यह उम्र नहीं? लोग तमाशा देखें, और मैं अन्दर ही अन्दर सूखू? बिना मतलब समस्या खडी होगई? ऊँट चढे को कूकर खाएगा, कभी सोचा ही नहीं।'

वे घर की ओर रवाना होगए।

खाने का समय होरहा था पर वे रसोई की तरफ न जाकर अपने कमरे मे आ लेटे-चिन्तित हुए। आन्दोलित मन पर उनके फिर नाच उठा 'बहुत गई थोडी रही, इतने मे [illegible] कोई मिट्टी पलीद न करदे? फिर तो उम्रभर की कमाई गई ही समझो [illegible] फटे दूध मे क्या मक्खन निकलेगा? मैं जानता था कि ओछी जात का साथ देने मे लाभ तो है कहाँ, नुकसान का निमन्त्रण तो तैयार है, यही हुआ। कितना समझाया [illegible] को पर उसके कान पर जू भी तो नहीं रेगी। बडी मुँहफट–बडी जिद्दी औरत है।

तभी पंडिताइन सामने आ खडी हुई कहने लगी 'लेटे ही रहेगे रोटी नहीं खानी?

गडबड है कुछ?'

वे उठ बैठे, बोले, 'गडबड कुछ नहीं, और है तब बहुत बडी।'

'क्या?'

'गाँव मे नई चर्चा सुनी कुछ?'

'सुनली, अपने ही बारे मे तो?'

'हाँ, मैंने कितनी बार कहा था तुम्हे, पानीघर मे साँप मत पाल, तकलीफ खडी हो जाएगी, पर तू कब माने? नहीं-नहीं करते बीमारी गले बाँध ली? पता नहीं तलवार यह कब तक लटकी रहेगी गर्दन पर?'

'ऊँट लगडाए और गधा दागा जाए यह भी कोई बात हुई?'

'हाथ कगन को आरसी क्या हो रही है न?'

'पर हित हानि, लाभ जिन केरे।' इसमे किन्हीं पियक्कडो का हाथ है?

'हाथ किसी का हो, बदनामी तो अपनी ही है, तुम्हे बुरा नहीं इसका?'

'बिल्कुल नहीं।'

'क्यो'

'ऐसी बदनामी तो कोई कभी भी गढ सकता है।'

'तो गले पडा ढोल बजाएँ कि नहीं?'

'हर आदमी अपनी डेढ ईंट की मस्जिद खडी करता है तो करे, हम अकारण पेट क्यो फुलाएँ?'

'तो हम होठ बन्द किए सुनते रहे?'

'कौन कहता है सुनो, तकलीफ होती है तो मत सुनो, घर बैठो। आप थाने भी जाएँ तो आपके पास आधार क्या है? अफवाहे बुद्बुदो की तरह उठती हैं और बिखर भी वैसे ही जाती है।'

वे उसकी ओर देखने लगे प्रत्युत्तर खोजते से।

वह फिर कहने लगी, 'घोडा तो उछला ही नहीं, काठी पहले ही उछलने लगी? आपका न चौधरी ने कुछ कहा न चौधराइन ने और न सरपच ने ही, फिर आप हथियार पहले ही क्यो डालते हैं? दुनियाँ कूकरी है भुसना उसका स्वभाव है थक जाएगी भुसती-भुगती तो बन्द हो जाएगी अपने-आप। आप सोचते हैं कि गगी का जायज सहयोग कर हमने बुरा किया? इस भलाई से डर कर किसी पीडित और अभावग्रस्त के लिए, आगे के लिए हम हाथ अपने बन्द करले?'

'यह मैं कब कहता हूँ?

'नहीं कहते हैं तो फितूल का बोझ उतार दे—सिर से। चर्चा के इन तिलो म तत मुझे तो लगा नहीं? गलियो मे इकट्ठा किए हुए कचरे की आग है धुआ छटा और आकाश साफ हुआ। एक बात और बडाई तो अपनी हम रोज ही सुनते है कभी झूठी बदनामी भी थोडी सुन लेनी चाहिए, मुनाफा ही है। इस पर भी मगर आपका [illegible] नहीं [illegible] तो चलो चौधरी के यहाँ मैं भी चलूँ आपके साथ? क्या लोग कहते हैं और क्या [illegible] है

सपेरा साफ हो जाएगा।'

'और मानले चौधरी ने कह दिया, मूठ-साँच तो भगवान् जाने पर बहम तो आप पर पूरा है—घरवालो का तब?'

'तब क्या, योगियो के कान सुनार नहीं छेकते? मैं उसी समय अपने पाँच-सात तोले के गहने उनके आगे रख, कहूँगी कि पच्चीस-तीस हजार के तो ये हैं ही? आप इन्हे बेच-बट, वैसी अगूठी ले आएँ, कुछ बचे इनमे तो देदे मुझे, और कम पडे तो बतादे मुझे, मैं और दे दूगी।

'इस तरह हम किस-किस को देगे?'

'किस-किस का मैं नहीं सोचती, बात मैं है उसकी कर रही हूँ। ढाई-तीन तोले का हार न पहनने से मेरा गला, गला नहीं रहेगा? कर्णफूल नहीं तो, कान, कान नहीं रहेगे? गीदड-भबकी के आगे पूछ हिलानेवाले शेर, धरती-माता ने अब तक तो पैदा किए नहीं, आगे की चिन्ता हम करे ही क्यो? आपकी पसन्नता के लिए मैं घर भी अर्पण कर सकती हूँ—उदासी छोडे आप।'

वे उसकी ओर अवाक् देखते रहे कुछ क्षण। अन्त करण उनका गद्गद् होगया। भावातिरेक मे उनके हृदय पर नाच उठा, 'ऐसा तो मैंने कभी नहीं सोचा था कि इस पाषाण के नीचे सारा ही हरा सोना है, निर्गन्ध नहीं, सुगन्ध से सराबोर।' जितनी समीप वह उन्हे इस समय लगी, उतनी पहले कभी नहीं। उनके होठो पर सहसा फूटा, 'ऐसी ही बात है तो मैं अभय हूँ।'

वे उसके साथ रसोईघर की ओर इस तरह चल पडे जैसे त्यागवृत्ति के साथ धर्म चल रहा हो।

लम्बाई पकडती बिन पखो की चर्चा एक दिन गगी के कानो तक भी जा पहुँची। वह बडी उदास हुई, सोचने लगी, हे भगवान् हम अभागो के पीछे, दादा के घर पर कोई आफत न उतरे। लगता है, हम बीस कोस इधर आगए, आफत की कुतिया तब भी हमारे कदम सूघती यहाँ आई रहेगी। हमे, वह फिर वहीं ले जाएगी।' उसका रोम-रोम थरथरा उठा।

पूरी सामने खडी पसीना सुखा रही थी।

दादी की तरफ देखती बोली 'दादी क्या सोच रही हो?'

'बेटी सोचने जैसी कोई बात हो तो बताऊँ?'

'कुछ तो है ही?'

'बेटी लगता है तेरी तकदीर लिखते बेहमाता ने दुख ही लिखा इतने मे, उसकी कलम टूट गई या स्याही खूट गई क्या हुआ वही जाने पर यह निश्चय है कि दुख के दो अक से आगे वह और कुछ न लिख सकी।'

'पर दादी ऐसा कैसे कहा तूने?'

उसने पूरी बात बताई। पूरी भी काँप उठी उन देहया-दयावालो की वह घटना याद कर-कर।

डोकरी ने गजानन के आगे भी जिक्र किया।

उसने कहा, 'मौसी, यहाँ बालको और पेड-पौधो की सेवा कर, न मुरलीदादा का कुछ होगा और न तुम्हारा ही, मेरे से लिखवाले चाहे। अफवाहो के तले न पैर होते हैं और न धरती। यहाँ कितनी तरह के पेड-पौधे लगे हैं, आओ दोनो, बताऊँ तुम्हे।'

वे उसके साथ चलदीं।

बीस

बाल-मन्दिर कस्बे से लगभग एक कीलोमीटर दूर है—एक पगडडी से जुडा। एक बीघा जमीन पर इसी का बोलवाला है। एक ओर इसके कस्बा और तीन ओर निर्आबाद भूमि—जिस पर रेगिस्तानी वनस्पति विरल रूप मे छितरी है। गर्मी मे वह उदासी से ढकी रहती है, वर्षा मे हँसती हुई ऊपर उठती है।

फलसे मे घुसते ही पूर्व की ओर खुलते पाँच कमरे हैं, दो हैं पक्के और शेष की छते सरकियो और सरकडो से ढकी हैं। गच उनके कोमल बालू के है—इतनी कोमल और इतनी सुहावनी कि रेशम के गद्दे भी पानी भरते हैं उसके आगे। कमरो के सामने खींप और सिणियो से बनी एक झोपडी है, जिसमे पानी की मटकिया धरी रहती है। दक्षिणी छोर पर उत्तर की ओर खुलती एक कोठडी है—पक्की।

शाला के नाभि प्रदेश पर हवा के साथ झूमते नीम, पीपल और सरेस के पेड खडे हैं—बाल-मित्रो की तरह एक गोलाई मे बन्धे। पूरे एक दर्जन। आयु इनमे, पॉच साल से अधिक किसी की भी नहीं, पर प्रेम इनका है सनत्कुमारो के हृदयो-सा निर्मल और स्नेहिल। लगता है अगले चार-पाँच सालो मे ये एक रम्य झुरमुट का रूप धारण कर दर्शको को दूर से ही अपनी ओर खींचेगे। तीन अध्यापक और सौ-सवासौ बालक-बालिकाए हैं यहाँ। अर्थ-दृष्टया, तीन चौथाई बालक साधारण परिवारो से आते हैं और शेष सुदामा परिवारो से।

गर्गी ने डेरा अपना इसी बाल-मन्दिर की कोठडी मे लगा रखा है। फर्श इसका सीमेंट का और छत जोधपुरी पट्टियो से ढकी है। दीवारे हरी, दो खुली अलमारिया और सामने की दो खूटियो पर टगा वीणा-पाणि का एक नयनाभिराम फोटू—कॉच मे मढा। पण्डितजी ने छ माह पहले इसे खरीदा था—अपनी मधुर कामनाओ के शतदल मे बन्ध कर। सोचा था, 'अगले नए सत्र से इसी मे जमूगा। घर केवल रोटी खाने के लिए एक बार जाऊँगा। मेरे चिन्तन-मनन का स्थल यहीं होगा वाणी के चरणो मे—नई ऊर्जा ग्रहण करता।'

उनके इस निश्चय पर ऐसा सकेत तो कभी स्वप्न मे भी नहीं रेंगा था कि वे अपने पदार्पण से पहले ही उसे किसी दूसरे को सौंप एक स्वर्गिक सुख का अनुभव करेंगे। आज गर्गी के परिवार को उसमे जमता देख, उन्हे लगा माँ शारदा ने मेरे पर सचमुच ही कृपा की है, वे चित्र की ओर देखते गद्गद् होगए।

कोठडी के बगल मे दो टीन डलवा कर रसोईघर की व्यवस्था भी उन्होने करदी।

सुबह-शाम दूध आध-आध कीलो पूरी ले आती है। अवकाश के क्षणो मे ईंधन वह आसपास से बीन लाती है। जरूरत का सारा सामान पडितजी ने दिलवा दिया है। चूल्हा दोनो समय जलता है। पेटभर खाते हैं और जीभर सोते है। चिन्ता न झोपडे पर फूस की, न चूहो के उत्पात की और न गारे-गोबर की। न किसी यजमान का मुँह ताकना और न किसी के आक्रोश का शिकार होना। अन्धे को दो आँखे चाहिए, वे गई मिल।

कमरो की सफाई, पेडो की सिचाई और बालको की जलसेवा, बस, मोटा बोझ इतना ही था–पूरी के कन्धो पर और उसे वह फूल की तरह हल्का समझ हँसती-कूदती सम्पन्न कर लेती।

शाला इस समय सुबह की है। छुट्टी बारह बजे होजाती है। कमरो की सफाई और पानी भराई वह शाम के पाँच-छ बजे कर लेती है और पेडो की सिचाई सूर्योदय होते-होते सहर्ष। बिजली है नहीं, इसलिए रोटी सूर्यास्त से पहले ही खा–पी, वे एक कमरे की छत पकड लेते हैं।

आज हवा बडी तेज है और अन्धेरा है खूब गाढा। ग्यारसी सोगया था। दादी-पोती बैठी अपने सुख-दुख की करने मे लगी थीं। पेडो से अबाध आती हवा की सनसनाहट पूरी के कानो से टकरा उसमे भय और सशय उत्पन्न कर रही थी।

उसने कहा, 'दादी, इस समय कोई चोर-उचक्का आजाए तो?'

'नगा क्या धोए, क्या निचोए बेटी? चोर-उचक्का यहाँ क्या लेगा? उपासरे मे कौनसे काँच-कथे रखे हैं? आ ही जाए तो मैं पहले ही कह दूगी, आटा-दाल पडा है, वह तू ले जा भाई। डर माया को है, काया को तो नहीं।

'पर पास-पडोस मे यहॉ कोई आदमी भी तो नहीं, आवाज दे भी तो किसे दे?'

'किसे बताऊँ बेटी?'

'दादी इस समय अपनी कुतिया होती तो?'

अरे फिर तो कहना की क्या था? उसका तो पूरा सहारा होता।'

अपन छोड आए उसे, बेचारी उदास तो बहुत हुई होगी?'

हुई क्यो नहीं वह क्या समझती नहीं? पता नहीं किती बार आगन सम्हाला होगा उसने किती बार पिछवाडे मे गई होगी? रात को चैन की नींद थोडे ही ली होगी?'

तभी सहसा उन्हे कोई खाली पीपा पिटता सुनाई पडा–सामने कुछ दूर।

पूरी चौंकी बोली 'दादी, इस समय पीपा कौन पीट रहा है?'

वह आवाज की तरफ मुँह करके खडी होगई। गगी भी उसके पास जा लगी। सामने कुछ दूरी पर उन्हे अलाव की लुक ऊपर उठती दीखी।

गगी ने कहा अरे अपने से थोडी दूर काकडिया-मतीरो की बाडियाँ नहीं?'

है तो सही दादी।'

किसी की बाडी मे हरिण या आवारा पशु घुस आया होगा या आ न जाए कोई, पीपा उसे भगाने के लिए ही पीट रहा है कोई माली।'

आवारा पशु का नाम सुनते ही उसके मन पर उसका अतीत तैर उठा। उसे वह महिया

याद आगया और उसके साथ ही, उससे उपजी पीडा भी नाच उठी उसकी आँखो के आगे।

उससे उबरते उसने कहा, 'यह तो अपने से ज्यादा दूर नहीं दादी?'

'दूर कहाँ, पास ही है, अपने पडोस में ही समझ तू।'

पूरी का सशय शान्त हुआ और भय भी। दोनो सोगई वे।

अगले दिन रविवार था। पडितजी सुबह-सुबह ही आगए। पूरी सिचाई कर चुकी थी। वे एक वृक्ष की छाह मे आ बैठे। पूरी को आवाज दी उन्होंने। वह आ खडी हुई।

उन्होने कहा, 'सिचाई कर ली बेटी?'

'हाँ।'

'शाला मे आने का सजोग बैठ गया तो, इससे कुछ लाभ भी उठा?'

वह समझी नहीं, मौन हुई उनकी ओर ताकने लगी।

'कुछ पढ भी ले?' उन्होने कहा।

एक वार उसने हल्का-सा उनके सामने देखा और फिर नीचे देखने लगी।

उन्होने कहा, 'बेटी, तू रोज यहाँ कई तरह के पेडो को सींचती है न?'

'हाँ।'

'और अपना पेड नहीं सींचेगी? सूखा और कमजोर रखेगी उसे? छायादार और पुष्ट नहीं बनाएगी उसे?'

वह फिर उनके सामने देखने लगी—असमजस मे?

'बेटी तू, भी पेड है, पढना ही उसे सींचना है। तू सोचती होगी पढना कठिन है, पर बात ऐसी है नहीं। यहाँ आकर नया चूल्हा तैने ही तो बनाया है?'

'हाँ।'

'उसमे लकडियाँ भी तू ही लगाती है?'

'हाँ।'

'गोल-गोल रोटियाँ भी तो बेलती और सेकती है तू?'

'हाँ।'

'गाँव मे अपनी दीवार पर पेड-पौधे भी तूने ही तो बना रखे थे?'

'हाँ।'

'तो समझले, पढना-लिखना तेरे लिए बाएँ हाथ का खेल है, वह तुम्हे आगया ही समझ।'

पाटी-बरता वे साथ लाए थे।

उन्होने कहा 'बेटी, कुछ अक्षर बना रहा हूँ, रोटी-लकडी और चूल्हे-चाकी जैसे तू उन्हे ध्यान से देखती रह।'

उन्होने अ से ऊ तक एक-एक अक्षर हर मोड पर रुककर धीरे-धीरे बनाया फिर कहा, 'ले तू बना अब ऐसे ही।'

उसने बना दिया, 'इ' मे थोडी दिक्कत हुई। तब उन्होने उसके हाथ को [illegible]

बनवा दिया–एक बार ही नहीं कई बार। शेष मे उसे कोई असुविधा नहीं हुई।

उन्होने कहा, 'इस हिसाब से तो तू, पन्द्रह-बीस दिन मे ही पोथी पढने लगेगी।'

वे एक-एक अक्षर बोलते गए, उनके पीछे-पीछे वह भी बोलनी रही। ऐसा उन्होने दो बार किया।

फिर वे बोले, 'आ' लिख।'

लिख दिया उसने।

उनके होठो पर अनायास उछला, 'शाबाश बेटी, अब ई (बडी) लिख।'

लिख दी उसने।

'अब दोनो बोल तो?'

आ, ई बोल दिया उसने।

'बहुत बढिया पूरी, विद्या आई तेरे को तो। तुम्हारी कोठडी मे माँ सरस्वती का चित्र है कि नहीं?'

है।'

'उसे सोते-उठते पार्थना किया कर, माँ, मेरे हृदय पर उतर तू, मैं जल्दी ही तेरे आगे पोथी पढू और सुन्दर-सुन्दर लिखू।'

उन्होने छ अक्षर और लिख दिए। अपने पीछे-पीछे, बुलवा भी लिए उसस।

दो-चार मिनट गगी से बाते कर चलदिए वे।

पूरी सोचने लगी, 'मैं भी किताब पढने लगूगी और मुझे भी लिखना आजाएगा तो सबसे पहले एक पत्र लिखूगी मुरलीदादा की बहू को। यहाॅ का सारा हालचाल लिखूगी। फिर एक पत्र लिखूगी पदमा दादी को। वे कितनी राजी होगी? अब तो जल्दी-जल्दी पढू तो ठीक है। जल्दी-जल्दी लिखू तो कैसा? मैं सीख गई तो ग्यारसी को भी सिखा दूगी। पोथी से दादी को भजन सुनाया करूगी,' वह खुशी से भर उठी। अन्धकार और ऊहापोह से ढकी उसकी धरती पर एक नई किरण पसरने को मचल उठी।

उर्वर धरती, उत्तम मौसम, समय पर्याप्त, और सिर पर गुरू का पूरा हाथ। महीनेभर मे वह पहली-दूसरी की सीधी हिन्दी आसानी से पढने लगी। पहाडे और गिनती का अभ्यास भी साथ-साथ चलता रहा।

एक दिन पडितजी आगए सुबह-सुबह ही। हाथ मे उनके मेज-घडी थी। पूरी से उन्होने कहा, 'बेटी, कई तो आदमियो का चेहरा पढ लेते हैं, घडी का चेहरा पढना तो तू ही सीख।'

'सिखादे सीख लूगी,' उसने धीरे से कहा।

वे घडी की चाबी घुमाते रहे, सूइया घटा और मिनट की घूमती रहीं, वे समझाते रहे। आध-घटा भी तो नहीं लगा, घडी देखना और उसमे चाबी भरना सीख गई वह। बडी राजी हुई और अपने मे एक नई बौद्धिक ऊर्जा अनुभव करने लगी।

'बेटी कल से शाला की घटी अब तू ही लगाया करेगी–घडी देखकर।'

कालाश का समय एक पन्ने पर लिख लिया उसने। घटी लगाने मे कोई असुविधा नहीं हुई उसे।

ग्रीष्मावकाश शुरू होगया और शाला डेढ महीने के लिए होगई बन्द। दौड-धूप कर पडितजी ने बिजली ले ली। अन्धकार का तिरस्कार करती, गगी की कोठडी भी जगमगा उठी और जगमगा उठीं पूरी की शत-शत आशा-अभिलापाएँ भी।

लम्बे दिन और छोटी राते। लू और गर्मी। आए दिन आँधी और उमस। दस बजते ही धरती जलने लगती और आकाश को अन्धा बनाते धूल लगती उछलने।

पडितजी सुबह-सुबह आते, और घटा-सवा घटा बडे प्यार और मनोयोग से उसे पढाते। प्यासा कौआ और चालाक लोमडी जैसी लघु कथाएँ उसे सुना, स्वतन्त्र रूप से लिखना दे जाते। व्याकरण के सामान्य अगो का क्रमिक ज्ञान उसे करवा अभ्यास के लिए काम दे जाते। लिग, वचन और कारको के प्रयोग-पहचान उसके ज्ञान के साथ जुड चुके थे। पत्र, प्रार्थना-पत्र, और कई वर्णनात्मक लघु लेख भी वे लिखवाते। रूपरेखा बताते त्रुटियाँ सुधारते और पुन लिखवाते।

पूरी पाँच बजे ही उठ जाती। मेज-घडी उसकी कोठडी मे ही रखी रहती। सोने से पहले वह उसमे जाग भर देती।

शाम के ठढे पहर मे दादी और भाई को लिए यदाकदा वह छाणे और लकडियाँ बीनती, बाडियो की तरफ निकल जाती। बाडियो मे काकडिए और लोइए चल पडे थे। वह देखती ये लोग कितनी मेहनत और लगन से शाक-सब्जियाँ पैदा करते हैं। यह बरसती आग और धूल उछालती आँधियाँ, दिन को चौकसी और रात को अलाव जगा-जगा, पीपे खडखडा हरिण और आवारा पशुओ को भगाते हैं। सिर पर छाणो से भरा बट्ठल होता, तब भी वह बाड के ऊपर से बाडी मे झाकती। बिलो के पास चूहे पकडने का पिंजरा रखा देखती वह फिर नजर इधर-उधर फैंकती चल देती।

एक दिन रास्ते से थोडा हट, फलसे पर बूढा माली बैठा चिलम खींच रहा था। दादी साथ थी।

पूरी ने कहा, 'बाबासा, राम-राम।'

'राम-राम बेटी, पहचानी नहीं?'

बट्ठल उतार दिया उसने, बाड की पसरती छाया मे, वे तीनो वहीं बैठ गए।

गगी ने सारा परिचय दिया। पूरी ने पिंजरे के बारे मे अपनी जिज्ञासा जताई।

माली ने कहा, 'बेटी, चूहे बडा उजाड करते हैं बाडी मे। बेलो को काट देते हैं फल कुतर डालते हैं। दिन की गर्मी मे तो बदमाश बिल छोडते नहीं, रात को निकलते हैं चोरो की तरह। दो-चार तो रोज फँस ही जाते हैं पिंजरे मे, दूर छोड आता हूँ उन्हे। इस साल ये हैं ही कुछ ज्यादा।'

'जहर की गोलियाँ डाले तो?'

'ना बेटी, बुढापे मे यह पाप, जी नहीं करता। हमारे भाग्य का हमे मिल जाएगा उनके ... का थोडा-बहुत ये खा लेगे।'

कुछ देर विश्राम कर वे चलदीं।

रास्ते मे पूरी ने कहा 'दादी अपनी कोठडी के एक ओर काफी जगह पडी है तू क...'

तो पाँच-सात क्यारियाँ मैं भी तैयार करलू? महीने-बीस दिन मे जब भी बरखा होगी गवार और काकडिया-मतीरो के बीज अपन भी डाल देगे उनमे।'

'डालदे तो नुक्सान क्या है, धरती-माता बीज पेट मे तो रखेगी नहीं पानी मिला तो अकुर फूटेगे ही।'

पूरी ने एक दिन गुरूजी से भी पूछ लिया। वे बडे राजी हुए। फावडे से जमीन रोज पोली कर-कर, कई क्यारियाँ उसने तैयार करके छोडदीं। बीज भी आगए। पतीक्षा थी तो केवल वर्षा की।

अगले दिन पूरी ने दो अन्तर्देशीय-पत्र लिए गुरूजी से। दोपहर का समय था। दादी एक नीम की सघन छाया मे लेटी थी–नींद मे नहीं जागती। भाई पसरा था–ठढी बालू पर–गहरी नींद मे।

पूरी ने कहा,'दादी, एक कागज लिखू मुरलीदादा की बहू को और एक पदमा दादी को।'

'लिख लेगी तू?'

'क्यो नहीं दादी?'

'वाह बेटी, लिख फिर, कि हम यहाँ बडे राजी-खुशी हैं। दादी आपको बडा याद करती है। वह रोज अरदास करती है–रामजी आप पर सुख बरसे। गली-मुहल्ले मे सबको राम-राम लिख मेरा।'

'लिख दूगी दादी।'

उसने लिखा

पूज्य दादीसा-दादोसा प्रणाम।

गाँव छोडते समय दादीसा, मैं बडी उदास थी। सोचती थी, क्या होगा हमारा? यहाँ ठौर नहीं तो आगे भी मुश्किल है। पर आपके आसीरवाद से यहाँ बडा आराम है। ऐसा आराम मैंने न कभी देखा, न कभी सुना। मैंने तो भूख-प्यास, मार-पीट और आँसू ही देखे।

दादीसा, सुबह-सुबह ही यहाँ पेडो को सींचती हूँ। पानी भरती हूँ। पाठशाला की घटी लगाती हूँ। दादी बालको को पानी पिलाती है। रोटी बडे आराम से मिलती है। पानी, बिजली सब है। हमारी कोठडी मे भी बिजली है। सरस्वती का एक फोटू टगा है उसमे। बहुत ही सुन्दर। उसको प्रणाम कर, मैं पढती हूँ, वेल्हे समय मे। पहले गुरूजी कुछ बता देते हैं।

दादीसा मेरी माँ मर गई आप मेरी माँ हैं। बापू भी नहीं रहे, आप मेरे बापू हैं। ग्यारसी तो आपका बेटा जन्म से ही है।

दादोसा किसी की भी सिफारिश नहीं करते। अपने बेटा-बेटी की भी नहीं। पर मेरे लिए नियम अपना ताक मे रख दिया। माला छोडकर, मुझे आग मे से खींच लाए। उनके बिना ऐसा कौन करता? वे नहीं लाते तो मैं मर गई होती। इसमे शक ही नहीं। दादी रोज अरदास करती है 'रामजी मालकन पर सुख बरसे हर समय।' गुरूजी दादी का बडा मान रखते है। दादी सोचती है मैंने अपना मरा बेटा फिर पा लिया। इतना ख्याल

तो मेरा बाप भी नहीं रखता था उसका। ग्यारसी और मेरा, खूब लाड रखते हैं वे।
बस इतना ही।

आपकी बेटी
पूरी।

ऐसा ही एक पत्र उसने पदमा को भी लिखा—आत्मीयता से भरा।

मुरलीदादा खाट पर बैठे कोई किताब खोले हुए थे। पडिताइन ने पूरी का पत्र उनके आगे ला रखा।

नजर ऊपर उठाते उन्होने कहा, 'किसका है?'

'पढ लीजिए।'

पढने लगे। पत्र का समापन करते-करते आँखे उनकी बरबस चू पडीं।

उनके मन पर आ उतरा कि मेरी थोडी-सी दौड-धूप का इतना बडा पुरस्कार मिलेगा कभी मुझे, मैं सोच ही नहीं सका था। भावातिरेक मे एक देवत्व उतर आया उन पर।

पत्नी से बोले, 'लिपि प्रशस्ता सुमनो लतैव, केषा चेतासि न मुदा विभरति ' अक्षर कितने सुन्दर हैं? ठान साफ करती, गोबर पाथती, और कचरा ढोती उपेक्षित-अपमानित भी सुअवसर पाकर पारस बन सकती है। मैंने अनेक बार उसकी ही उपेक्षा नहीं की थी—की थी अपने विवेक की भी, इसलिए कि उस पर एक अन्धा अहम् पसरा था।' उन्होने कहा, 'तू कागज लिखे कभी, तो मुझे भी कहना, दो पक्तियाँ मैं भी लिखूगा उसे।'

पडिताइन का आत्मसन्तोष किनारो तक आ लगा। वह चलदी और वे फिर व्यस्त हो गए अपने काम मे।

इक्कीस

दादी-पोती सूर्योदय से पहले ही नहा लेती। पेडो को सींच वे एक पीपल के नीचे बैठ जातीं। पोती हनुमान-चालीसा पढती और दादी बडे मनोयोग से सुनती। गगी की खुशी की कोई सीमा न रहती।

पीपल का पैर (तना) दबाती वह कहती, 'वाह नारायण तेरी लीला, मेरे कानो मे जहा औंधे बोल उतरते थकते ही नहीं थे, वहाँ आज उनमे हनुमान-चालीसा उतरता है? मुझे वह सपने मे भी तो कहाँ था? हथेली पर सरसो उगादी तूने?'

एक दिन पडितजी बात ही बात मे पूछ बैठे, 'क्यो मौसी, हनुमान-चालीसा, रोज सुनती हो न?'

'हाँ भाई, रोज ही सुनती हूँ।'

'आनन्द आता है।'

'अरे पूछ ही मत, सारा खेल ही उसका है। 'कुमति निवारहि, सुमति के सगी ' उधै

निरमल हो जाय, फिर चाहिए ही क्या? कुमति ही तो फोडा घालती है स को। कुमति मिट जाय तो सारा ससार सुखी न हो जाय? कुमति मिटे, मैं तो इसीलिए सुनती हूँ।

'कितना समय लग जाता होगा मौसी?'

'मेरे ख्याल से दो-ढाई मिट, मुश्किल से ही लगते होगे।'

'मौसी, दो-ढाई मिनट की लीलावाले इस छोटे से हनुमान-चालीसे की उम्र का ध्यान है तुम्हे?'

'नहीं भाई।'

'कहते हैं, चार सौ वर्षों से भी अधिक उम्र का है यह और आज भी वैसा ही बल्कि उससे भी कहीं ज्यादा तरोताजा। यह रोज अनगिन होठो पर नाचता है और अनगिन कानो मे गूजता है।'

'इतने बरसो मे तो गज्जू काल किले के किले चर गया होगा और इस पर कोई असर नहीं?'

'किले क्या मौसी, कितने ही नगर उजड गए और कितने ही नए बस गए. फिर बसेगे, फिर उजडेगे पर इसका बाल भी बाका नहीं होगा, जो सबके हित मे लिखा जाता है वह कभी मरता नहीं, रोज सुनाकर तू।' कहते हुए वे उठकर चलदिए।

वह उनके जाने के बाद वहीं बैठी, कई देर सोचती रही, कितनी बढिया बात कर गया वह 'जो सबके हित मे करता है—लगता है, जीना ही उसका है, बाकी तो रो-पीट, जीवन पूरा करते हैं—गली के कुत्ते की तरह। कहे ही, माँ कैसी थी इसकी, छाल अपने मूल का सभाव थोडा ही छोडेगी?'

पूरी ने आवाज दी, 'दादी?'

तार तब टूटा उसका।

मई बीत गई। पडितजी एक दिन गगी के पास बैठे थे।

गगी ने कहा, 'गजानन दिनभर खाली बैठी रहती हूँ, हाथ कुछ मैं भी हिलाऊँ रे?'

'पैसे जोडने के लिए?'

'पैसे जुडने के दिनो मे ही नहीं जुडे तो अब क्या जुडेगे। हाथ-पैर चलते रहे—जकडे नहीं, इसलिए कहती हूँ।'

'फिर तो ठीक कहती हो मौसी, चरखा ला दू?'

'यह तो मेरे मन की बात कहदी तूने, ला-दे। चरखा तो मेरा खूब काता हुआ है, नहीं-नहीं करते दो-चार घडी तो कातूगी ही। खाली घर भूतो का डेरा, मन लगा रहेगा।'

हरिजनो के बीसो लडके-लडकियाँ पढते हैं यहाँ। खादी उद्योगवाले कई शिष्य हैं उनके। चरखे की व्यवस्था उन्होने अगले दिन से ही करदी। गगी कातती, घटा-डेढ घटा। कभी पूरी भी कात लेती। काम और दाम, इससे सस्ता, सुन्दर और टिकाऊ क्या?

जून का एक ही सप्ताह और रह गया था। छात्रो को नए प्रवेश के लिए कोई रूपरेखा तैयार करनी थी। पंडितजी खा-पीकर, सिर पर अगोछा डाले शाला आगए। अपने कमरे

मे बैठ, काम करने लगे। ढाई-तीन घंटे होगए आँखो को कुछ थकान अनुभव होने लगी। चश्मा उन्होने एक ओर रखदिया, सोचा 'आँखे छिडक लू और पानी भी पी लू।'

उन्होने घडी की ओर देखा, तीन बज रहे थे। वे बाहर आगए। हवा तेज थी और गरम भी। आकाश गर्द से ढका था। उसमे डूबता सूरज अन्धी आरसी की तरह उदास लग रहा था। वे कोठडी की ओर चल दिए कोठडी का दरवाजा, दो-ढाई अगुल ही खुला होगा किवाडो के पीछे कोई ईंट रखी हुई थी। उन्होने सोचा, 'इस लू मे लेटे होगे सारे बिना मतलब क्यो किसी के आराम मे बाधा डालू, पानी ही तो पीना है, झोपडी मे ही पी लूगा।'

कदम वापिस मोडने से क्षणभर पहले, कपाटो से छनकर आते स्वर धीमे पर लयबद्ध स्पष्ट भी और सुहाते भी, उनके कर्ण-कुहिरो से टकराए। वे किवाडो की तरफ दो कदम और बढ गए और कान देकर सुनने लगे

चाल रे चरखला चाल, हाल रे चरखला हाल।
चरक-मरक फिरै घेरणी, मघरो-मघरो चाल,
चाल रे चरखला चाल।।
गुड्डी तेरी रग-रगीली, तकली चक्करदार
चोखो बण्यो दमकडो तेरो, कूकडियै री लार,
हाल रे चरखला हाल।।
कातणआळी छैल-छबीली, बैठी पीढो ढाळ,
महीं-महीं पूणी कातै, लम्बा काढै तार,
चाल रे चरखला चाल।।

गाना सुन लिया उन्होने। एक बार प्यास भी भूल गए वे और आगो की थकान भी। प्रसन्नता नाच उठी उन पर, पर न राग की सरसता से और न गीत की नवीनता से।

उन्होने सोचा था, 'इस उमस मे पसीना पोछते ये सब ऊँघ रहे होगे पर उन्हे लगा नदी यहाँ न रेत की, न मौसमी और न मन्दगामी ही कोई, प्रत्युत श्रम के सागर से प्यार करनेवाली गगा है–हिरदै हिमालय से निकली। उग्र लू की नीरस साय-साय, न इसकी सरसता को सुखा सकी है और न तोड सकी है इनके बढते जीवन-तार को भी कहीं से।

इनकी जीवन्तता उनकी चेतना पर आ उतरी।

उन्होने आवाज दी, 'पूरी?'

और दरवाजा तुरंत खुला।

गगी ने कातना बद कर दिया बोली आ गजानन?'

'आया मौसी।'

'बोल भाई?'

'अभी-अभी तू चरखे का गीत गा रही थी?'

'अरे क्या गा रही थी, पूरी ने कहा, दादी चरखेवाला गीत तो सुना, तो गुनगुनाने लग गई यो ही।'

'अच्छा किया, गरमी की नीरसता दूर कर, तूने सरसता भरदी कोठडी मे?'

'तेरी मरजी आए सो कह।'

'तू ने गाया, कातणवाळी (कातनेवाली) छैल-छबीली, पर तू तो डोकरी है?'

यह सुन पूरी मुस्करा उठी।

गगी ने कहा, 'पर यह गीत डोकरियो के लिए थोडा ही गढा है किसी ने?'

'तो?

'बुढापे मे भाई शरीर ही पूरी तरह नहीं सम्हलता तो नया अभ्यास क्या कर लेगा कोई? और उसमे भी फिर महीन? राम-राम कह। उसमे तो जवानी का अभ्यास ही काम आएगा और जवानी खरच करदी राग-रग मे, और तेरी-मेरी मे, तो बुढापा बिगडा कि सुधरा?'

'बिगडा ही।'

'और जवानी मे जिसने बारीक से बारीक कातने का अभ्यास किया उसके घर दिवाली बारह मास नहीं हँसेगी?'

'जरूर हँसेगी मौसी।'

'छैल-छबीली उमर को मेहनत की ओर मोडने के लिए ही यह गीत गढा है किसीने, मै तो ऐसा ही सोचती हूँ—गज्जू।'

उन पर अपना पाडित्य हावी हो उठा।

उन्होने कहा 'पर असली बात कुछ और है मौसी?'

'बता भाई मैने तो लठिया धूल मे यो हीं दे मारी, काला आखर भैंस बराबर, पढे के चार आँखे, किसी ने यो ही थोडा ही कहा है?'

'यह शरीर अपना चरखा है मौसी।'

'है भाई चरखा ही है।'

'रामजी इसके बढई हैं।'

'बढई तो वे ही है, और तो ऐसा कौन घडे?'

'इस पर जो ऊँचे और अच्छे विचार कातता है—महीन और लम्बे छैल-छबील वही है—सदा सुहागिन आत्मा। इसके लिए जाति धर्म उम्र, लिग भेद, कोई भी बाधक नहीं।'

'तेरी बात ऊँची है भाई तू पंडित है सासतर जाननेवाला।' और वह उनकी ओर देखने लगी।

'बात सही कात।'

वे वहाँ से उठकर चल दिए।

पूरी ने भी इनकी बाते बडी तन्मयता से सुनी।

वे अपने कमरे मे आ बैठे। टाट पर हाथ फिराते-फिराते सोचने लगे 'मासी को मैने जो ज्ञान ओढाया, वह रटारटाया, उधार लिया और दरसनिया है—पलायन के नजदीक श्रम और सघर्ष से दूर। मासी ने जो कहा, वह अपना है और है धूप की आभा की तरह चमकता। समाज व्यवस्था की रीढ है वह। श्रम का अभ्यास आदमी जवानी मे न करे तो कब करे? जवानी गवादे गधा-पच्चीसी मे तो बुढापा बिगडना ही है। जवानी मे काता है इसने—खूब महीन, इसीलिए तो अभ्यास की खुराक पर पले हाथ इसके इस उम्र मे भी थकना नहीं जानते? बुढापा इसका आनद है और कातना सगीत। बुढापे के सुख-दुख की जड, जवानी का अभ्यास ही तो है? ठीक ही तो कहा उसने। इससे अच्छे और ऊँचे विचार और क्या होगे? केवल विचार—श्रम वियोजित विचार, नमक-मिर्च भी तो नहीं जुटा सकते। कोरी ज्ञान कताई न खेत जोत सकती और न खलिहान पैदा कर सकती। श्रम के प्रति आस्था पैदा करे, सार्थकता उसी, ज्ञान-ध्यान की है।

मैंने जो वहम पाल रखा था कि निरक्षर अशिक्षित होता है यह भूल थी मेरी। शिक्षित की पहचान केवल साक्षरता ही नहीं।

उन्हे अपना बौनापन अनुभव होने लगा।

इस ग्रीष्मावकाश मे पूरी ने पढाई की एक निश्चित पगडडी पकडली। उस पर रोज कुछ न कुछ आगे बढना उसकी दिनचर्या का एक प्रमुख अग बन गया। उसका मन करता मेरी यह पगडडी, कब किसी बडी सडक से जुडे, कब मैं उस पर सरपट दौडू और कब मुझे कोई मजिल दीखे?

सरल कहानिया, चुटकले और कविताएँ पढने मे उसे बडा आनन्द आता। पडितजी हर सप्ताह उसे बाल-जगत के दो-चार मासिक पत्र ला देते। वह उन्हे आद्योपान्त पढती पर पढती अधिकतर बिजली के प्रकाश मे ही। दिन मे कुछ देर कातती अवश्य। कती-कती करते महीने मे तीन सौ-चार सौ तो हो ही जाते और उन्हे इसका पता तक नहीं चलता।

पडितजी ने पूरी के नाम डाकघर मे खाता खुलवा दिया। जब भी पैसे आते जमा कभी वे करवा देते, कभी उसे साथ ले जमा उसके ही हाथ से करवाते। जरूरत पर कभी निकलवा भी लाती वह। डाकघर के इस लेनदन से वह पूरी परिचित होगई। उसमे उससे आत्मविश्वास जाग उठा और स्वावलम्बन के प्रति आस्था उसकी बनवती होकर उसके स्वभाव क्षितिज पर चमक उठी।

दादी गाजर-मूली धो-धो कर देती बालको को बडे प्यार से। बालको की पसन्नता का क्या ठिकाना? वह उन्हे देते हुए आकाश की ओर झाक-झाक कहती, 'रामजी इन्हीं के पुन-परताप से दो टैम पेटभर रोटियाँ मिलती हैं, ये फूले-फले इनके हाड-पग नीरोग रहे गरम हवा का झोका छुए भी नहीं इन्हे। ये न हो तो हमारा यहाँ क्या काम?' गद्गद् होती वह एक अपूर्व सुख मे डूब जाती।

सुबह-शाम कुछ देर दादी-पोता क्यारियो के पास बैठ मोर और तीतर उडाते। उनके पीछे भागते ग्यारसी के व्यायाम भी हो जाता और मनोरजन भी।

पूरी शाला की बाड रोज सम्हालती। जहाँ भी उसे बाड के कमजोर पडने की आशका लगती वह कीकर आसपास से काट लाती, काटे वहीं लगा देती।

पंडितजी ने एक-दो बार देख लिया उसे।

उन्होने कहा 'पूरी यह क्या कर रही हो, ये गलते-गलियारे मैं अपने आप ठीक करवादूगा।'

गगी ने कहा, 'क्यो इनके हाथो पर मेहन्दी तो नहीं चढी हुई, जो कुल्हाडी पकडते ही झड जाएगी? अपग भी यह नहीं? अपना काम है, किसी पर अहसान थोडा ही करती है? करने दे गज्जू।'

वे आगे नहीं बोले, पर पूरी के लिए, उनके हृदय का कोना और अधिक चौडा होगया। वे सोचते, 'दो-चार साल मे इसे दसवीं करवादू किसी तरह तो यह पढाने भी लग जाएगी और पढ भी लेगी। जीवन बन जाएगा इसका।'

सुख की घडियो के मृगछोने जीवन वन मे छलाग लगाते कब ओझल हो जाते हैं, पता ही नहीं लगता। शाला मे आए गगी के परिवार को यह पाँचवा साल है, पर कल की-सी बात लगती है उसे।

ग्यारसी दूसरी मे पढने लग है। हाप्पैंट, कुर्ता और जूते पहने, कधे से बस्ता लटकाए बालको के साथ उछलते-कूछते गगी उसे देखती तो उसके शिशु जीवन की प्रारम्भिक घडिया उसकी ऑखो के आगे नाच उठतीं। मन ही मन, वह मुरलीदादा की बहू की कृतज्ञता प्रकाशती एक विलक्षण व्यामोह मे डूब जाती। उसे याद आता, बीमार चूहे-सा हिलता-डुलता बित्तेभर का एक पिंड, अगला पल पता नहीं लेगा कि नहीं, वह आज छलागे भरता नहीं थकता, वाह प्रभु तेरी माया, वाह पडिताइन तेरा प्यार–किसको भूलूं किसको याद करू?' उसकी बूढी ऑखे टपटप झरने लगतीं।

पूरी का व्यक्तित्व भी प्रगति के पथ पर दौडता आगे बढ रहा था। शरीर उसका भरने लगा था और चेहरे पर कान्ति झलकने लगी थी उसके–विकासित होती प्रतिभा की। सोच मे उसके शुरू होने लगी थी परिपक्वता और जीवन अनुभव मे उतरने लगी थी जागरूकता। चेतना पर उसके केवल अपने परिवार का बोध ही जागरूक नहीं था एक सामाजिक बोध भी अगडाई लेने लगा था उसमे। अपने टोले का दयनीय और अन्धकार ओढा वातावरण भी उसकी ऑखो के आगे घूम जाता चलचित्र की तरह यदा-कदा। वह सोचती यहाँ भी कभी दीपक जलेगा? मुश्किल है।

इस अवधि मे उसने पढाई ही नहीं की, स्वेटर, दरी, निवार और टाटपट्टी बुनना भी सीख लिया। पिछले महीने एक दिन वह काती हुई ऊन देने–समिति-भवन चली गई। वहीं अपनी जाति की एक अन्धी लडकी से उसका परिचय हुआ। लडकी उसके हमउम्र की ही थी। कुर्सियो के पैसे लेने अपनी दादी के साथ आई थी। परिवार मे उसके दादा-दादी माँ, एक भाई और एक छोटी बहिन थे। बाप नहीं था। वह बेत और प्लास्टिक की डोरी से कुर्सियाँ गूथती। पूरी उसके साथ उसके घर आई। उसे मालुम हुआ, वह पेटी पर गाती भी है।

उसने कहा, 'बहिन असुविधा न हो तो कुछ मै भी सुनू स्वर तुम्हारे?'

'नहीं क्यो?'

बाजा लिया उसने और देखते-देखते उगलियाँ उसकी बाजे पर दौडने लगीं और होठो पर उछलने लगी स्वर-लहरी

बरजी मैं काहू की नाहिं रहूँ
सुणो री सखी तुम चेतन होकर
मन की बात कहूँ।

स्वरो के साथ एक सशयहीन निश्चय उसके मुखमडल पर मडराने लगा। लगता था मीरा का मानस उससे आ जुडा है। आनन्द मे डूबी वह रसमय हो उठी और रसमय हो उठी पूरी भी।

वह उसके चेहरे की ओर देखती सोचने लगी, 'अन्धी होते हुए भी यह कितनी अभय और कितनी निश्चित लगती है, डके की चोट कहती है, बरजी मै काहू की नाहि रहू। अपने श्रम पर आस्था इसकी दृढ है। श्रम और स्वर दोनो मे डूबना आता है इसे। यह क्यो किसी के आगे रोए और क्यो कहीं हाथ ही फैलाए? आँखे गईं तो आस्था थोडे ही चली गई? किस आँखवाले से कम है यह? उसके आत्मआश्रित जीवन से बडी प्रभावित हुई वह।

पूरी अध्यापिका तो नहीं बनी पर पिछले साल एकेक कर, दो गुरुओ के छुट्टी जाने पर उनकी कक्षाओ को क्रमश उसीने सभाला। एक-दो दिन नहीं दस-दस दिनो तक। उसे न किसी तरह की असुविधा ही हुई और न किसी अह ने ही उसके मस्तिष्क मे अभिमान जैसा कोई विकार पैदा किया।

पूरी ने उसे सहज मे ही पूछ लिया, 'दीदी, बडी अलसाई लग रही हो?'

वह न बोली और न उसने उसके सामने ही देखा। क्या देखे वह, उसे तो अपने मे से निकलने की फुरसत नहीं थी।

एक प्रौढा ने पूरी को सुन लिया। वह उसे एक ओर लेगई।

उसने कहा, 'बेटी तुम उसे कुछ पूछ रही थी न?'

'हाँ अम्मा।'

'सुन, मैं बताऊं, पति इसका रोज पीता है, पीटता तो कभी-कभी ही है पर डाँटता रोज है। औरत बडी सीधी और सकालु है, आँते भर लेती है पर होठो से उफ भी नहीं निकालती। मैंने इसे सलाह दी तू थोडा सीना सीखले, सीने के लिए कमीज, कच्छे और कुरतियाँ तुम्हे मैं लाकर दूगी। मशीन सस्था से मुफ्त दिला दूगी। पति को तुम्हे एक ही बात कहनी है कि न मुझे तुम्हारी कमाई खानी और न तुम्हारी पिटाई सहनी। मैं अपनी बूटी माँ के पास रहूँगी। सास को इसकी दिखता नहीं, तीन साल की एक छोरी है। पति परमेसर इसका, सुबह-शाम रोटी सेकेगा या मजदूरी पर जाएगा। दो-ही दिन मे मीटर की तरह सीधा होजाएगा—नाक रगडेगा। मैं लाई हूँ इसे अपनी जिम्मेदारी पर—पडोसिन है मेरी।'

पूरी को उसकी बात मे रस ही नहीं आया, वह उसे उपयोगी और आवश्यक भी लगी।

उसकी गहरी इच्छा थी कि मैं कार्यशाला मे पूरा भाग लू पर यह न हो सका। एक अप्रत्याशित पहाड टूट पडा उस पर, जिसके नीचे से वह न निकल सकी। वहाँ केवल दो ही दिन जा पाई।

शाम के छ -साढे छ का समय होगा। पंडितजी घर के आगे थैला लिए खडे थे। दो गरीब छोरों को तीसरी की किताबे दिलाने का कह दिया था उन्होने। छोरे चेहरो पर चाव पसारे रोज आ खडे होते। तीन दिन होगए उन्हे उदासी ओढ-ओढ लौटते। गुरूजी कह देते बेटे आज तो नहीं, कल तुम्हे हर हालत मे ला दूगा, अगले दिन फिर वही जवाब। बच्चे उदास और उनकी उदासी गुरूजी मे असह्य होकर फिर पसर जाती वैसे ही। आज उन्होने निश्चय कर लिया था कुछ ही हो, शहर जाऊँगा ही। साधन नहीं बैठा तो पैदल ही सही तीन ही मील तो है, आता कोई टैम्पू पकड लूगा, लग जाएगी दो रूपल्ली, कौनसा पोतो को धन करना है मुझे? कल है बाजार बन्द, बात फिर परसो पर जा पडेगी। छोरे तो सुबह होते ही आ धमकेगे कोड करते। बालक है, नवीनता से बडा अनुराग है उन्हे। चेतना अपनी चाव और विनय से भर कर आते हैं और मैं रोज-रोज तोड देता हूं उसे इससे बडा पाप और कौनसा है? मैं उनकी विनय पर बैठे मेरे परमात्मा को नाराज ही करता हूँ। इस अनचाहे अपराध को वे जब भी सोचते, उनकी पोसरी का [illegible] उद्वेलित हो उठता, और निर्मलता उसकी रेतिया होने लगती। पीडा ऊँची आजाती।

वे इधर-उधर [illegible]कते रवाना होने ही वाले थे तभी उनका कोई पुराना शिष्य, इनके घर से निकलता साइकल से उतरा प्रणाम करता बोला 'शहर पधारो तो विराजो [illegible]'

इस अवधि मे उसने पढाई ही नहीं की, स्वेटर, दरी, निवार और टाटपट्टी बुनना भी सीख लिया। पिछले महीने एक दिन वह काती हुई ऊन देने–समिति-भवन चली गई। वहीं अपनी जाति की एक अन्धी लडकी से उसका परिचय हुआ। लडकी उसके हमउम्र की ही थी। कुर्सियो के पैसे लेने अपनी दादी के साथ आई थी। परिवार मे उसके दादा-दादी, माँ, एक भाई और एक छोटी बहिन थे। बाप नहीं था। वह बेत और प्लास्टिक की डोरी से कुर्सियाँ गूथती। पूरी उसके साथ उसके घर आई। उसे मालुम हुआ, वह पेटी पर गाती भी है।

उसने कहा, 'बहिन असुविधा न हो तो कुछ मै भी सुनू स्वर तुम्हारे?'

'नहीं क्यो?'

बाजा लिया उसने और देखते-देखते उगलियाँ उसकी बाजे पर दौडने लगीं और होठो पर उछलने लगी स्वर-लहरी

बरजी मैं काहू की नाहिं रहूँ
सुणो री सखी तुम चेतन होकर,
मन की बात कहूँ।

स्वरो के साथ एक सशयहीन निश्चय उसके मुखमडल पर मडराने लगा। लगता था मीरा का मानस उससे आ जुडा है। आनन्द मे डूबी वह रसमय हो उठी, और रसमय हो उठी पूरी भी।

वह उसके चेहरे की ओर देखती सोचने लगी, 'अन्धी होते हुए भी यह कितनी अभय और कितनी निश्चित लगती है, डके की चोट कहती है, बरजी मैं काहू की नाहिं रहूँ। अपने श्रम पर आस्था इसकी दृढ है। श्रम और स्वर दोनो मे डूबना आता है इसे। यह क्यो किसी के आगे रोए और क्यो कहीं हाथ ही फैलाए? आँखे गई तो आस्था थोडे ही चली गई? किस आँखवाले से कम है यह? उसके आत्मआश्रित जीवन से बडी प्रभावित हुई वह।

पूरी अध्यापिका तो नहीं बनी पर पिछले साल एकेक कर, दो गुरूओ के छुट्टी जाने पर उनकी कक्षाओ को क्रमश उसीने सभाला। एक-दो दिन नहीं, दस-दस दिनो तक। उसे न किसी तरह की असुविधा ही हुई और न किसी अह ने ही उसके मस्तिष्क मे अभिमान जैसा कोई विकार पैदा किया।

ग्रीष्मावकाश शुरू ही हुआ था। समिति के तत्वावधान मे महीनेभर के लिए एक सिलाई कार्यशाला आरम्भ हुई। गुरूजी ने कहा 'पूरी यह घर आया नाग तो तू ही पूजले छुट्टियाँ हैं ही, चार घटे निकाले और घर आ गई?'

'चली जाऊँगी।'

वह उसमे भाग लेने लगी। पिछडे वर्ग की कई औरतो से उसका मिलना हुआ। उसमे एक औरत युवा होते हुए भी बुझती और भारी उदासी से ढकी लगी उसे। आत्मविश्वास उसका उखडता लग रहा था और आत्मग्लानि उसे, अपनी कुडली मे लिए कसती लग रही थी।

पूरी ने उसे सहज मे ही पूछ लिया, 'दीदी, बडी अलसाई लग रही हो?'

वह न बोली और न उसने उसके सामने ही देखा। क्या देखे वह, उसे तो अपने मे से निकलने की फुरसत नहीं थी।

एक प्रौढा ने पूरी को सुन लिया। वह उसे एक ओर लेगई।

उसने कहा, 'बेटी, तुम उसे कुछ पूछ रही थी न?'

'हॉ अम्मा।'

'सुन, मैं बताऊं, पति इसका रोज पीता है, पीटता तो कभी-कभी ही है पर डाँटता रोज है। औरत बडी सीधी और सकालु है, आँखे भर लेती है पर होठो से उफ भी नहीं निकालती। मैंने इसे सलाह दी, तू थोडा सीना सीखले, सीने के लिए कमीज, कच्छे और कुरतियॉ तुम्हे मैं लाकर दूगी। मशीन सस्था से मुफ्त दिला दूगी। पति को तुम्हे एक ही बात कहनी है कि न मुझे तुम्हारी कमाई खानी और न तुम्हारी पिटाई सहनी। मैं अपनी बूढी मॉ के पास रहूँगी। सास को इसकी दिखता नहीं, तीन साल की एक छोरी है। पति परमेसर इसका, सुबह-शाम रोटी सेकेगा या मजदूरी पर जाएगा। दो-ही दिन मे मीटर की तरह सीधा होजाएगा—नाक रगडेगा। मैं लाई हूँ इसे अपनी जिम्मेदारी पर—पडोसिन है मेरी।'

पूरी को उसकी बात मे रस ही नहीं आया, वह उसे उपयोगी और आवश्यक भी लगी।

उसकी गहरी इच्छा थी कि मैं कार्यशाला मे पूरा भाग लू पर यह न हो सका। एक अप्रत्याशित पहाड टूट पडा उस पर, जिसके नीचे से वह न निकल सकी। वहाँ केवल दो ही दिन जा पाई।

शाम के छ -साढे छ का समय होगा। पडितजी घर के आगे थैला लिए खडे थे। दो गरीब छोरों को तीसरी की किताबे दिलाने का कह दिया था उन्होने। छोरे चेहरो पर चाव पसारे रोज आ खडे होते। तीन दिन होगए उन्हे उदासी ओढ-ओढ लौटते। गुरूजी कह देते बेटे, आज तो नहीं, कल तुम्हे हर हालत मे ला दूगा, अगले दिन फिर वही जवाब। बच्चे उदास और उनकी उदासी गुरूजी मे असह्य होकर फिर पसर जाती वैसे ही। आज उन्होंने निश्चय कर लिया था कुछ ही हो, शहर जाऊँगा ही। साधन नहीं बैठा तो पैदल ही सही तीन ही मील तो है आता कोई टैम्पू पकड लूगा, लग जाएगी दो रूपल्ली, कौनसा पोतो को धन करना है मुझे? कल है बाजार बन्द, बात फिर परसो पर जा पडेगी। छोरे तो सुबह होते ही आ धमकेगे कोड करते। बालक है, नवीनता से बडा अनुराग है उन्हे। चेतना अपनी चाव और विनय से भर कर आते हैं और मैं रोज-रोज तोड देता हूँ उसे इससे बडा पाप और कौनसा है? मैं उनकी विनय पर बैठे मेरे परमात्मा को नाराज ही करता हूँ। इस अनचाहे अपराध को वे जब भी सोचते, उनकी पोखरी का जल उद्वेलित हो उठता और निर्मलता उसकी रेतिया होने लगती। पीडा ऊँची आजाती।

वे इधर-उधर झाकते रवाना होने ही वाले थे तभी उनका कोई पुराना शिष्य, इनके पास से निकलता साइकल से उतरा प्रणाम करता बोला, 'शहर पधारो तो विराजो गुरुजी?

'दरवाजे ही जाओगे या शहर मे और कहीं भी?' उन्होने पूछा।

'और कहीं नहीं केवल दरवाजे ही।'

'वापिस फिर?'

'एक जगह वहीं थोडा मिला, शाक-सब्जी लिया और चल दिया।'

'फिर ठीक है, मैं भी चलता हूँ।'

नेकी और पूछ-पूछ, वे बैठ गए उसके पीछे।

शहर मे किताबे ले ली, कुछ शाक-सब्जी भी ली। पूरी और ग्यारसी याद आगए, चलते-चलते कीलो आम उनके लिए भी लिए-लगडे।

सोचा, 'दो जून रोटियाँ बेचारे गले चाव से उतारेगे-आमरस के साथ। ग्यारसी तो नाचने लगेगा आम देखते ही। बालक है न?'

आठ बज चुके थे। अन्धेरा था सबको अपनी काली चादर से ढकने की चिन्ता मे, और बिजली थी सब पर अपनी आभा उतारने की उतावल मे। विजय बिजली की हुई, सारे पथ एक साथ चमक उठे और बाजार सारा हँसने लगा। हॉर्नों और कोलाहल मे होड लगी थी। जनगगा और वाहनो की भीड सभी, खतरे के निशान से ऊपर बह रहे थे। आकाश पर धुएँ और गर्द की परत घनी होकर मडरा रही थी। पडितजी को कुछ जुकाम था। गहरा सास खींचते पेट्रोल और डीजली गन्ध का स्पष्ट अनुभव होरहा था, साथ मे थी उसके घनीभूत हुई अधी खख। आँखे उनकी चौंधिया रही थीं और घुटन होरही थी दुसह्य।

उन्होने कहा, 'सतीश, जल्दी कर बाबू, दुर्गन्ध के इस कुभीपाक से मुझे निकाल किसी तरह। जी घुट रहा है, बड़ा प्रदूषण है?'

'अभी लो गुरूजी, बिराजो।'

कैरियर पर तो एक कारटून रखा था, इसलिए उन्हे साइकल के अगले डडे पर जमना पडा। थैला अपना उन्होने हैंडल से लटका लिया। साइकल भीड मे से निकालते चल दिए वे। गगाशहर की घाटी से उतरती साइकल वेग पकडने लगी। भाग्य से घाटी की रोशनी गुल होरही थी। सामने था ट्रको, टैम्पुओ और साइकलो का ताता। यही हाल पीछे था। सबको चिन्ता थी, जल्दी करो लका लुट न जाए कहीं? एक दूसरे की होड मे आगे निकलते एक टैम्पू ने पीछे से टक्कर दे मारी, पडितजी सडक के बाई ओर अस्त-व्यस्त पडे रोडो पर जा गिरे। कोहनियाँ कई जगह छिल गई, ललाट के दाहिनी छोर पर एक रोडे की तीखी कोर भीतर दूर तक बैठ गई, खून बह निकला। बेहोशी मे उलझते-उलझते इतना ही कह सके, 'अरे थैला? बच्चो की किताबे हैं उसमे,' और फिर विस्मृति मे डूब गए-अस्पताल पहुँचते-पहुँचते।

सतीश के घुटने और कोहनियाँ छिल गए, एक हाथ की कोई हड्डी अपने स्थान से सरक गई। कराह तो वह भी उठा पर होश नहीं खोया उसने।

एक जीपवाले ने उन्हे अस्पताल पहुँचाया। समाचार दोनो के घर भिजवा दिया गया।

पडितजी के घर तो सिवा पडिताइन के था ही कौन? वह लगी थी ढाड मारने मे। गगी-पूरी को किसी ने कहा नहीं। पडोस के दो आदमी अस्पताल पहुँचे, खून बहुत कुछ

रूक गया पर होश नहीं आरहा था। मस्तिष्क की कोई नाडी चिरगई थी खून भीतर ही भीतर रिसता गया। वृद्ध तो थे ही व्यवस्था होते-होते हस उनका उड चला। सुबह होते-होते लाश उनकी घर आगई। उनके ससुराल दूरभाष पर सूचना करदी गई। दोपहर तक लोग-बाग वहाँ से आ पहुँचे।

गगी को उनकी मृत्यु का पता शव घर आने पर ही लगा।

इस अनभ वज्रपात से वे दादी-पोती कितने गहरे शोक सागर मे डूबी, कोई थाह नहीं, पर करती क्या? रो-रो कर उन्होने कितनी ही बार देख लिया, फल तब भी कुछ न निकला तो अब क्या निकलना था? गगी ने गला तो नहीं फाडा पर आँखे उसकी अनायास ही बह उठीं और धडकन अपनी उसे बैठती लगी। सोच रही थी, 'दीनू को भूल गई थी इसे पाकर यह भी गया एक नया घाव करता।' उसे लग रहा था दुर्भाग्य उसका आँसू लिए फिर आ पहुँचा है।

पूरी को लगा उसका आधार ही छिन गया हो जैसे। किसी अनजान चौराहे पर खडे बालक की तरह अपनी दिशा वह देख ही नहीं पारही थी।

उनके चिर-मौन शव का दर्शन कर, छाती पर पत्थर बाधे, वे शाला चली आईं। एक पीपल की छाह मे बैठ, सुस्ताने लगीं। एक रत्ती बिन पाव रत्ती, शाला मे उन्हे सूनापन पसरता लग रहा था।

गगी ने कहा 'बेटी कितना खरा और खटनेवाला किसान था वह।'

'किसान कैसे दादी?'

'वह कहा करता था बेटी ये बालक मेरे खेत हैं मौसी इनमे मैं अच्छे विचार और भले सस्कार उगाता हूँ वही मेरी फसल है, भक्ति और माला भी वही। बेटी, कैसे घोर नरक मे से निकाला उसने हमे। हमारे मे भी उसने अपनी ही खेती फलती देखी, हम भूलेगे उसे? बालको पर तो जान देता था वह?'

'जान कैसे दादी?

'मैंने एक दिन देखा बेटी, पेशाब करके आते एक छोरे की ओर देखते, उसने पूछा, 'मोहनिया चेहरा लटका हुआ कैसे रे?'

छोरा बोला नहीं।

'बोल बेटे बोलता क्यो नहीं, गुरूजी ने मारा?'

'नहीं।'

'तो।'

'मानिया ने मेरी पैन्सिल खोसली देता नहीं।'

'इस रत्ती-सी बात के लिए मुँह उतार लिया चल बता मुझे ऐसा कौनसा मानिया है—तीन मारता?'

पेन्सिल दिलवादी छोरा मुस्करा उठा और सच कहती हूँ पूरी गजानन के चेहरे पर भी हँसी नाच उठी।

'हाँ दादी ठीक कहती हो तुम मैंने भी उन्हे कितनी ही बार उदास बालको को गले

लगाते देखा है।'

बेटी गया, वह जाना ही था, रोना इतना ही है कि दो घडी उससे बात होजाती–सास छोडने से पहले, मन की निकल जाती उसकी भी और हमारी भी। पर न होने वाली वात कैसे होती?'

'दादी अपने तो फिर वही ढाक के तीन पात, रानी से फिर चुहिया?'

'अगर यही लिखा है तो कौन टालेगा?'

उस दिन दोनो ने कुछ नहीं खाया, सारा दिन उनका उदासी में ही बीता। उन्हे क्या पता उनके लिए किसी ने लगडे आमो का इन्तजाम भी किया था–बडे चाव से।

मुरलीदादा और उनकी बहू भी पडिताइन से बतलावन करने आए। गगी और पूरी भी उनसे मिली।

पूरी और ग्यारसी मिसराइन के पैरो पर पसर गए। मिसराइन ने ग्यारसी को उठा लिया, कहा,'तू तो मुझे नहीं जानता, पर मैं जानती हूँ तुम्हे, जब भी तू गाँव आएगा, भर पेट दूध पिलाऊँगी तुम्हे, पीएगा न?'

बालक बडे कुतूहल से उसकी ओर देखने लगा।

मिसराइन ने कहा, 'बींटी मिल गई गगी, यह खबर तो तुम्हें कभी की मिल गई होगी?'

'हाँ मालकिन, गजानन ने एक दिन कहा तो था, पर कहाँ मिली यह तो नहीं बताया।'

'चौधरी ने नई बहू के उस पडवे को तुडवा कर वहाँ एक नया कमरा खडा करवा लिया। पडवे मे एक उठाउ-घट्टी भी होती थी। बींटी उगली से छिट कर रात को नीचे आ गिरी होगी। कोई चुहिया उसे दबा मुँह मे, चम्पत हुई घट्टी के नीचे। क्या पता लगता किसी को? पडवे का सारा सामान हटा तो घट्टी पीछे थोड़ी ही रहती? उसे हटाया गया तो बींटी वहीं मिल गई, कचरे और कतरनो के बीच चमकती।'

'हमे भुगतना था, हमने भोग लिया मालकिन।'

'अब इसकी तह मे जाने से, गगी मिलना तो कुछ है नहीं? पर यह तू मानकर चल कि अन्त भला सो भला, तेरी तो हुई इसमे जीत और बींटी के मालिक की हुई है हाय-हाय। तेरी जीत की चर्चा तो आज भी उछलती है–गाँव के होठो पर–जीवन्त होकर। हमने तुम्हारा पक्ष लिया उसकी भी तो जय ही हुई है, इससे हमारा सीना तुम्हे, क्या मालूम कितना चौडा हुआ है? इसकी बडाई भी तुम्हे ही है?'

'अरे नहीं मालकिन, कहाँ राजा भोज, और कहाँ गगू तेली?'

तेली-तमोली की इसमे बात ही क्या है, तुम होती यदि चोर, तो हम अपना मुँह कहाँ छिपाते–तू ही बता? एक बात और सुनले अब चौधरी का सूरज भी शिखर से सरकता क्षितिज की ओर बढ रहा है, कभी आए तो देख लेना।'

'झोंपडा तो अब रेत मे मिल गया होगा मालकिन?'

'रेत मे मिला, रेत से ही फिर उठ जाएगा, आएगी न?'

'ऊँट किस करवट बैठे अभी क्या पता? बारह दिन पूरे होजाएँ पता फिर ही लगेगा।'

'चलो ठीक है, नाई-नाई केस किते, सामने आजाएँगे।'

कुछ देर और बाते कर पडिताइन विदा हुई।

बारह दिन पूरे हुए। पडिताइन को उसके भाई-भोजाइयो ने तो अपने साथ चलने का आग्रह किया ही पर उसके भतीजो की अनुनय-विनय सबसे अलग ही थी। उन्हे चाम से मतलब न था, वे दाम के गाहक थे।

कहने लगे,'बुआजी, अब कुछ दिन हमे भी तो सेवा का मौका दे। पैन्सन जितनी मिलनी है वहीं मिलती रहेगी। घर और शाला बेच देते हैं, रकम आपकी बैंक मे पडी रहेगी, ब्याज आपको मिलता रहेगा, जी मे आए वहाँ लगाना। जीओगी तब तक हाजरी भरेगे, बीमार परमात्मा न पडने दे, पडोगी तो हथेलियो पर थुकाएँगे।'

पति मरते ही वह, पीहर के अन्त करण पर इस तरह आ बैठेगी, उसे आश्चर्य था पर इसके सिवा और कोई विकल्प ही तो न था उसके लिए।

गगी को यह सब मालूम होगया, उसके लिए भी यहाँ से सरकने के सिवा और कोई चारा न था।

उसने पूरी से कहा, 'बेटी, यह बता, हमे अब मुँह किस तरफ करना चाहिए?'

'तू ही कह दादी?'

'मैं सोचती हूँ हम भी अब अपने गाँव ही चले, मूली पतियो से ही सुहावनी लगती है, हम भी अपने भाई-बिरादरी मे ही फबेगे, नए सिरे से और तो अब कहाँ जाएँ? मूछ का चावल हमारा, रामजी ने रख ही दिया? डर किसका।'

'ठीक कहती हो दादी, अब हमे रोटी-कपडे की चिन्ता तो उतनी है नहीं, अपने गुजारे लायक रकम अपने पास है ही। थोडे-बहुत रूपए तो ब्याज के मिल सकते हैं हर महीने। रही झोंपडा खडा करने की, वह कर ही लेगे।'

'पर पेट भराई के लिए, कुछ धन्धा भी तो करना पडेगा, क्या करोगी वहाँ?'

'पहले की तरह दादी, ठंढे-बासी पर तो खटेगे नहीं, हाथ का हुनर कुछ न कुछ तो दादी करेगे ही। आगे खेती के दिन आरहे है, हाथ लगा तो खेत किसी का आघ या तीसरे हिस्से पर नहीं, रकम पर लेगे। अनाज औरो के होगा तो अपने भी हो जाएगा। मेहनत करने मे कसर नहीं रखेगे। अपनी नींद सोएँगे, और अपनी उठेगे। डाकघर का खाता मैं गाँव बदलवा लूगी।'

'जी बेटी ऊमर तेरी लम्बी हो—जीभ पर तेरे सुरसती है। अब हम टोपसी-छाछ के लिए दर-दर के मुहताज न हो मूल इच्छा मेरी यही है।'

सामान अपना बाध लिया, इकट्ठा अधिक किया ही नहीं था तो लेजाने की दिक्कत उन्हे अधिक होती ही क्यो? कर तो अधिक पर है? अपना सामान तो पहनने-ओढने का ही था वे ले लिया। तवा चींपिया और थाली-लोटा आदि पंडितजी ने घर से मगवा कर दिए थे, जाते समय क्या पता पंडिताइन पूछ ही ले उनके बारे मे इस आशका से पूरी ने उन्हे अपने सामान मे बाधा ही नहीं। सरस्वती को नमन कर कोठड़ी ढक दी और चाबी ले ली साथ मे।

झोपडे के पास से निकलते गगी की आँखे अनायास ही पेडो की ओर चली गई। उसे लगा वे उसकी ओर बडी ललक से देख रहे है।। पैर उसके वहीं थम गए, आत्मा जुड गई उनके साथ। उसके होठो पर फूटा, 'बेटी, चलती-चलती दो-चार बाल्टियाँ पीपलो मे डाल देती?'

'जरूर दादी, मैं भी डाल देती हूँ, क्या पीपल और क्या नीम सभी अपने प्रिय, सभी अपने हितू, कितनी ठढी छाया दी इन्होने हमे? लड्डू की कोर मे कौनसी जगह खारी और कौनसी मीठी, तू कहा करती है न?'

'हाँ बेटी , ठीक कहती है तू, अबके बिछुडे, फिर कब मिलेगे इनसे? मेरी तो अकल आज अपनी जगह पर नहीं है बेटी—गजानन को याद कर-कर।'

पेडो मे पानी डालने लगीं वे।

थोडी देर बाद पूरी ने कहा, 'दादी, तू बैठ थक जाएगी, मैं डाल रही हूँ न?'

'बेटी अब बैठना ही बैठना है, ऐसा थकना फिर कहाँ नसीब होगा? लोगो का कचरा उठा-उठा थक गई, तब भी होठो से हवा नहीं निकाली? ये तो जन्म के साधु हैं, इनकी सेवा मे प्राण भी निकले तो सस्ते जान।'

उत्साह और ऊर्जा मे उफनती वह लगी रही। आध घटे के लगभग पानी डाला उन्होने। पसीने से तर हो गईं वे, तब भी ऊब और थकान का आभास न हुआ उन्हे। अबोल और सबोल की भीतरी एकरूपता मे कोई विभाजक रेखा नहीं दीखी उन्हे। पेडो की हृदय स्थिति कैसी थी वे जाने, पर विदा होती गगी की आँखे मानी नहीं, भावातिरेक मे वे इस तरह बह उठी, जैसे कोई विदा होती कन्या अपने पीहर को छोड रही हो। पीपल की तरफ दोनो हाथ जोडती काँपते होठो से गुनगुना उठी, 'नारायण तू कहाँ नहीं, आसीस दे मुझे, आगे भी मैं तेरी छाया मे हनुमान-चालीसा सुनती रहूँ।'

बोझ उठाया और चल दिए वे।

पडिताइन के यहाँ पहुँचे।

दादी-पोती पडिताइन से मिलीं। आँखे सबकी सजल हो उठीं। कुछ देर सुख-दुख की हुई। कमरो पर ताले पहले ही लटकवा दिए गए थे। कोठडी की चाबी गगी ने उन्हे और सौंपदी। इतनी देर अन्देशा जिसका कल्पना लोक मे ही था, अब वह धरती पर आ उतरा।

पडिताइन ने पूछ ही लिया, 'गगी हमारे घर के बरतन थे वे?'

'मालकिन, वहीं कोठडी मे ही पडे हैं।'

'कोई बात नहीं, मुझे याद आगए तो पूछ लिया मैंने।'

इन्होने खाया-पीया यहीं। चलने लगे तो पडिताइन ने औसर (मृत्तक भोज) का प्रसाद लड्डू और जलेबियाँ, होगा कीलो-सवा कीलो, पोलिथिन की एक थैली मे डाल गगी के हाथ मे थमा दिया।

नमन कर वे चल दिए।

थोडी दूर पैदल चलकर उन्होने टैम्पू भाडे पर कर लिया। शहर आगए। कुछ वर्तन

और कुछ दूसरा सामान खरीदकर, जैसे ही बस-अड्डे की ओर चलने लगे, पूरी को सहसा कुछ याद आया, वह वहीं थम गई।

उसने कहा, 'दादी, एक ओढनी जिम्मी के लिए भी तो ले?'

'बेटी, जरूर लेते पर वह नहीं रहीं, विदा हो गई पिछले साल।'

'तुम्हे कैसे मालूम हुआ?'

'मुरलीदादा की बहू से पूछा था मैंने, उन्हीं ने कहा था।'

'दादी, कितनी भली और दरियादिल थी वह–जाँत-पाँत से ऊपर उठी?'

'बेटी, उसके बाहर की आँखे चली गईं तो क्या हुआ, भीतर की खुली थीं, सुगन्ध छोड गई उसे जीना आता था।'

चल पडे वे।

राह मे पूरी ने कहा, 'दादी वहाँ से तवा-चींपिया कुछ भी बाध लाते तो?'

'तो बेटी बडा नीचा देखना पडता, अपना तो जीते-जी मरण ही होजाता समझले। पता नहीं, वह क्या-क्या सुना देती? देख, छैल के पीछे कैसा मैल लगा हुआ था, कितने ओछे कालजे की है वह? 'कुमति निवारहि, सुमति के सगी,' बाबा ने तुम्हे कैसी सद्‌बुद्धि दी, निहाल कर दिया, बाबा तेरी जय बोलेगे जीवनभर।'

शाम के पाँच बजते-बजते बडे डाकघर के पास गाँव जानेवाला एक गड्डू पकड लिया। गड्डू क्या, खटारा था वह। उदास ही वे थे और बीमारी भोगता-सा उदास ही गड्डू था। वे बैठ गए उसमे। सरकेगा तो वह साढे-छ बजे तक, पर भरना शुरू होगया चार बजे ही। करीब-करीब वह भर गया था, मुसाफिर तब भी आ-आ कर धँस रहे थे उसमे।

गगी ने पूरी की ओर मुँह करते कहा, 'बेटी, मालिक की लीला तो देख तू, ऐसा तो हमने सपने मे ही नहीं सोचा था कि जैसी उदासी हमारे सिर पर आते समय थी, जाते समय उससे भी कहीं अधिक होगी।'

'दादी यह जानकारी पहले ही कैसे लगे किसी को? कोई काँच तो ऐसा बना नहीं है जिसमे यह सब देखले कोई?'

मुसाफिर एक-दूसरे को धकेलते बैठने का पयास कर रहे थे। बैठना तो दूर जगह खडा रहने के लिए भी न थी। लोग छत पर भी बैठे हुए थे–एक दूसरे से सटकर। भीतर बीडियो का धुवा घना होरहा था। असुविधा भोगते कुछ बच्चे चीख रहे थे। ओढनो की ओट मे जिन बच्चो के मुँह स्तनो पर थे, चुप केवल वे ही थे। शेष कोलाहल मे डूबे थे। एक ने ट्रान्सिस्टर खोल रखा था। आगे सरको आगे सरको, करते कुछ मुसाफिर, धँसने की उतावल मे एक-दूसरे को आगे धकेलने मे लगे थे।

बोरियो पीपे और गुड चावल के कट्टे पहले से भरे थे, कोई सरके भी तो किधर? पैर टिकाने को जिसे जरा भी आधार मिल गया, वह वहीं खोह का खूटा होगया। सरकना कोई चाहता नहीं था। कई तू-तू मैं-मैं की आग सुलगाने मे लगे थे और कई उसे बुझाने मे। कोलाहल ने खटारे को ऊपर उठा रखा था। सूर्य अस्ताचल पर आ लगा था।

किसी ने चालक से कहा 'अरे बात क्या है इसे सरकओगे कि नहीं, या यहीं मारोगे

सबको? जी घुट रहा है, कुछ समझ है कि बेच खाई सारी की सारी?'

कडक्टर सामने के टी-स्टाल पर चाय पी रहा था। इते मे एक आदमी गुड के दो कट्टे लिए और आ पहुँचा। बडी मुश्किल से कट्टो को अन्दर फँसाया उसने, और आप ऊपर जाकर फँसा किसी तरह।

गगी ने कहा, बेटी, जी घबरा रहा है, यहीं पूरी न हो जाऊँ कहीं? एक बार नीचे उतार मुझे।'

और तभी खटारा सरका।

सबको सुख का सास आना शुरू हुआ।

बाईस

बेटी, आज अन्धेर-पख की सातम है कि आठम?' गगी ने पूछा।

'ध्यान नहीं दादी।'

'चाँद निकल आया, सात-आठ घडी रात तो बीत गई ही समझ।

'हॉ, बीत जानी चाहिए इतनी तो।'

'मुरलीदादा के घर की ओर चले या अपने झोपडे की ओर।'

'दादा के घर तो सब सोए होगे, दरवाजा खटखटाऍगे तो कहेगे शायद कुछ नहीं, पर नींद टूटेगी तब मन ही मन अखरेगा तो जरूर उन्हे।'

'तो न चले फिर?'

'भोजन तो अपने किया हुआ है दादी, रात हो रही है ठढी, और अब वह बची भी कितनी होगी? पहर-डेढ पहर का समय, घर की बालू पर ही सही, काट लेगे किसी तरह।'

वे बस-अड्डे से अपने घर की ओर चल दिए। आगए धीरे-धीरे। सामान ठढी होती बालू पर डाल दिया। ग्यारसी ऊँघ रहा था, एक गठडी पर सिर टिका कर सोगया वह।

गाँव सारा नींद की गोद मे झपकी लेने लगा था। पसीना सुखाती दादी-पोती घर की धरती को इधर-उधर देखने लगी। न कहीं आँगन न कहीं आँगन का अवशेष और न हीं कहीं झोपडे का। फूस, राख और कचरे के कुट्टे कई जगह लगे थे। चहार-दिवारी मे दो ओर पडोसियो की बाडे हुआ करती थीं, वे तो अब भी जीती-जागती थीं, शेष दो को । नहीं मिट्टी खागई या पडोसियो की मनोवृत्ति। धरती से जरा-जरा ऊपर उठीं, झोपडे ं जडे—वे भी कहीं-कहीं मरी-मरी-सी अब भी उसके अस्तित्व की गवाही दे रही थीं। झोपडे का अतीत और उससे जुडी अपनी आत्मीयता गगी की चेतना पर तैल धारा की तरह तैर उठे।

उसने कहा, 'बेटी, झोपडा फिर से कब खडा होगा?'

'होगा क्यो नहीं दादी गिरता है वह उठता नहीं?'

हवा मे तैरते इनके शब्द और जमीन पर उठती इनकी पदचाप सुन, और मानवी-

गन्ध का आकस्मिक आभास अनुभव कर, हाउ-हाउ करती एक कुतिया सामने आ भुसने लगी। भुसना उसका ऊँचाई लिए हुए नहीं था, कारण आँते उसकी खाली थीं और एक टाँग थी उसकी घायल। दूसरा, अवस्था भी आचुकी थी।

दादी-पोती को उसने अचम्भे मे डाल दिया।

विस्फारित आँखो से देखती गगी के होठो पर उछला, 'पूरी, यह भूरी तो नहीं? आ, भूरी आ।'

आवाज के साथ ही कुतिया भुसना बन्द कर पूँछ हिलाने लगी, पर पास अब भी नही आई। इस समय उसके रोम-रोम पर पीडा और दुर्बलता का राज्य था। दिनभर से उगल टुकडा भी पेट मे पडा नहीं था। सुबह-सुबह ही तू-तू कर इसके सामने किसी ने चार-छ उगल बासी टुकडा फैंका था। उस टुकडे पर तभी दो कुत्ते एक साथ झपटे। टुकडा एक सबल कुत्ता चट कर गया, खिसियानी बिल्ली खभा नोचे—दूसरे ने अपना सारा आक्रोश गरीब भूरी पर झाडा। रेत मे रौंदते उसने उसकी पिछली जाघ काट खाई। दाँत अन्दर तक बैठ गए। खून टपकने लगा। चीखती पिछला पैर उठाए वह अपनी घुरी मे आ बैठी, रह-रह कू-कू भी करती रही और घाव को भी चाटती रही। दोपहर को कठ सूखने लगे तो उठी। लगडाती और डरती-डरती एक गली पर फैले किचडैले पानी पर आई। रूक-रूक, लक-लक करती अधकिलो पानी तो निश्चय ही गले उतार गई होगी। आँते भूख के मारे सिकुड रही थीं। टुकडे की प्रत्याशा मे एक बार इधर-उधर झाकी पर किसी घर की ओर बढने का साहस जुटा न पाई। अपनी जगह फिर आ लेटी। पडी रही भूखी ही दिनभर वहीं।

अन्धेरा पसरते ही, घुरी के बाहर आ पसरी। भूख और वेदना मे नींद कहाँ? आँखे कभी खोलती कभी बन्द करती। पीडा और उदासी मे डूबी, रात किसी तरह काट रही थी।

इनको अचानक आया देख, वह कुछ पास आई। अपने घ्राण के तराजू पर अपनी पुरानी पहचान को उसने तोला। काफी-कुछ सन्देह उसका हल्का होगया। मालकिन के कुछ और पास आ वह धरती पर लोटी। उसके पिंड को बार-बार, नजदीक से सूघती रही। विश्वास उसका पूरी तरह जम गया। कू-कू कर कभी पेट दिखाती और कभी चाटती। कभी अगले पैर आगे पसार गर्दन उन पर टिका, सर्वथा मौन होजाती, पर पूछ निरन्तर हिलता रहता। लगता था उसकी प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं।

गगी ने कहा 'हमने तो सोच रखा था, तेरी तो अब अस्थियाँ भी नहीं मिलेगी, पर तू तो सन्तरी बनी हुई झोपडा नहीं तो झोपडे की जगह ही पहरा लगा रही है? वाह भूरी वा तू तो तू ही है?'

'दादी दुबली-पतली तो बहुत होरही है देखती नहीं, पेट-पीठ एक होरहे हैं इसके? पसलियाँ झाक रही है तब भी जगह नहीं छोडी, कमाल है? लगता है, काया, हमसे मिलने के लिए ही रख छोडी है इसने।'

'भूखी है बेचारी कुछ डालते, क्या डाले, कुछ है भी तो नहीं?'

पूरी को सहसा याद आया, 'दादी, मिठाई की थैली नहीं पडी?'

'हाँ बेटी, डाल, कुछ मिठाई ही डाल।'

पूरी ने दो लड्डू डाले। भूरी ने उसके सामने इस तरह देखा, मानो पूछ रही है, 'कहीं भूल तो नहीं कर रही हो।'

गगी ने कहा, 'देखती क्या है, खा।'

इतना हुकम होने के बाद ढील कहाँ? वह खाने लगी। लापसी और हलुवा तो जूठन मे कई बार नसीब हुए थे, लड्डू वह जीवन मे पहली बार ही खा रही है। पूछ हिलता रहा और मुँह चलता। देखते-देखते लड्डू वह चट कर गई। आग उसकी और तेज होगई, और इच्छा बलवती। सामने फिर देखने लगी—आँखे चौडी करती।

'बेटी, कुछ और डाल? 'लाय' इसकी अभी बुझी नहीं?'

अबकी बार पूरी ने चार जलेबियाँ डालीं। जलेबियाँ देखती वह विस्मय मे पडगई। सोचने लगी, 'यह हो क्या रहा है? ऐसा तो उसके साथ आज तक नहीं घटा? बराती की-सी मनवार?' वह आपा विसर गई। करड-करड करती जलेबियाँ भी वह चबा गई। उनका स्वाद भी अजब था।

पूरी ने कहा, 'और?'

वह सतृष्ण सामने देखने लगी।

दो लड्डू और डाले पूरी ने। वे उसने उतावल मे नहीं, बडे धीरज से खाए। पूछ पहले की तरह हिलता रहा। अब मन भी भर गया और पेट भी।

पूरी ने कहा, 'भूरी, एक लड्डू और एक जलेबी तो और चल ही जाएँगे, ले चबाले, तू भी क्या याद रखेगी?'

वे उसके आगे सरका दिए उसने।

मनवार को वह कैसे नकारती? मनुहार तो उसकी, बासी और, दिनो के सूखे टुकडो से भी कभी नहीं हुई, लड्डू और जलेबी तो थे ही कहाँ? वे बडी निश्चितता से खा लिए उसने। परितृप्त हो, स्वत ही उठ खडी हुई। सामने देखने लगी। उसकी दृष्टि पर तैर रहा था, 'अब मालकिन बस, गले तक छक गई हूँ।'

आँखो मे उसके आशीर्वाद बरस रहा था। कुछ दूर जाकर वह पसर गई किसी परमहस की तरह। तारे झिलमिला रहे थे और चाँद हँस रहा था। भूरी निस्सग सोई थी।

पूरी ने कहा, 'इते साल से आए हैं दादी, तो एक समय तो धपाएँ बेचारी को।'

'अच्छा किया बेटी, बडा अच्छा।'

निश्चित नींद तो वहाँ क्या आनी थी, फिर भी गठरियो का सिराहना बना रात उन्होने वहीं काटली।

सुबह लोगो से मिलते-जुलते मुरलीदादा के घर जा पहुँचे। मिल-मिलाकर आगए। रोटी की व्यवस्था भी एक बखत की कहीं करली।

अब मोटी समस्या सिर पर छत की थी। तीन गाडे फोगो की छडिया मगवाईं। दो

आदमी लगाए गए। झोपडा गूथा गया। हवा आने-जाने के लिए उसमे कई मोखे रखवाए गए। घेरा पहले से कुछ अधिक लिया गया। बीचोबीच एक थूनी रूपी। ऊपर फूस पडा, चोटी निकली, आँगन पडा, दीवारे उठीं, किवाडी लगी। भीतर का गच और आँगन पूरी ने ही लीपे। आँगन मे सफेद और हिरमिची मिट्टी से फूल-पत्तियाँ और चाँद-सूरज के चेहरे कोरे गए। दीवारो के भीतरी भाग पर नीम और खेजड़े का एक-एक पेड खींचा उसने। उनके नीचे बछडा चुघाती एक-एक गाय और ऊपर फैलती शाखाएँ सूनी नहीं, उन पर विश्राम करतीं चिडियाँ और।

पिछवाडे मे एक छप्पर खडा करवा लिया। दो सरकियाँ डलवालीं उस पर। दस दिन तो लग ही गए घर बनकर तैयार। आते समय तीन कीलो निवार लाई थी, दो खटियाओ मे काम आगई वह। मिट्टी के बर्तन-भाडे बसालिए। चाकू और चकला-बेलन, हटडी और चींपिया सभी थे अपनी-अपनी जगह।

आँगन के बेल-बूटे और दीवारो की चित्रकारी देख-देख मुहल्ले की छोरियाँ उस पर आँखे उलझाए देर तक खडी रहतीं, और पौढाएँ थुथका डालतीं कहतीं, 'ऊजड खेडा फिर बसे, निरधनिया धन होय,' रामजी ने ठाठ फिर लगा दिए, पहले से कहीं ज्यादा अच्छे।

चूल्हा जलने लगा दोनो समय, और तवा हँसने लगा कुछ रूक-रूक कर।

गगी कहती, 'तवे का हँसना बेटी, बडा शुभ होता है।'

'लाभ सबका शुभ मे ही है दादी।'

गृह-प्रवेश मे मुहल्ले की कई लडकियो को लापसी का भोजन करवाया गया। कई बुटियाएँ भी थाली पर बैठीं। बडी राजी हुईं वे।

थोपडे का काम चल रहा था। सेठ बालजी के यहाँ से तीन दिनो मे चार तगादे आगए। तीन बार तो पूरी ने यही कहलवाया, 'कह देना मिल लेगे,' पर इतने से सेठ का डोलता धीरज स्थिर न हुआ।

चौथे बुलावे पर उसने कहा, 'कह देना, इस तरह जी उठाने से काम नहीं बनेगा, आ ही गए तो अब भागकर कौनसे बिल मे घुसेगे? खेत, सियार की उतावल से तो पकेगा नहीं? मिल लेगे—सुविधा होते ही।'

चार दिन और निकल गए तगादा फिर नहीं हुआ।

एक दिन दादी-पोती गईं। सेठ गद्दी पर बैठा था। वह पडोसी गाँव की एक बूढी जाटनी से उलझ रहा था।

वृद्धा कह रही थी, 'कैर, बाबू तुमने दस रूपये कीलो ही कैसे लगाए? ते तो पन्दरै हुए थे?'

'तुम्हे याद नहीं, भूल रही हो।'

'मै गूगी हूँ या टाबर?'

'यह मै कब कहता हूँ?'

'अरे लम्बा-चौडा हिसाब होता तो बात थी। दो कीलो कैर और तीस रूपये। इसमे याद रहने, न रहने की बात ही क्या थी? याद तो तुम्हे नहीं, या झूठ बोल रहे तो तुम?'

'अच्छा, तेरी-मेरी छोड, यह बही तो झूठ नहीं बोलती?'

'बही तो कभी बोलती ही नहीं, अब क्या बोलेगी? लिखा तो तुमने है इसमे?'

सेठ बगले झाकने लगा। पूरी, बेईमानी उसकी साफ-साफ समझ रही थी और साथ मे समझ रही थी बुढिया की ईमानदारी और उसकी निर्भीकता को भी।

उसने सोचा, 'कैसा आदमी है, ललाट पर टीका, सामने गणेशजी की फोटू, फोटू के आगे कुछ बताशे और धुवा उगलती एक अगरबत्ती। इसे अच्छी तरह से मालूम है कि गणेशजी न मेरी कलम पकडेगे और न हेराफेरी करता मेरा हाथ, तब भी इस नाटक का कितना बडा हाथ होता है—ग्राहक को अपनी ओर खींचने मे?'

सेठ ने कहा, 'माजी, मैं न तुम से लडता पोसाऊँ और न अच्छा ही लगू, बोल अब करना क्या है? पच्चीस रुपए लगालू फिर तो राजी?'

'जब तीस तै हो चुके, फिर पच्चीस क्यो?'

सेठ ने देख लिया, यह चाँद का चक्कर काट कर आई हुई है, बात बढी तो पलडा अपना ही ऊपर उठेगा। उसने कहा, 'अच्छा तीस ही सही, अब तो राजी?'

'राजी की क्या बात, सेत मे थोडा ही दे रहे हो?'

'अच्छा न सही, सामान तो बता क्या दू?' उसे डोकरी के पास एक पुराने कपडे मे बधी कीलो-डेढ किलो बडी बारीक, सागरियाँ दीख रही थीं। उसकी नजर उन पर थी।

वृद्धा ने कहा, 'सामान कुछ नहीं लेना।'

'सागरियाँ नहीं बेचोगी?'

'नहीं।'

सेठ क्या करता, उसके रूपए उसे दे दिए, वह चलदी।

अब वह गगी की ओर मुडा। वृद्ध जाटनी से मिली नैतिक हार उसके चेहरे पर मडरा रही थी।

झेप को ढकने की चेष्टा मे उसने कहा, 'आ गगी, दिनो बाद चमकी?'

'हाँ।'

'बुलवाया कई बार आई ही नहीं?'

'झोपडा खडा करने मे लगी थी। सामान सारा खुले मे पडा रहता, सोचा, दो दिन ठहर कर ही मिल लूगी।'

'अच्छा, कोई बात नहीं, है तो राजी?'

'राजी-विराजी रामजी रखे सोइ ठीक है बाबू।'

'साथ मे यह?'

'पोती है पूरी।'

'अरे यह तो पहचानने मे भी नहीं आ रही, रग-रूप सब बदल गया? एक-दो बार मेरे यहाँ कुछ देर काम किया था इसने, मशीन की तरह चलती थी, याद है पूरी?'

'हाँ याद है बाबोसा।'

'दादी-पोती आई हो, पिछला कुछ चूकत करो तो बताऊँ?'

पूरी ने कहा, 'जरूर बताएँ पर ऐसा न हो कि बही कुछ और बोले और हम कुछ और।'

सेठ की बुझती झेप फिर ताजा हो उठी। वह पूरी की मनोभावना ताडगया।

झेप मिटाते उसने कहा, 'नहीं-नहीं ऐसी बात नहीं, जी रामजी को देना है बाई, ऊमर नहीं रहना किसी को? बात यह थी कि उस बेसमझ से झगडा मोल लेने से लाभ क्या था? सुनता वह बुरा मुझे ही बताता। दस का घाटा खाकर ही, रोग की जड काटी मैंने। टक्के की हाडी गई, कुत्ते की जात पहचानी, आइन्दा के लिए सीख आई।'

अपने मुँह मिया मिट्ठू पूरी सब समझ रही थी। तब भी उसने कहा, 'बाबोसा, मेरे गुरूजी कहा करते थे बेटी, ब्याज और बेगार मे बनिया ब्याज को ही बडा समझता है, बेगार को बिल्कुल नहीं।'

'कैसे मै समझा नहीं?'

'बेगार मे खून-पसीना चाहे कोई कितना ही एक करदे, न उसकी आवाज ही कहीं, और न उसका आकार ही, पर ब्याज की चवन्नी भी रह गई किसी मे तो, बही आपकी बरसो तक बोलती रहेगी उसे। मेरे बापू भी आपके यहाँ बेगार बहुत बार निकालते और रोटी घर आकर खाते, बही आपकी उसे थोडा ही बोलेगी?'

सेठ ने उसकी ओर एक बेधक दृष्टि से देखा, उसे लगा, यह तो ओटी-आग है, बडो से तेल पहले पीनेवाली, उलझकर इससे क्या लूगा? यह कल ससुराल चली जाए फिर? गगी के पास है ही क्या, सिवा हड्डियो के? भागते भूत की लगोटी ही भली, आधा-चौथाई यह दे सो ही सिर झुकाकर ले लूगा—डूबत-खाते की रकम जितनी आजाय, अहोभाग्य।

उसने कहा, 'तेरा सोचना ठीक है पूरी।'

तभी गगी ने कहा, 'यह सब छोडो बाबू, आप तो मूल रकम बताओ, जोड-तोड कर, कुछ चुकाएँ आपको?'

इतने मे सेठ की माँ आ गई—घुटनो पर हाथ रखे। गगी ने हाथ जोडकर नमस्कार किया उसे।

'अरे गगी, बडे दिनो के बाद दीखी, कहाँ चली गई थी?'

'दिन काटने चली गई कहीं, फिर आ गई वापिस ठुकराई गेन्द की तरह।'

'गाडी तो ठीक से चल रही है न?'

'ठीक तो क्या, काम निकल जाता है किसी तरह।'

सेठ की माँ ने कहा, 'बालू, यह दे सोइ ले ले भाई, इस जैसी भली लुगाई कहाँ? अपने घर का कई बरस खटी, दिया नहीं दिया, बन्दी ने न कभी हाथ पीछे सरकाया और न कभी नाक-सल ही डाला।

सेठ ने रकम बतादी—बही देखकर।

पूरी ने रकम दे दी और भरपाई करवाली एक कागज पर।

सेठ बडा राजी हुआ, विनोद की मुद्रा मे बोला, 'तो ब्याज-बिस्वा कुछ भी नहीं देगी?'

'बोलो बाबू क्या दू, आप ही कह दो?' गगी ने कहा।

'सौ-पचास कुछ भी–वह भी तेरा मन हो तो?'

डोकरी ने कहा, 'बेटी, बाबू को दो सौ रूपए और दे दे।'

पूरी कुछ नहीं बोली, दे दिए उसने।

सौ-पचास माँगे, दो सौ दे दिए। सेठ की आँखो पर विस्मय-बोधक आ खडा हुआ। वह पलभर डोकरी के मुँह की ओर देखता रहा। उसकी वाणी अनायास ही फूट चली, 'आगए गगी, आगए, वाकई लुगाई तू ऊँची है, दूकान तेरे लिए आधी रात को भी खुली है, लेजाया कर सामान, जब चाहे।'

'अच्छा बाबू।'

वे उठकर चलदीं।

क्षणभर के लिए तभी सेठ के मन पर आ उतरा, मैं पाँच सौ कह देता तो वह हाथ पीछे न सरकाती शायद, उतावला सो बावला, अब क्या हो चूके पर चौरासी है। ऐसा धोखा तो आज तक नहीं खाया। उसे उसकी माँ ने क्या कहा था, उसका एक बिन्दु भी उसकी चेतना पर कहीं अकित नहीं हुआ, पैसे की पकृति ही ऐसी होती है।

आवास से निश्चित होजाने पर दृष्टि पूरी की अपने मुहल्ले की ओर गई। अवस्था जैसी वह छोड कर गई थी, अब उससे बदत्तर ही थी। तीन साल पहले मुहल्ले मे पानी का स्टैंड बना था। मुहल्ले मे सुविधा का नया सूत्रपात हुआ पर इस समय वह क्षतिग्रस्त होता अपने सामयिक अन्त की ओर बढ रहा था। ईंटे उसकी कई जगह निकल चुकी थीं। उनमे से अधिकाश एक-एक, दो-दो कर पार हुईं। कई जगह वे निकलने की तैयारी मे थीं। दरारे चौडी हो रही थी। टूँटियाँ कुछ ढीली थीं और कुछ अपना अस्तित्व ही खो बैठी थीं। आध-पौन घटा पानी आता, आधा घडो मे जाता और आधा जाता एक किचडैले गड्ढे के पेट मे। उसमे हाँपते-खुजलाते कई पावले कुत्ते पडे रहते। चेहरे पर उसके मच्छरो की पाँते उडती-जमती दिखतीं।

कुएँ के पास एक टकी बन गई थी। उस पर बडे-बडे अक्षरो मे लिखा था, 'सीमित पानी, सीमित परिवार,' पर गाँव के अधिकाश लोग अभिप्राय न सीमित पानी का ही समझ रहे थे और न सीमित परिवार का ही। अनेक घरो ने नल ले लिए थे। उनकी गलियो मे कीचड़ था और थी उससे उठती बदबू। सर्दियो को छोड, शेष महीनो मे मच्छर वहाँ के लोगो को सुख की नींद ही नहीं लेने देते। बुखार, बदबू और बैचेनी सहना मजूर था पर कीचड से मुक्ति का प्रयास मानस पर उतारना दुष्कर था उनके लिए। सब जगह सोई गगा थी।

लोग शराब के आदी पहले से अधिक होगए थे। अपने टोले मे तो वह आए दिन तू-तू, मैं-मैं होती देखती। कई चाय के साथ डोडे उबालते। चाय और तम्बाकू बिना कोई घर ही न था। कीमते दोनो की दिन-दिन आकाश छू रही थीं पर उनके चगुल से निकल पाना किसी के वश का न था। पकड उनकी और तेज हो रही थी।

औरतो की अवस्था पहले से और अधिक दयनीय हो रही थी। पियक्कड पति, पत्नियो पर गालियाँ ही नहीं बरसते, यदा-कदा उन्हे लाते और थप्पडे परोसते भी देर न लगाते।

पत्नियाँ बेचारी, अन्दर ही अन्दर आँसुओ के घूट पीकर रह जाती। सोचती, कल को हमें किसी ने पूछ लिया, 'अरे कल तो तुम्हे पीटा सुना, तब? शर्म के मारे जमीन मे गडना होगा।' पर दो-चार ऐसी मुँहफट् भी थीं, लाज जिन्होने अपनी, खूटी पर टाँग दी थी। पति को वे पति के सिक्को मे ही चुकातीं। अशान्ति बढ जाती। बाल-बच्चो की धरती पर बद-सस्कारो के बीज अकुरित होते लगते और कुल मर्यादा दिन-दिन काली पडने लगती।

अधिकाश का आत्मविश्वास टूटता-बिखरता लग रहा था। बढती आवश्यकताओ की दासता ने अभाव को नगा कर उनके चूल्हे-चाकी तक लेजा खडा किया। घुटन-टूटन औरतो को ही अधिक सहनी पड रही थी। आदमियो की अपेक्षा उन्हे मजदूरी भी कम मिलती जब कि वे खटतीं हैं उनसे अधिक। अपनी माँ की मजदूरी भी पूरी को याद थी।

मालूम हुआ, टोले के कई लडके पढने भी जाते हैं, पर लडकियाँ पराया धन होती है, ~सलिए वे उपेक्षित ही रहती हैं। इच्छा होते हुए भी, पाटी-पोथी से वे अछूती ही रहती हैं।

एक भुक्त-भोगिन ने बताया कि मुहल्ले के परले छोर पर साझ होते-होते, एक कोई महामारी आती है, वह लोगो को बोतली बनाने मे हाथ धोकर पीछे पडी है। बोतले पता नहीं कहाँ से लाता है और राम जाने क्या कमाता है, पर आता रोज है, आँधी-मेह मे भी भी नागा नहीं करता। आदमी मानते नहीं, उनकी तो लत बढ रही है और हमारी पीडा। हाल यही रहा तो किते ही घर बिना मौत मर जाएँगे। बुढियाओ की दशा तो परले पार है वे आँख नीचे ही नहीं आतीं किसी के।

पूरी को वडा दुख हुआ—यह सुनकर। उसने निश्चय कर लिया, 'सबसे पहले चोर को नहीं चोर की माँ को मारना चाहिए, ताकि चोर पैदा ही न हो। डोर पहले उस महामारी की कटे तब बने काम, पर अकेला चना क्या भाड फोडेगा, मैं अकेली क्या कर लूगी? पहले अधिक से अधिक औरतो को बाधू अपने विश्वास मे, मोर्चा तभी सफल होगा।'

अपना आत्मविश्वास उसे साथ देता लगा।

इच्छा उसकी बलवती हो उठी।

तेईस

अगले दिन डोकरी तैयार होने को थी। सूरज सिर पर आ रहा था। उसने पूरी से कहा, 'बेटी, चौधरन के यहाँ हो आएँ?'

सुनते ही पूरी के स्मृति-पटल पर एक भूला-बिसरा चित्र तैर उठा।

वह सोचने लगी, 'जिन्होने मेरा रोना तो दूर, सास नली तक पूर ठूस कर, मेरी आह को बाहर आने का अवसर नहीं दिया। चलो यह भी हुआ सही, पर अरे बींटी मिल जाने पर भी उनके होठो पर सहानुभूति का कोई तिलभर अकुर भी तो नहीं फूटा? जिनकी आँखे सदा अपने ही आकाश मे उलझी रहती हैं, उनसे मिलना न मिलना बराबर है।'

डोकरी ने अधीरता से पूछा, 'बेटी, बोली नहीं?'

अपनी उलझन दबाते हुए उसने कहा, 'अभी तो तू ही हो आ दादी, मैं फिर कभी चली-चलूगी।'

'तेरी मरजी।'

और वह चलदी, लठिया लिए। बाहर की तिबारी के पास जा पहुँची, और झाकने लगी इधर-उधर। तिबारी की भींतें उसे उदासी ओढे लगीं और उसके आगे का दालान लगा सूनापन भोगता।

बस्ती की बाड ही बता देती है—वहाँ का हालचाल, वह बहुत कुछ भाप गई, इस घर के बारे मे। आगे बढी वह। उसने देखा सामने के आगन पर कई दीवारे उठी है, और अलग-अलग हारो से उठता धुवा, धुघले आकाश मे मिल रहा है। आँगन की चौडाई उसे बीमार लगी और रौनक उसकी रोती हुई। उसे लगा बाग वही है, पर बहार वह नहीं।

चौधरन एक पीढे पर बैठी थी—अपने मे खोई हुई-सी। गगी हाथ जोडती बोली, 'राम-राम मालकिन, औलाद का खेडा बसे,' और सामने दो हाथ की दूरी पर बैठ गई।

चौधरन ने गौर से देखते हुए कहा, 'कौन गगी?'

'हाँ मालिकन,' और उसने चौधरन के बुझते हुए चेहरे की ओर देखा। ऊपर के दो दाँत उसके, अपनी बिरादरी का साथ छोड विदा हो चुके थे, पता नहीं कब? ललाट पर आडी-टेढी लीको का जाल पसर रहा था। आँखो पर काँच चढा था। निचली पलको की ढालो पर नींद का अभाव और चिन्ता की अधिकता साथ-साथ सोए थे। उन पर सूजन का पहरा था। दर्पण का रोगन काफी कुछ घिस गया था।

उसने कहा, 'मालकिन, सुना छोटी बहू के गीगा हुआ था, पर वह गोद छोड गया, ऊपरवाले के आगे किसका जोर—किसका बस?'

सुनते ही चौधरन की आँखे डबडबा आईं।

वह काँपते होठो से बोली, 'क्या बताऊँ गगी, दिनमान इतने पतले चल रहे हैं कि कह नहीं सकती। दो बरस हुए सरपची करता बेटा अधिक पीकर पूरा हुआ, समझाने मे कसर हमने नहीं छोडी, और पीने मे उसने—क्या करते, पीटने से तो उसे रहे? एक बेटे की टाँग टूट गई पिछले साल—जीप दुर्घटना मे, एक टाँग का मालिक, तू ही बता क्या कर लेगा, सब अलग-अलग हैं। बीमारी और बदकिस्मत छोटी बहू के तो हाथ धोकर पीछे पडे हैं, पल्ला उसका छोडते ही नहीं। चौधरी साब बीमार चल ही रहे हैं, एक आफत से

निकलते नहीं दूसरी उससे पहले ही आ घेरती है, लगता है आफत का सारा पहाड हम पर ही टूटेगा, बडी दुखी हूँ गगी,' और आँखे उसकी फिर डबडबा आईं।

'मालकिन भले दिन थिर नहीं रहते तो बुरे भी नहीं रहेगे, जाना ही पडेगा उनको।'

'मेरे जीते जी तो जाते लगते नहीं गगी, मरने पर मैं देखने से रही।'

बात को थोडा-सा मोड देते गगी ने कहा, 'चौधरी साब के दरसन भी कर लेती? बिस्तर पर होगे?'

'अरे वे यहाँ कहाँ, बीकानेर के बडे अस्पताल मे है। एक हाथ पर उनके लकवा उतर रहा है। मैं कई दिनो से वहीं थी, कल ही आई हूँ। सोचा, थोडा घर राम्हाल आऊँ, कल वापस जाऊँगी।'

'कुछ फायदा हो रहा होगा?'

'हाँ कुछ तो फर्क है, पर भूखा तो धाया पतीजे गगी, डाक्टर कहते है यहीं सुस्ताओ कुछ दिन सुस्ताना ही पडेगा क्या उपाय?'

'धीरज रखो मालकिन, फल उसका मीठा ही होगा।'

'पूरी नहीं आई?'

'है तो यहीं सकोच की मारी आई नहीं।'

'अरे सकोच यहाँ किस बात का—घर है तुम्हारा। सजोग की बात है गगी, उस बेचारी के तो तकलीफ लिखी थी अनसोची और हमारे माथे पर लिखा था कलक का टीका सो देखले लग ही गया। गोद मे छोरा,और गाँव मे ढिंढोरा, बीटीं मरी घर मे ही मिल गई। चौधरी साब को तो इसका इतना पछतावा हुआ जिसकी हद नहीं।'

'कैसे मालकिन?'

'तीन ही दिन पहले की बात है—वे लेटे थे, पास ही मैं बैठी थी। छत को ताकती आँखे उनकी भर आईं। आँखे पोछती मैं बोली, 'क्या दुखता है, डाक्टर को बुलाऊँ?'

'डाक्टर क्या करेगा?' लम्बी सास छोडते उन्होने धीरे से कहा।

'क्यो?'

'भोगने के सिवा और कोई दवा ही तो नहीं इसकी।'

मैंने कहा 'मै समझी नहीं?'

'नहीं समझी तो समझले, जीवन मे कितनो को ही पीटा मैंने और पिटवाया भी खूब, पर कलेजे पर किसी की लीक कोई खिची नहीं। उस छोरी को पीटा भी और पिटवाया भी उसकी लीक पत्थर पर पडी दरार की तरह बैठी ही नहीं, दिन-दिन चौडी भी हो रही है। खाट पर पडे-पडे कभी-कभी पुराने घाव की तरह वह रिस भी उठती है। दर्द उसका सारी चेतना पर फैल जाता है बेचैनी बढ जाती है, कई बार तो रात को नींद उचट जाती है फिर घटो पास ही नहीं फटकती। सोचता रहता हूँ , उस पिटाई से किसको क्या मिला दादू को तुझे या मुझे तू ही बता, मैं सोचता हूँ उसके मूल मे तू है

ऐसा अनचाहा भी हो जाता है, अवश है आदमी।'

'बीमारी से उपजी पीडा बढे तो बढे, पर पछतावे की पीडा बढती है तो वह मन को परेशान करती है, और मन मे बेचैनी की बाढ खडी करदेती हे, वह दवा से नहीं जाती?' और तभी उनके चेहरे की उदासी घनी होगई। गगी, दुख की बाढ, नाक से ऊपर आने को है, मुझे उठाले रामजी, देखा नहीं जाता पर वह भी सुने तब न?'

'मालकिन, बीती को विसारना चाहिए, होनहार को कौन रोकता, हमारे भाग्य ही हल्के थे। दोस किसको दे?'

इस तरह, कुछ देर दुख-दर्द और पाप-पुण्य की बाते उन दोनो के बीच हुईं।

चौधरन ने अपनी गाथा तो खूब गाई, पर तव भी उसके मुख से यह न निकला कि गगी, उस भूलभुलैया मे हमने तुम्हारी मजदूरी भी नहीं चुकाई, भेज भी नहीं पाए, चलो कोई बात नहीं, सुबह का भूला शाम को ही सही, अब देती हूँ प्रेम से-लेजा।

लोकाचार निभाती गगी रवाना हुई।

पूरी अपने साथ व्रत-कथाओ की कुछ पुस्तिकाएँ ले आई थी-परलोक सुख और परम्परा निर्वाह के लिए नहीं, प्रत्युत अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए। और अभीष्ट है उसका गाँव की विषम धरती पर एक ऐसा जनपथ रचने का जिस पर सब चल सके-निर्बाध और आत्मीयता के साथ।

यह दूसरा शुक्रवार था। मुहल्ले की औरतो को उसने सुबह-सुबह ही सन्तोषी-माता की कथा सुनाई। बडे खेजडे के नीचे खासी भीड जमा होगई थी। 'अब कैसे छुटै, नाम रट लागी' 'प्रभुजी तुम चन्दन हम पानी,' रैदास का यह पद उसने भाव विभोर होकर गाया ी नहीं, अपने पीछे-पीछे सबसे गवाया भी। सारी भीड रसमय हो उठी। आरती सबने गाई सम्मिलित स्वर मे। खेजडे का आकाश भर गया नई गूज और नए मिठास से। आल्हाद और आस्था का जोडा सबके मन पर नाच उठा--अनहद नाद की तरह।

चलने से पहले हाथ जोड़ते उसने सबको ही कहा, 'आप सब मेरी माँ और दादी जैसा ही प्यार देनेवाली हैं मुझे, मैं उन्हीं का रूप आप सब में देखती हूँ।'

कई आवाजे साथ-साथ फूटीं, बेटी, हमारे बालको जैसी ही तू है-हमारे लिए तो?'

'सुने और माने तो एक अर्ज करू?'

'एक क्यो दो कर, माने क्यो नहीं?' सभी ने कहा।

'मैं देखती हूँ कि गाँव मे ज्यादातर लोगो के मकान ढग के हैं, ढग का खाते-पीते हैं वे, और पहनते-ओढते भी ढग का ही हैं। लडके-लडकियाँ उनके पढते हैं। एक तरफ हम हैं--कद-काठी और शरीर के ढाँचे वैसे ही, पर दो-चार घर छोड, हमारे रोटी है तो दाल नहीं, पेट ढक लिया तो पीठ उघाडी, लड़के-लडकियाँ नगे-अधनगे, एकाध कोई पढने कुछ दिन चला गया तो कौनसा तैसीलदार बन गया? लडकियो के लिए तो काला अक्षर भैंस बराबर? झोपडो पर पूरा फूस नहीं, पूरे किवाड नहीं, चारो ओर हमारे उदासी नाचती है, दिन हम गुजारते नहीं, टुकडा-टुकडा कर काटते हैं किसी तरह।'

'ठीक कहती हो पूरी,' सबने एक सहमति से कहा।

'अभाव का इतना भार लादे रहने पर भी शराब हमारा कचूमर और निकालता है?'

'अरे पूछ ही मत, उसके मारे तो नाक मे दम है।'

'पोश्त के डोडे भी उबलते है कहीं कहीं?'

'बेटी, तवा चाहे न चढे, पतीली डोडो की तो जरूर चढेगी, क्या उपाय?'

'बहुत से घर व्याज भी भोगते हैं?'

'ब्याज तो ब्याज की जगह, बेगार मे चमडी और उधडती है? भेड की ऊन तो छीना-झपटी मे ही जानी है?'

'तो इतना होने पर भी, यह तो हम चाहती ही हैं कि सन्तोषी-माता हम पर सुख-चैन की बरखा करे, घर हमारे ऊँचे आएँ?'

'जरूर चाहती हैं।'

एक डोकरी बोली, 'बेटी, मेरा नूरिया लापसी खाजाए डेढ कीलो की पर खाजाए किसके बाप की—हुए बिना? हमारे चाहने से क्या होगा, मिल जाएगा सब?'

'होगा, सब होगा दादी, पर होगा हमारे चाहने से ही, दूसरा कोई क्यो चाहेगा हमारे लिए? झूठ बोलकर क्या कमाई कर लूगी मैं? बडे भरोसे से कहती हूँ आपको कि माता बडी दयालु है। आज के हमारे व्रत से वह बडी खुश है। हमारी मनसा, हमारी मनौती वह जरूर पूरी करेगी, पर इसके लिए हमे अपना रूख थोडा बदलना पडेगा?'

'कैसे, हमे अच्छी तरह समझाओ, बदलेगी—जरूर बदलेगी।'

'हमारे घरो मे दारू(शराब) का परवेस किसी भी हालत मे न हो तो समझलो हमारे काम का श्रीगणेण आज ही होगया।'

सब औरतो मे एक बार चुप्पी छा गई, वे एक दूसरी की ओर ताकने लगीं।

एक डोकरी ने कहा, 'बेटी बात तो तुम ठीक कहती हो, पर सीधी उगली घी नहीं निकलेगा, काम बडा टेढा है?'

'टेठा कैसे दादी?'

'गाँव मे एक भाट आता है धूर्त और गया-बीता। सबसे पहले टोना उसका हो, तब कहीं काम बने। गाँव का तालाब, ज्यादा गन्दा तो उसी मुई मछली ने ही किया है और किए ही जारही है। उसने सबके मुँह मे उगली डालकर देख लिया है कि दाँत यहाँ किसी के नहीं।'

'दादी यह सब छोड आप सब चाहती तो हैं न कि रोग का इलाज हो?'

'बेटी आज से ही नहीं चाहती दिनो से चाह रही है।'

'चाहती हैं तो माता हमारी मदद करेगी और निश्चय ही करेगी, मैं छाती ठोक कर कहती हूँ।'

'बेटी यदि [illegible] हो जाय तो माता का हम बहुत बडा चमत्कार भी मानेगी और उपकार भी।'

सब चल्दी।

[illegible] भाट के कु[illegible] ने इस गाँव को डेट साल से अपनी पकड मे ले रखा है। सिर पर

उसके दो-चार पहुँचे हुए हाथ हैं जिन्हे वह दो बोतले भावोभाव पकडा देता है। गाँव मे किसके सिर पर लोहे की टोपी है जो उन हाथो से लोहा ले? एक गधा-गाडा है उसके पास। गाँव से तीन कोस परे हीरामडी मे दारू का ठेका है। शाम के पाँच-साढे पाँच बजे, वह बोतले लेकर निकलता है। अन्धेरा पडते-पडते वह गाँव के बाहर एक सघन नीम के नीचे आ खडा होता है। अधीर और अध-पागल आ पहुँचते हैं। सर्दी मे बिकते गर्म गुलगुलो की तरह शीशिया हाथोहाथ ले जाते हैं पियक्कड।

शुरू-शुरू मे वह आठ-दस बोतलो ही लाता था, अब ढाई-तीन दर्जन लाने लगा है। पिछली धनतेरस और होली पर तो उसने सौ-सौ बोतले बेची थीं। बोतल पर दो रूपए कमाता है। अधिक माँग मे कभी रूपया-अठन्नी ज्यादा भी नोच लेता है।

पीनेवाला बादशाह होता है या गुलाम वह जाने पर सोच उसका अमूमन यही रहता है कि तीन कोस तो जाऊँगा और पैरो मे से उतने ही कोस और निकालूगा, क्या लूगा इसमे, दो रूपल्ली के पीछे, इतना झझट मोल लू, पागल हूँ? घर बैठे गगा आरही है, फिर क्या चाहिए? ऐसे अन्धे और आलसी बादशाहो की बदौलत ही कल्लू जैसा गँवार साठ-सत्तर के नोट गाँव के गरीब पसीने से रोज पोछ ले जाता है—कभी कुछ ज्यादा भी।

पूरी ने कुछ तो मुहल्ले की और कुछ दूसरी, कुल बीस-बाईस औरतो का एक जागरूक जत्था तैयार किया। सभी युवा और उफनती उम्र की। बहुत-सी उनमे शराब की हमेशा की अन्धी मार से दुखी भी थीं। योजना पूरी तरह तैयार करली गई—गुप्त और पत्थर की लीक की तरह पक्की।

दो दिन बाद अपराह्ण मे करीब चार बजे सिर पर खारिए लिए वे बडे सहज भाव से निकलीं और नीम से कोई एक-डेढ कीलोमीटर आगे जा, रास्ते के इधर-उधर लकडिया बीनती बिखर गईं।

गाडा ज्यो हीं आता दीखा, सबने एकजुट हो, उसे रोक लिया। कल्लू एकाएक सकपकाया, आसार उसे अनुकूल नहीं लगे।

पूरी ने कहा, 'कलाल भाई, माल अपना रोज-रोज आदमियो को ही बेचते हो, आज कृपा हम पर भी करो, क्यों जची नहीं?'

'महर है आपकी, देर हो रही है बाईसा, रास्ता दे, जाऊँ?' उसने सूखते होठो से कहा।

'रास्ता तो तुमने रोक रखा है हमारा? चोर कोतवाल को डाँट रहा है, कह हमे रहे हो रास्ता दो? पर कल्लू सौ दिन चोर के तो एक दिन साहूकार का भी, हमारा रास्ता हम हीं निकालेगी, तुम नहीं दोगे, तुम्हे किसी झरबेरी के दुख-दर्द से मतलब भी तो नहीं, तुम्हे तो बेर चाहिए, पीटा, बीने और चल दिए?'

हाँ-तो और इसी के साथ दो-दो औरतो ने उसकी एक-एक बाह कसली। डीलडौल का धारण ही था। चालीस से तो कुछ ऊपर ही होगा। औरतो का जमघट देखकर घबरा वह। औरतो ने बोतलेछएक-एक कर सारी खींचली और देखते-देखते सब की सब रेत पर औंधी करदी, फोडी नहीं, फोगो मे फैंकदीं। विवश हुआ वह देखता रहा। गिडगिडाते हुए उसने कहा, 'भगवान् की कसम, फिर कभी इधर आऊँ तो, छोड दे मुझे।'

'बोतले भी बेचेगा और भगवान् की कसम भी खाएगा? भगवान् से भी धोखा? दिमाग ठीक करो इसका।'

कहने की देर थी। दिमाग ठीक करने के लिए वहाँ जूतियो के सिवा और दवा ही क्या थी–उन डाक्टरो के पास? फडाफड सबने एक-एक फटकार दी–पूरे वेग और आवेग के साथ।

एक तो यह कहने मे भी नहीं हिचकिचाई कि चिल्लाया तो देख लेना, मनुहार की एकेक और झेलनी पडेगी?

दूसरी क्यो चूकती, उसके होठो पर भी तुरत उछला, 'अरी पहले पूछ तो ले इसे, हजम तो कर लेगा इतनी खुराक?'

आत्मीयता का स्वाग भरती पूरी ने कहा, 'कल्लूभाई, कुछ कसर रह गई हो तो कल फिर आजाना इसी समय, हम तैयार मिलेगी। अब प्रेम से जाओ, चाहो तो थाने और चाहो तो घर। रथ को जिधर भी हाको, मौज तुम्हारी, पर इस धन्धे को हाथ जोड देना, भला इसी मे है।'

रवाना होते-होते एक अन्य औरत ने भी अपना अफरा निकाल, पेट हल्का कर लिया, 'अबकी आया तो देख लेना, गधे को हम गाडे से खोल देगी और तुम्हे जोत उसमे, सारे गाँव मे फिराएँगी, चन्द्रमा अपना सोच-समझकर ही पाँव आगे बढाना।'

वह गया रोता और ये आई हँसती-मुस्करातीं। सिरो पर सबके खारिए और उनमे थीं सूखी-अधसूखी कुछ-कुछ लकडिया।

उल्लू आँखे फाड-फाड, इन्तजार करते रहे पर अन्धेरा नहीं आया। दो आदमी सामने भेजे गए। वे वापिस लौटे तब तक औरतो ने रोटिया भी सेकली थीं, पर हकीकत कब तक छिपी रहती रहस्य अगले दिन खुल गया।

कलिया ने सारी कथा उगल दी थी। उसने कहा, 'एक छोरी थी जवान-सी, बडी चलती, सारा कारनामा उसी का था। सारी औरते उसी के इशारे पर नाच रही थी।'

पूरी का चेहरा स्पष्ट होगया। वह अनायास गाँव के गर्म होठो पर उछल उठी।

पीनेवालो का दबदबा भी गॉव मे कम नहीं था। सब ने तै कर लिया अपने को चाहे जितना ही पडे, इस छोरी की डोरी तो यहाँ से काटनी ही है। पियक्कडो के पास गुडो की क्या कमी, पिलाया और भूत खडे हुए? पर कल्लू ने गाँव की तरफ मुँह करने की सौगन्द ही खा ली थी।

पियक्कडो की योजना मरी तो नहीं, पर होठो से आगे नहीं बढी।

पूरी मौन थी पर निष्क्रिय नहीं।

मुहल्ले की औरतो मे चर्चा थी 'माता का चमत्कार देखा? भाटडे का पाटिया चित करते कित्ती देर लगी? अरे कलजुग मे तो उपासना कोई करनेवाला चाहिए, परचा तुरता-फुरत मिलता है?'

भले आदमियो के होठो पर था, अच्छा हुआ भाटडे का पत्ता साफ हुआ। गाँव जीने लायक हो जाएगा।'

पूरी मुरलीदादा की बहू और पदमा के यहाँ कई बार जाती। पदमा के यहाँ पूनम के दिन सगत हुई थी—घटा-पौन घटा। पूरी ने आध घटा वहाँ रामायण पढी। अन्त मे कबीर का एक भजन सुनाया—'मन तोहे किहि विधि समझाऊँ?' औरते बडी खुश हुईं। एक बूढी जाटनी ने, उसे बाहो मे भरते कहा, 'वाह बेटी, रामजी ने किता मिठास भरा है तेरे गले मे? सगत एक दिन मैं भी करवाऊँगी।'

पूरी मुहल्ले की लडकियो को घटा-सवा घटा बडे खेजडे की छाया मे लेकर रोज बैठती। दो-चार बडी लडकिया भी दिन मे आती उसके यहाँ। उन्हे वह आसन और निवार बनाना सिखाती। कई लडके भी उसके पास पूछने आया करते। दिवाली के बाद वह कुछ चर्खे लाने की सोच रही थी। चाहती थी, फुरसत में कुछ औरते भी काम करे।

जेठ पूरा हुआ। इस समय दृष्टि उसकी आकाश की ओर थी और मन था ढग के किसी खेत पर।

चोबीस

आषाढ शुक्ल पक्ष की तीज थी, उस दिन। आधी रात मुश्किल से बीती होगी, लोग मेघो से ढकी, नीली छत के नीचे सोए थे। छत सहसा टपकने लगी। लोग उठ-उठ, अपनी छतों के नीचे चले गए। वर्षा जोर चढ गई। दो घटे करीब एकसरीसी बरसी। न आँधी, न बौछार। शान्त ही रात, शान्त ही वर्षा।

सुबह बूढे किसान परस्पर बातें कर रहे थे कि उमर ले ली, ऐसी सुखदाई वर्षा हमे तो याद नहीं। सकुन अच्छे हैं, साख अच्छी होनी चाहिए।

लोगो पर हल खडा करने की चिन्ता सवार हो उठी।

पूरी का मन भी मचल उठा, 'जुताई पर कोई खेत मिल जाय तो एक बार खटकर मन की निकाल लू।'

दादी ने सुझाया, 'खुली मजूरी ठीक नहीं रहेगी बेटी?'

'खुली मजदूरी दादी, क्या होगी, तू तो घर रहेगी और मैं किसी का खेत खटने जाऊँगी, सुबह-सुबह ही यहाँ से भागूगी, फिर भी अगला कहेगा, आज तो कुछ देरी से आई, काम कुछ कम किया, पैसे इतने ही दूगा, पैसे के लिए दो दिन रूक? काम कभी मिला और नहीं भी। ऐसे सुहाग से तो दादी, रडापा ही भला? एक बात और दादी?'

'वह क्या?'

'जिस गलती को हम कल तक भुगत आए हैं, वही गलती आज हम और करे तो हम भुगतने के लायक ही हैं—उद्धार हमारा विधाता भी नहीं कर सकता। इन्द्रदेव खुद झोली भरने अपने दरवाजे पर आए खडे हैं, और हम उन्हें पीठ दे रहे हैं, यह समझ की बात तो नहीं दादी?'

'मेरे कहने का मतलब इतना ही था बेटी, कि ग्यारसी और मैं तो, ठौर के ठाव हैं,

अपने आप तो, हम पानी का गिलास भी नहीं लेगे, तू ही देगी। खेत शुरू से अन्त तक, सम्हालना, समेटना, सब तुम्हे ही पडेगा और तुम हो अकेली? नाव अन्त तक खे तो लोगी?'

'खे क्यो नहीं लूगी, हाथ-पैर टूटे हुए तो हैं नहीं? और न मैं बूढी ही हुई अभी। टपरि अपनी खेत मे ही खडी कर लेगे, वहीं डेरा और वहीं फेरा, मन हरा हो जाएगा और तन नीरोग—और बोल?

'और क्या बोलू बेटी, तूने यही ठान लिया है तो मैं राजी, मेरा राम राजी। खेत आज ही पूछ कोई, भाव-ताव तै करके, 'नकद नाणा, बींद परणीजै काणा,' अगले से रूक्का लिखवाले, जबानी सौदा बिल्कुल नहीं, हरियाली ऊँची आते ही कल को कोई नीयत बदल ले तो हमारा बेली फिर कौन? हाँ, इतना ध्यान जरूर रखना, खेत का पडोसी भला हो—पीठ ताकनेवाला न हो।'

इस विषय मे उसने पदमा से ही राय लेना ठीक समझा। वह उसके पास गई और अपने मन की उसे कह सुनाई।

पदमा ने कहा, 'पूरी, घर मे घानी और तेली खाए रूखी? देख, मेरा खेत है साठ बीघे का, मैं तो आधा ही मुश्किल से सम्हाल पाती हूँ। जुतवाती बीस ही बीघे हूँ, दस बीघे रखती हूँ गाय-भैंस के लिए परती, बाकी तीस बीघे तू जुतवाले?'

'सहज मिले सो दूध, इतना तो बहुत है दादी, व्यवहार के नाते अब लेन-देन के आक और सुनादे?'

'पिछले साल मोटू खाती को दिया था साढे-सात सौ मे, तू सात सौ दे देना।'

'सात सौ क्यो, साढे-सात सौ ही दूगी और पचास ऊपर और?'

'और किस बात के?'

'तुम्हारे पडोस के, अन्धेरे मे भी हम निधडक सोएँगे।'

'तीस बीघे पूरा ही जुतवाएगी?'

'पूरा।'

'बुध की बुवाई और बिसपत की कटाई बढिया होती है। टैक्टर निकलवाएगी या ऊँट से जुतवाएगी?'

'तुम दादी कैसे करती हो?'

'मै तो हर साल टैक्टर ही निकलवाती हूँ।'

'फिर वही हमारे भी।'

'मोठ बाजरी और गवार ही बोएगी या और भी कुछ?'

'तिल भी दो-चार घानी के होजाय तो मिलावट के जहर से सालभर तो पीछा छूटे?'

'ठीक है फिर, आज शाम तक, चुग-फटक कर बीज तैयार रखना?' अन्दाज उसने दता दिया।

'ठीक है।'

और वह फुर्ती से चलदी।

खेत जुतवा लिया, अगले दिन टपरि भी खडी करवाली। एक तरफ बाड थी, तीन तरफ और करवाली। मीठे मतीरो के बीज पदमा ने अपने पास से देकर कहा, 'इन्हे तू अपने हाथो से तोप।'

वह सूर्योदय से घटाभर पहले उठती। शौचादि से निवृत्त हो, दो घडे पानी लाती कुएँ से। चार रोटिया सेकीं, प्याज और गुड की डली साथ बाधे, लोटडी लटकाई, बीज और खुरपी लिए पदमा के घर की ओर चल पडती। इसके साथ उसकी पुरानी याद ताजी हो उठती। वह सोचती, 'वह भी कोई मनहूस घडी थी टुकडा जब, चलती ही चबाती, पानी भी बैठकर नहीं पी पाती थी।'

वे दोनो खेत आजातीं। दस बजे तक वह बीज तोपती। खुरपी से बिलान-बिलान मिट्टी हटाई, दो बीज डाले, मिट्टी थोडी ऊपर दी और आगे बढी। बीच के दिन मे पदमा की झोपडी मे घटाभर गहरी नींद का एक अलग ही सुख लेती। कुछ देर वह तुलसीकृत पढती और पदमा सुनती। ठंढे पहर, फिर जुटती उसी काम मे। दो दिन मे उसने बीज बोने का काम पूरा कर लिया।

दस दिन बाद पदमा ने अपनी झोपडी पकडली, धान दुपनिया-चौपनिया होरहा था। पूरी पीछे क्यो रहती? उन्होने भी अपनी टपरि पकडली। भूरी भी उनके साथ थी, वह कहाँ जाती?

सबसे बडी दिक्कत पूरी के पानी की थी। गाँव खेत से एक कोस था, वह एक घडा गाँव से सिर पर लाती। गर्दन अकडने लगती। खेत से अधकोस दूर एक नाडी थी। आसपास के खेतोवाले पानी उसी से भरते। वह भी वहाँ गई। उसने देखा उसमे दो भैंसे पडी हैं और एक है कटडा। कुछ नग-धडग छोरे भी उसमे डुबकिया ले रहे हैं। एक लडके के उसने खाज-खुजली भी देखी। दो औरते और कुछ छोरिया घुटनो तक के पानी मे खडी, उसी मे मुंह धो रही हैं, कुल्ले भी उसी मे थूक रही हैं, फिर वहीं घडे भरेगी?

उसने उनसे कहा, 'अरी, यह पानी तो नहरूआ और खाज-खुजली पैदा करेगा, पीने लायक नहीं है।'

पर इस पर किसी ने कान ही न दिया। एक औरत ने अपनी लाचारी ओढते हुए कहा 'बाईजी, बात तो आपकी ठीक है पर कब तो दो मील जाएँ और कब वापिस आएँ, सास खाने को भी फुरसत नहीं?'

वह खाली घडा लिए वापिस आगई पर रोग के निराकरण के लिए उसके मन का घडा पूरी तरह भर गया था।

खेत जुते तीसरा सप्ताह शेष होरहा था। धान अलसा रहा था। दोपहर को तो लगता जैसे कल की सुबह वह शायद ही देखे। दो दिन नागोरन हवा चली, मिट्टी की सरसता उसने सुखादी। किसानो के चेहरो की हवा भी उडने लगी।

उदासी, पूरी के मन पर भी आ उतरी।

सोच रही थी, 'जीवन मे पहली बार ही तो सिर मुडाया और मुडाते ही ओले आ पडे।' फिर सोचा, 'कोई बात नहीं, ऐसा भी होता है।'

दादी ने इतना तो एक दिन सुना ही दिया, 'बेटी खुली मजूरी खुली ही होती है, उसकी बराबरी नहीं?'

'दादी उसमे तो इतना ही मिलता है कि अगला न मरे और न सुख से जीए–सास आता रहे किसी तरह–बस। मजदूरी तो बेबसी है।'

अगले ही दिन हवा ने रूख बदला और आकाश मे परिवर्तन होने लगा। रात घटाभर निकली होगी। गडगडाहट के साथ बिजलिया चमक उठी। वर्षा होने लगी। बौछार के साथ डेढ घटे से कुछ अधिक देर, पानी गिरता रहा। सुबह-सुबह ही किसानो ने अपने अलसाते धान को हवा के साथ झूमते देखा। चेहरो पर उनके नया राग फूट उठा।

सावन के सात दिन और रह गए थे। खेतो मे निदान ऊँचाई पकडने लगा था। लोग कसिए ठीक करवाने मे लगे थे।

पूरी सुबह-सुबह घडा भरने कुएँ पहुँची। दो औरते वहाँ पहले से ही पानी भर रही थीं। तीन और आ पहुँचीं।

एक ने पूछा, 'बाईसा खेत कैसा है?'

'अच्छा है, निदान आ रहा है।'

'बहुत से तो निदान का हाथ कल से करेगे।'

'मजदूरी क्या तै हुई?'

'आदमी के पन्दरै और लुगाई के दस।'

'यह पाँच का फरक कैसे?'

'यह कोई नया तो नहीं, हमेशा से चला आरहा है।'

कुछ औरते और आगईं। घडे टूटियो के नीचे रख दिए और बातो मे रस लेने लगीं। झुड दस-बारह का होगया।

पूरी ने कहा 'हम अगले के यहाँ न बीडिया पीती हैं और न चिलम। पहुचती हैं दस मिनट पहले और छूटती हैं दस मिनट बाद मे। खटती हैं, कन्धे से कन्धा मिलाकर। एक ही काम तो मजदूरी मे भेदभाव क्यो?'

'बात तो आपकी सोलह आने सही है पर कोई माने तब न?'

'बिवाई तो जिसके फटेगी, पीड तो उसीके होगी? पीड तो हमे है, पसीना हमारा पुछता है दूसरे किसी को क्या? बींद के मुँह से लारे गिरेगी तो बराती उसे कब तक पोछते रहेगे? उपाय तो हम ही करेगी?'

'उपाय आजतक तो हो पाया नहीं आप कोई सुझादे तो बात अलग है।'

'नहीं हुआ तब तक आदमियो की चलती रही अब हम समझ गई हैं तो हमारी चलेगी। सबसे बडा उपाय है–हम एक रहे किसी भी लोभ और भय से दीवार हमारी न टूटे। और मजूरी लेगी पैसे हम आदमियो के बराबर लेगी। मैं चार बजे फिर आरही हूँ। बडे नीम के नीचे निदान पकडनेवाली अधिक से अधिक इकट्ठी हो–एक दूसरी को खबर

करदे।'

पूरी ने अपना घडा उठाया और चलदी।

चार बजे तक नहीं-नहीं करते साठ-सत्तर औरते खेजडे के नीचे आ जमीं। इक्की-दूक्की और आ रही थीं। सभा पदमा के अगुआपन मे हुई।

पूरी ने कहा, 'यहाँ न कोई लडाई-झगडे की बात है और न किसी को नीचा दिखाने की। बात सीधी और सबके गले उतरनेवाली एक ही है कि एक काम और एक दाम, निदान के लिए आदमी को पन्द्रह रूपए तो औरत को उतने क्यो नहीं? हम नहीं बोलती हैं तो इसका मतलब यह नहीं कि हम गूगी हैं? पैसे काम के मिलते हैं न लुगाई होने के और न किसी की मेहरबानी के? इससे कम मे हम मे से कोई लुगाई नहीं जाएगी, क्यो ठीक है?'

'बिल्कुल ठीक,' सबका स्वर एक ही था।

'खेतो मे खलिहान मडते हैं न?'

'हाँ।'

'आदमी माद के छाज भर-भर मजदूरिन को पकडाता है और वह तिपाई पर खडी दिनभर माद को हवा मे उपनती है—हाथो को एकसा साधे, कमर सीधी और गर्दन झुकाए। शाम तक छाती के किवाड चरमरा उठते हैं, पैर लगते हैं जकडने और पैसे उसे आदमी से कम? यह शोषण है कि नहीं?'

'है क्यो नहीं, अन्धा भी समझता है इसे तो।'

एक औरत ने कहा, 'पर बिना मजूरी अपना काम कैसे चलेगा?'

'बरखा न होती तो काम कैसे चलता?'

एक बार सब पर चुप्पी छागई।

फिर कहा पूरी ने, 'अब तो रामजी ने कृपा करदी, बरखा खूब है। और जाएँ आसपास, अपन कुछ दूर ही सही, घास काट लेगी, ईंधन बटोर लेगी और नहीं तो दो घटे घर पर चरखा ही कात लेगी, इरादा पक्का है तो आटे के पैसे तो कर ही लेगी, लेकिन इस मनमानी के आगे घुटने नहीं टेकेगी।'

पदमा ने कहा, 'मेरे खेत मे मजूरनी कल से पन्दरै मे ही जाएँगी।'

पूरी ने भी कहा, 'मैं भी इतने ही दूगी और जाऊँगी कहीं तो इतने ही लूगी, अब बोलो?'

'फिर हम पक्की हैं—लोह-लीक समझे हमे।'

'दीवार मे कहीं दरार तो नहीं पडेगी?'

'बिल्कुल नहीं।'

'जाओ फिर।'

सब चलदीं।

बात गॉव मे फूट गई। बूढे और बुझक्कड पचो को बडा अखरा।

शाम को उनकी भी एक भीड जुटी छोटी-सी—रामधन चौधरी के चबूतरे पर।

एक रूढिवादी ने कहा, 'आदमी और लुगाई की मजूरी आज तक तो एक हुई नहीं? आग यह एकाएक लगी कैसे, यह बताओ मुझे तो?'

'यह आग दादा, दीनिया की छोरी ने लगाई है, लुगाइयो मे वह नई नेता चमकी है। अधिकतर उसके झडे के नीचे पहुँच रही हैं। छोरी बडी चालू है, अकल मिटो मे निकालती है?'

'पर गाँव की लीक तोडना अच्छा नहीं है।'

दूसरे ने कुछ आवेश मे आकर कहा, 'दादा, पाव की हंडिया, सेरभर पडने से उफनेगी ही? आप कहो तो छोरी को तो मैं कल ठीक करदू, उसकी जड ही कितनी?'

'नहीं-नहीं ऐसा भूल कर ही मत करना, तुम्हे ही नहीं, लेने के देने कइयो को पड जाएँगे। जमानत भी नहीं होगी, इनकी सुनवाई आजकल सबसे पहले होती है, गवाह की भी जरूरत नहीं पडेगी।'

एक ने पूछा, 'छोरी कहती क्या है?'

'कहती है काम एक तो दाम एक क्यो नहीं?'

'कहना बेजा तो नहीं उसका।'

'बेजा नहीं तो पन्दरै ही क्यो तू अट्ठारै दिया कर, कौन मना करता है तुम्हे?' किसी ने टोका।

वह फिर नहीं बोला।

एक बूढे ने कहा, 'बात बराबर पैसौं की नहीं, बात है गाँव की चलती लीक मे छोरी के टाँग फँसाने की। इस तरह वह करती गई तो मरदो को कौन पूछेगा? गाँव की सोभा फीकी पड जाएगी और घर-घर मे फूट के काँटे बिखर जाएँगे। आदमियो के रहते फैसला लुगाइया लेगी?'

'दादा, सब छोडो, बताओ करना क्या चाहिए?' एक आवाज हवा मे उछली।

'करना यही है कि हम दो-चार आदमी गगी को समझाएँ कि पोती तेरी हर तरह से ब्याह-लायक है, हाथ इसके पीले करदे। जमाना है खराब, खुदा न खास्ता, कहीं कुछ गडबड घटगया तो तेरा तो होगा मुँह काला और गाँव की होगी बदनामी। वर ढग का टोहना तेरे बस का नहीं तो वह हम टोह देगे।'

'हाँ दादा यह ठीक रहेगा, साँप भी मर जाएगा और लाठी भी नहीं टूटेगी।'

अगले दिन से लोग निदान पर जाने लगे। कुछ औरते पूरी और पदमा के पन्द्रह पर गई।

कुछ आदमी दो-चार दिन तो अपनी पर अडे रहे, पर औरत एक भी अपनी जगह से टस से मस नहीं हुई।

निदान ऊँचा आरहा था। खेतो के मालिक सोच रहे थे, 'निदान समय पर न निकला तो [illegible] फिर खेती की, नहीं की बराबर है।'

औरतो को पन्द्रह-पन्द्रह देकर ही लेजाने लगे वे।

औरतो ने एक नया [illegible] उठा।

पूरी के कदम किसी अगले धरातल की टोह में उठने को मचल रहे थे।

पच्चीस

सन्त और सुकाल रोज कहाँ, कभी-कभार ही नसीब होते हैं। गाँव मे फसल कई वर्षों बाद, इसी साल हुई चोटी की। गगी के सारा अनाज पचास कुटल के करीब बैठा। चारा, पाला और घास अलग। उसे लगा, कुबेर बरस गया। तीस बीघा जमीन मे इतना अनाज गाँव मे और किसीके नहीं हुआ।

समझदार अचम्भित थे। वे कहते, 'कमाल है अकेली छोरी सुबह-शाम रोटी भी सेकती और कोसभर से लाकर पानी भी पीती, दादी और भाई की हाजरी अलग भरती, रात-विरात पशुओ के पीछे भी भागती, इतना सब होते हुए भी मजाल है एक भी दाना कहीं उजड जाय? मरद भी क्या खटेगा इतना तो कोई? समझो, रेकाड ही तोड दिया इसने तो? लगता है छोरी के हाथ मे सिद्धि है कोई?'

पर अपनी ही आग से झुलसनेवाले कई बेसमझ ऐसे भी थे जो सोचते, इस नाकुछ छोरी के तो इतना ढेर, और हम आधा दरजन से अधिक खटनेवालो के इसका आधा भी मुश्किल से? अन्धेरे-उजाले उनकी चर्चा होती, 'रामजी भी बडा बेपरवाह है?'

'बेपरवाह ही नहीं, इनका पूरा पखधर भी?'

'इस समय हवा ही ऐसी है, भेड और मुरगी-मछलियो को सरकारी सुविधा, और गाय-बैल की कोई सुनता ही नहीं?'

गगी कहती, 'बेटी, इत्ते लम्बे जीवन मे मैं घर की खेती भी पैली ही बार देख रही हूँ और पैली बार ही ऐसा उफनता खेत भी। इत्ता अनाज आँखो के आगे तो था ही कहाँ, सपने मे भी तो नहीं देखा मैंने कभी? लीला है उसकी, पर घर मे इती जगह भी तो नहीं, नाज सारा रखेगी कहाँ? दो-चार कुटल खाने लायक रखले, बाकी का बेचदे, रकम डाकघर मे जमा करवादे, ब्याज आएगा।'

'मुरलीदादा या पदमा के कहीं रख देगे दादी, पर बेचेगे नहीं।'

'क्यो बेटी, क्या नुक्सान है इसमे?'

'अगला चौमासा आएगा तब दादी यही बीज डेढे-दुगुने मे मिलेगा। हम मे से कित्ते ही बेचारे, ऐसे होगे जो निहोरे निकाल-निकाल उधार लेगे—कहीं से और ब्याज भरेगे वह अलग। हम बीज के बदले बीज की शर्त पर दे देगे। किसी ऐसे कमी भुगतते को, कितना लाभ होगा उसे? होने पर कौन रखता है दादी, देगा ही? हुआ ही नहीं किसी के तो टाल सही, अपना कौनसा खजाना लुट गया? रामजी ने ही दिया और रामजी के निमित्त ही चला गया तो नुकसान क्या है? दिया है तब देते हैं दादी? नहीं दिया होता तो क्या खाक देते?'

डोकरी अपने मन की सुन वडी राजी हुई। उसने स्नेह भरी आँखो से उसकी ओर देखा, वोली, 'वडा अच्छा सोचा वेटी, राजी होकर दिया है रामजी ने तो मदद भी किसी

की राजी होकर के ही करनी चाहिए। कई-कई बेचारे, बीज के अभाव मे खेत जोतने से रह जाते हैं–कितनी तकलीफ होती है उनको? मूछ का चावल तो सभी रखना चाहते हैं, होने पर कौन किसी का रखता है?'

'दस-पाँच कुटल बट जाएगा दादी, दस-बीस कुटल अगली फसल निकले तब तक के लिए और रख छोडेगे, पर बेचेगे नहीं, अकाल का क्या भरोसा, जमाना तो यहाँ चार साल मे एक बार भी दरसन दे दे तो गनीमत समझ। गुरू कहते थे, जहाँ बीज सुरक्षित है, वहाँ अकाल पूरी, अधूरा ही समझ। सुकाल बीजवाले की पीठ थपथपाता कहता है, डर मत बीज है तो, एक दाने के हजार दाने दूगा, अकाल भागता दीखेगा। बीज नहीं तो मेरा वरदान काम नहीं करेगा।'

बेटी, गजानन बिल्कुल ठीक कहता था, साधु था वह। बीज खेतो की हँसी है और वह हँसी है हम सबका जीवन।'

दोनो अपने-अपने काम मे लगगई।

ग्यारसी पाठशाला जाता। पाठशाला वह भी अपनी, बडे खेजडे की छाया मे लगाने लगी। घटा-सवा घटा सुबह तो पढाती लडके-लडकियो को और इतनी ही देर रात को औरतो मे बैठती वह। रामदेवरे का चबूतरा था और उससे सटता बिजली का खम्भा। उसके प्रकाश मे चलती पाठशाला। वह अक्षर-ज्ञान तो कराती ही, साथ ही साथ उनका धरातल भी सुधारती। कहती, 'मन मे निश्चय करलो कि हम पैर की जूती नहीं, जब चाहे बदल ली, न रेवड की भेड ही, जब चाहा कतरली और जिधर चाहा मोडली। गाँव मे ठढी-बासी खाने और झिडकिया सहने नहीं निकलेगी, खटकर खाएँगी, बेगार नहीं ढोएँगी–किसी की।'

भूत-पेत और टोने-टोटको की निस्सारता वे समझने लगी थीं। अब वे न किसी पत्थर या पादपमूल पर ही तेल उडेलती हैं और न किसी बोरटी या थान की त्रिशूल पर कोट-कचुकी ही टाँगती हैं। ऐसी जडता उनमे बडी तेजी से टूट रही है।

एक दिन सुबह के नौ बजे थे, पूरी पढाकर अपने घर की ओर बढ रही थी। सहसा उसके कानो मे पडा, 'डाकिन-डाकिन।' उसने आँखे उठाई, देखा एक औरत लगडाती आगे चल रही है, फटी ओढनी कन्धो तक आई हुई है, बिखरे बाल उसके हवा मे हिल रहे हैं। मैले कपडे और विलखता चेहरा। पैर नगे। उसका पीछा करता हुआ छोटे-बड़े लडको का समूह। उस पर ककड, ढेले और धूल की मुट्ठिया फैंक रहे थे वे। वह उस तरफ बढी। उसने पहचान लिया, अरे यह तो भीखी सैंसन। उसकी चीख मे दर्द था, आँखो मे थे आँसू और पैरो पर था अस्वस्थता का असह्य बोझ। उसके एक हाथ मे मिट्टी का एक पुतला था और दूसरे मे सिलवर का एक मुचा बाटका ।

पूरी ने छोरो से कहा 'भाई लोगो, पत्थर क्यो मारते हो इसके?'

'पूरी बहन डाकिन है यह हमारे घरो मे आती है,' एक बडे और समझदार लडके ने कहा।

'यह लगडाती है इसकी टॉग पर किसने मारी?'

'किसी के घर मे घुसी है, तब लाठी मारी है किसीने।'

'डाकिन बच्चो को खाजाती है न?'

'हाँ।'

'तो इसने तुम मे से अभी तक किसी को खाया तो नहीं?'

लडके चुप। सारे एक दूसरे की तरफ देखने लगे–अवाक् से।

उसने फिर कहा, 'इसे हम मारेगे, यह कभी दुख पाकर मर जाएगी, तव यही फिर हमीं मे से किसी के घर, हमारी बहन-बेटी बनकर जन्मेगी। इसे मिरगी आएगी या यह गूगी होगी, चीख-चीख कर दुख हमे ही देगी। इसे सताओ मत। यह रोटी के सिवा किसी को नहीं खाएगी। मन करता हो तुम्हारा, तो टुकडा इसे बाहर से ही दे दिया करो। फिर इसे किसी के घर मे घुसने की जरूरत ही क्या?'

घायल और हारी-थकी भीखी दूर एक खेजडे की छाया मे जा पसरी।

लडके बिखरने को हुए। पूरी ने कहा 'भाई लोगो, मेरे कहने से दो मिनट रूको एक बार।'

रूक गए वे।

इनमे बहुत से लडके ऐसे हैं पूरी जिन्हे पढने मे प्राय कुछ न कुछ सहयोग देती रहती है। उन्हे अर्जियाँ और लेख-पत्र लिखवाती है। अन्य विषयो मे भी उनका मार्गदर्शन करती है। कुछ के छोटे बहन-भाई उससे पढते हैं। कुछ वडी लडकियाँ उससे कातना-बुनना भी सीखती हैं। इन सबको यह भी मालूम है कि लेती वह किसी से कानी-कोडी भी नहीं। लडके-लडकियाँ सारे उससे खुश ही नहीं, उसका आदर भी करते हैं।

उसने लडको की ओर गौर से देखा। कई लडके उनमे माध्यमिक कक्षाओ के थे। देऊ और दीपू दो थे–कॉलेज मे पढनेवाले। छुट्टी पर आए हुए थे इस समय।

दृष्टि बडे लडको की ओर करते उसने कहा, 'भाई लोगो, डाकिन-शाकिन तो मैं जानती नहीं, कहो तो कुछ डाकी तो गाँव मे है, मैं बतादू तुम्हे–कुछ रास्ते पर ला सको तो उन्हे?'

'वता पूरी जरूर बता?' पकती समझ के दो लडको ने एक साथ कहा।

'अपने गाँव मे दो-चार तो ऐसे बद हैं जो बस-अड्डे पर प्राय पीए हुए उतरते हैं और वहाँ से अपने घर तक मुँह से फूल बरसाते चलते हैं–चलते भी सीधे नहीं–लडखडाते। गाँव की कितनी ही बहू-बेटिया राह चलती सुनती हैं पर सिवा सिर लज्जा से नीचा करने के और वे क्या करे? आदमी कोई बोलता नहीं, कई वोलते भी हैं तो केवल अपने ही कानो तक। क्या लाभ ऐसे बोलने से भी? और उन पियक्कडो ने तो गाँव के मुँह मे फिराकर देख लिया कि उसके मुँह मे दाँत नाम की कोई चीज नहीं? ऐसे पोपले से अनिष्ट की उन्हे सपने मे भी शका नहीं, ठीक कहती हूँ कि गलत?'

'ठीक कहती हो, यही सोच रखा है उन्होने तो।'

'अव वे डाकी कैसे हुए यह भी सुनलो–वे अपने ही बच्चो के सपने, उनकी जरुरी सुख-सुविधाएँ और उनके कौर भी छीन-छीन रोज खाजाते हैं–शराब की हर घूट के

जाय। तुम उनके बालको के पिचकते गाल, सिकुडती आँते और बुझते चेहरे नहीं देखते?'

'देखते हैं—देखते क्यो नहीं?'

'वे अपनी सरल-सीधी पत्नियो और अपने बूढे माँ-बापो की सुविधाएँ भी बिना डाढ हिलाए गटक जाते हैं न उनके हया और न दया। कहो, डाकी वे हुए कि नहीं?'

'हुए क्या, हैं हीं, वे तो।'

'जवानी मे पैर रखते गाँव के न मालूम कितने लडके इन लतियो के कदमो पर अनायास चलने लगेगे, उनके घर भी डूबे ही समझो। घर के घर चटकारनेवाले ये डाकी नहीं तो क्या?'

एक ने कहा, 'परसो जग्गू मेरे घर के आगे से लडखडाता निकलता, हवा मे बडी भद्दी गालियाँ उछाल रहा था। मेरी माँ को बडा अखरा, एक बार तो जी मे आया ऐसी लगाऊँ धोदी-पछाड—धूल चाटता ही दीखे पर रूक गया परिस्थितिवश।'

दूसरे ने कहा, 'क्या जग्गू और क्या मग्गू सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं ये, ये आए दिन गन्दगी उछालते हैं—गाँव की नीरोग हवा मे। इनके अपशब्द हमारे फाटको की अवज्ञा कर आँगन तक आजाते हैं और हम कानो मे तेल डाले सुनते रहते हैं, यह हमारी कमजोरी नहीं तो क्या?'

पूरी ने कहा, 'पर हमारी कमजोरी हमे ही मिटानी होगी।'

'मिटाएँगे बहन, तुम कहो तो एक बार उनकी पूजा करदे जचाकर?'

'ऐसा तो न करो—कुछ और ही सोचो।'

'और क्या सोचे, लातो के देवता बातो से थोडा ही मानेगे?'

'उन पर कोई ऐसा टोना किया जाय जिससे उनकी धरती पर औरो के मगल का नहीं तो कम से कम अपने मगल का बीज तो ऐसा जमे कि उनकी कुटेव की आँधी मे जगह अपनी नहीं छोडे।'

'ठीक है पूरी देखेगे।'

सब अपने-अपने घर की ओर चल दिए।

विस्फारित नयन उसकी ओर ताकती रही।

पूरी ने फिर कहा, 'भीखी बुआ राम-राम?'

'राम-राम' उसके होठो पर अनायास आ उछला पर वह समझ न सकी, यह साँवली-सलोनी, स्नेह-राशि अप्सरा-सी है कौन? हो-हल्ले और ढेलो की बौछार को चीरती यह सहसा कहाँ से आ टपकी? दिख तो नहीं रही थी कहीं भी?

'बुआ भूखी है?'

'हाँ।'

'छोरे सताते हैं?'

'हाँ।'

'बुआ बालक हैं—अबोध, उनका दोष नहीं, गुस्सा न कर उन पर, माफ करदे, तू बडी है, वे तेरे ही तो हैं।'

भीखी ने आँखे अपनी उसके चेहरे पर रोप रखी थीं और कान लगा रखे थे उसकी आवाज पर।

'कुछ देर यहीं बैठी है न?'

वह बोली नहीं, उसका निश्चय असमजस मे पड गया।

'अब कोई छोरा इधर नहीं आएगा, डर ही मत, बैठी रहना यहीं, अभी आई मैं।'

और पैर अपने फुर्ती से बढाती चलदी वह।

अपने घर आई। बाजरे की दो रोटिया और उन पर गवार-फलियो की कुछ सब्जी, पानी का लोटा, जेब मे थोडी रूई और डिटोल की शीशी लिए वह वापिस वहीं आगई।

'ले बुआ,' उसने उसे सब्जी और रोटिया देदीं। बाटका पानी से भर दिया। उसके टखनो, पैरो की नलियो और कोहनियो पर उभरती खून की बूदे, कुछ सूख गई थीं और कुछ अब भी गीलापन लिए पसरी थीं। उसने उन्हे रूई से पोछा, धीरे-धीरे उन पर डिटोल मलने लगी। भीखी उसके मुख की ओर देखती अपने आपको भूलने लगी। गई घडी तक, जीवन मे मार और तिरस्कार के, वैर-विरोध और बेचैनी के सिवा और कुछ देखा उसे याद ही नहीं पडता। यह स्वप्न है या सत्य, इसी ऊहापोह मे डूबी थी वह। ऐसे प्यार और सत्कार की आद्रता पर उसका अन्धा धरातल सहसा अकुरित हो उठा।

उसने धीरे से कहा, 'तुम्हे पहचाना नहीं?'

'मैं तेरी बेटी हूँ, बरस बीत गए, तू भूल गई।'

'मेरी बेटी? मेरे बेटी कब थी? याद ही नहीं?'

'अरे थी, थी तभी तो हूँ? तू रोटी खा, पानी पी और नींद ले। याद फिर अपने आप ताजा हो उठेगी तेरी।'

वह उसके सामने देखने लगी। उसके मानस पर बार-बार रेग जाता, 'मेरी बेटी? मेरे बेटी कब थी?'

पूरी ने कहा, 'बुआ माँ, अब रोटी तू मागा मत कर।'

'तो।'

'बिना मागे ही मिल जाएगी।'

'बिना मागे ही?'

'हाँ।'

'पर एक काम करना पडेगा बुआ माँ।'

'एक नहीं सौ करूगी, तुम्हारा कहा।'

'किसी घर-गली मे कोई कुत्ता-बिल्ला मर गया हो तो खबर लगते ही तू उसे घसीटती गाँव के बाहर डाल देगी न।'

'डाल क्यो नहीं दूगी, यही तो किया है आज तक।'

'बस, बुआ माँ, इतना बहुत।'

पूरी घर की ओर रवाना होगई।

भीखी का शरीर मार खाया हुआ और थकावट से चूर-चूर था। भूख-प्यास ने भी उसे कम नहीं निचोडा था। वह ससुराल से भी भाठे खाकर निकली और पीहर मे भी स्वागत उसका भाठो से ही हुआ। चेतना पर अवसाद और आत्म-ग्लानि की मोटी परतें जमी थीं। दिनो की नींद थी। खाते ही और कुछ नहीं सूझा उसे, वह वहीं लेट गई। लगभग छ घटे वह गहरी नींद मे डूबी रही। थकावट मिट गई, एक नई स्वस्थता अनुभव हुई उसे। पानी पीने की इच्छा हो रही थी और तभी पूरी आती दिखाई दी।

'बुआ माँ, राम-राम?'

'राम-राम,' और आँखे अपनी उधर लगादी उसने।

'घटाभर पहले मैं आई थी, पर तू सोई थी, कच्ची नींद मे मैने जगाया नहीं तुम्हें।'

'जगाया नहीं, इतना ख्याल मेरा? सचमुच यह बेटी ही है मेरी,' उसने सोचा। वह एक नए राग मे डूब गई।

'ले रोटी-पानी।'

ले लिए उसने।

वह चलदी।

गाँव की अनेक औरतो ने पूरी को टोका, 'पूरी तुम तो हमारी अगुवा हो पर यह क्या सूझा तुम्हे?'

'समझी नहीं, गलती करदी है तो कह दो?'

'शायद तुम्हे याद नहीं, इसी भीखली ने तुम्हारे भाई का कलेजा ले लिया था एक बार, और तुम इस डाकिन को रोटी देकर इस गई बीमारी को गाँव की छाती पर फिर बैठा रही हो? निकालो इसको यहाँ से।'

'इसका भी यही गाँव है, कहाँ जाए यह?'

'हमारे भावे यह खाड मे जाए—चाहे चूल्हे मे पडे।'

'लेकिन अब यह न किसी के घर मे घुसेगी और न किसी से कुछ माँगेगी।'

'तो तुम कब तक देती रहोगी?'

'मैं नहीं सभी देंगे इसे,' पर यह किसी के गले नहीं उतरा। उन्हे लगा पूरी पागल है।

सप्ताहभर पूरी उसे समय पर रोटी देती रही और राम-राम भी करती रही उसके साथ। सप्ताह में कई घरो के आगे, कुत्ते-पिल्ले भी मरे और बिल्ली-बिल्ले भी।

किसी ने कह दिया, 'बुआ, राम-राम, भीखी' राम-राम?'

'राम-राम।'

'मेरे गलियारे मे कुत्ता मरा पडा है चल।'

'चलो,' वह साथ हो लेती कुत्ता घसीट कर गाँव के बाहर डाल आती।

रोटी कोई न कोई दे ही देता, खा ली, फिर किसी ने आवाज दी, 'ले भीखी रोटी।'

'खा ली मैंने तो।'

'अरे दो लड्डू हैं इस पर, वे तो ले ले।'

'दादी, भूख नहीं।'

'नहीं लेगी?'

'नहीं।' राम-राम किया और रवाना।

किसी के घर से बिल्ली घसीटती डाल आई, मालकिन ने देखा, ओढनी इसकी फट रही है, मेरे ओढनी एक अधपुरानी पडी है, दे दू बेचारी को, आवाज दी, 'भीखी, ओढनी फट रही है तुम्हारी, यह ले दूसरी?'

'घिक रही है अभी तो, नहीं लू।' राम-राम किया, चलदी और फिर मुहँ उधर किया ही नहीं। रात इच्छा हुई, वहीं काटली, दिन मे किसी खेजडे की छाया पकडली। राम-राम किया या किसी का काम, बस इतना ही जानती है वह।

मुहल्ले के दस-पाँच बछडे-बछडिया किसी ने कहा तो चरा लाती है, माँगती किसी से कुछ नहीं। उसकी उफनती जरूरत देख, अपने आप ही कोई दे देता है, पर लेती वह इतना ही है जिससे उसकी जरूरत ढक जाय, नगी न हो। गाँव की घृणा इसके साथ प्रेम मे बदल रही है तेजी से। जीवन-धारा उसकी अभाव और आक्रोश की ऊबड-खाबड धरती से चूर-चूर हुई अब किसी सदाबहार मैदान की ओर उन्मुख है।

गाँव के कुछ कहते हैं यह पूरी का चमत्कार है, कुछ कहते है राम-राम का। पूरी कहती है, 'चमत्कार सारा उपजा इस मे से ही है– कृपा इस पर रामजी की तो है ही, पर गाँव-समाज की भी है।'

सायकाल के चार बज रहे थे। गगी झोपडे की ढलती छाया मे खटिया डाले लेटी थी। शरीर पिछले तीन दिनो से कुछ नरम चल रहा है। सहसा किवाडी पर किसी की आवाज सुनाई पडी, 'गगी?'

पूरी आ पहुँची। उसने देखा, गोपीदादा और गज्जू जाट खडे हैं।

चौधरी ने कहा, 'पूरी, दादी कहाँ हैं?'

'वह सामने लेटी।'

गगी की आँखे लगी थीं। वह जाग गई, नीचे बैठती बोली 'आओ माई-बाप, पधारो, बडे दरसन दिए?'

गोपीदादा ने कहा, 'पूरी, अब तू जा।'

वह चली गई जहाँ थी वहीं।

गोपीदादा ब्राह्मणो मे बूझ-बूझाकड हैं और गज्जू जाटो मे।

दादा ने अभी पिछले दिनो ही कहा था गज्जू से, 'जजमान, इस छोरी को कोई टिप्पस लगा, विदा कराओ किसी तरह, नहीं तो वह गाँव को तीन-तेरह कर देगी।'

'क्यो क्या हुआ?'

'तुम अचम्भा करोगे कि बहुत-सी औरतो ने डाकोत को तेल की मिरकली बन्द करदी है—शनि हो चाहे सोमोती?'

'क्यो?'

'कहती है तेल शनि तो पीता नहीं, डाकोत की चिन्ता हम क्यो करे? उसके हाथ-पैर हैं, कमाओ-खाओ। गगू साध का आटा बन्द होरहा है, वह कहती है, आटा बेचता है और दिनभर चिलम खींचता हुआ, चौपड खेलता है? इस तरह तो वह गाँव की सारी मर्यादा ही तोड देगी?'

अब ये दोनो अपनी योजना लिए गगी के पास आए हैं—पूरी के लिए सम्बन्ध लेकर। अपने भरोसे की बन्दूक पूरी तरह भर रखी है इन्होने। निशाना अब तक तो इनका खाली गया नहीं, सोचते हैं आगे क्या जाएगा?

चौधरी ने कहा, 'गगी, गडबड है कोई, थकी लग रही हो?'

'माई-बाप, अब तो सारी गडबड ही हूँ, रामजी सुनले तो ठीक है।'

'पोती के हाथ पीले तो कर जा, फिर जा चाहे।'

'करदे, आप माँ-बाप है।'

'करे क्यो नहीं? अबके तो अनाज भी खूब दिया है रामजी ने तुम्हे?'

'दिया ही है, देनेवाले के हजार हाथ हैं माँ-बाप।'

'दिया है तो ब्याह खूब गाजे-बाजे से कर। छोरी की जितनी चिन्ता तुम्हे है, गगी, तुम्हारी नेकी के कारण कुछ हमे भी है।'

'हो क्यो नहीं, मैं तो हूँ उसकी पाप की दादी और आप हैं उसके धरम के माँ-बाप।'

'समय खराब है गगी, जवान लडकी घर मे रखना आचल मे अगारे बाधना है?'

'सब समझती हूँ माई-बाप—कलेजा हरदम मुट्ठी मे रहता है डर के मारे।'

'फिर ढील किस बात की?'

'विवाह तो लडकी करेगी या गगी?'

'क्या कहती है वह?'

'एक-दो बार चरचा चली थी, पर वह रूख ही तो नहीं मिलाती, बात करना तो दूर, कहती है अभी दो-चार बरस तो मैं पढूँगी।'

'पढ तो बाद मे भी सकती है।'

'पर वह माने तब न?'

'फुला उसे।'

उसने आवाज दी, आगई वह, खडी होगई एक ओर—नमस्कार करती।

दादा ने कहा, 'बेटी, दादी तेरी अब बिखरती लौ है, तेरे हाथ पीले करने की मनसा मन की मन मे लिए चलदी तो आत्मा इसकी पता नहीं, कब तक पीडा के आकाश मे भटकती डोलेगी? इसकी मौत को सुधार तू।'

'दादाजी, इतनी चिन्ता हमारी पहले तो आप लोगो ने कभी नहीं की, गाँव को दादी ने आठ-आठ आँसू डालते बडी बेबसी मे छोडा था। आप मे से किसी ने हमदर्दी का होठ तक नहीं हिलाया? आज आपको मेरे विवाह की चिन्ता भी सताने लगी, पत्थर आपका अचानक पिघल उठा है, कहीं कोई दाल मे काला तो नहीं?'

एक बार तो मुँह उनका फक् होगया, फिर भी बात की गिरती डोर खींचते हुए पतग अपनी उन्होने ऊपर उठाई, बोले, 'हमारा रोना एक ही बात का है कि समय बडा नाजुक है, तुम दादी-पोती हो अकेली, और दादी हुई न हुई बराबर है, कब किसकी बुद्धि बदल जाय, तू समझती नहीं, हमने पापड बेले हैं, जमाना देखा है, कहते हैं तो कुछ समझकर ही कह रहे हैं।'

'समय नाजुक है, और आपकी है गाँव मे चलती है तो आपका हाथ हम पर केवल इतना-सा बना रहे कि हमे कोई बद आँख से न ताके, इतना बहुत। मेरे विवाह की चिन्ता तो आप छोडदें एक बार, मेरी उम्र की आपकी पोती भी तो बैठी है, कवारी। घर के कवारे, पडोसियो को फेरे? चिन्ता पहले उसकी करे आप, मेरी नहीं। मुझे अभी ससुराल नहीं दिखता, मेरा गाँव दिखता है—उदासी और अन्धकार ओढा। मैं उसकी कर्जदार हूँ, पहले कर्ज उसका चुकाऊँगी। कर्ज तो आप पर भी है उसका, आप भी योग दे, आपके जीवन वृक्षो पर नई सुगन्ध फूटेगी, नहीं तो उन ठूठो पर कौए बींठ करेगे—आपके पशु खूटे बन्धे मरेगे। मेरे गुरू कहा करते थे, दुनिया मे इससे बडा कोई पाप नहीं। अब भी समय है चेते तो?'

सोच लिया उन्होने, 'यहाँ दाल अपनी गलेगी नहीं।'

राह चलते-चलते, गज्जू ने कहा दादा, 'छोरी बडी चालू रकम है, बात को जमीन तक आने ही नहीं देती। लगता है, पहले की तरह ही ये एक बार फिर पिट-पिटाकर चेहरा छिपाए, निकलेगे यहाँ से और अबके निकले तो गाँव के दरसन फिर नींद मे ही भले ही करे, जागते तो नहीं होगे।'

'भोगना ही लिखा है तो कौन रोकेगा, मरने दो करम फूटो को।'

और दोनो अपने-अपने घर की ओर ढीले मुँह किए चल दिए।

छब्बीस

दिनभर का सूर्य, अब आकाश के पश्चिमी ढाल पर उतरता रक्ताभ मे ओझल होने की उतावल मे था। क्षितिज पकडने मे अधिक से अधिक बीस मिनट की देर ही और समझो उसे।

अगहन का उतरार्द्ध था और हवा मे था कुछ-कुछ शीत लहर का समावेश। गाँव के बस-अड्डे पर बस ज्योही रुकी, पाँच-सात यात्री उतरे और गाँव की ओर चल पडे। केवल दो यात्री प्याऊ के बरामदे मे आ बैठे। उनके मुहँ से रह-रह शराब की बदबू आरही थी, तीती नहीं, हल्की। नशा उनका अभी चोटी नहीं पकड पाया था। पटरी से उतरती अपनी वाणी का परिचय तो उन्होने बस मे ही दे दिया था, पर जीभ और पैरो पर लडखडाहट उनके अभी पूरी नहीं उतरी थी। इनमे एक था जाट और दूसरा था हीर। दोनो तीस और पैंतीस के बीच मे थे।

परिवार की गाडी इनकी चलती तो है पर हाँपती और रुक-रुक कर। बाल-बच्चे हैं, कई पढने भी जाते हैं, पर जाते हैं उदासी से ढके हुए। हाप्पैंट-कमीज हैं पर हैं थेगडी पडे हुए, जूते नहीं हैं, पाटी है पर पुस्तके नहीं। ठढा-बासी जैसा मिला खा लिया और चल पडे। शाम को आगए खीचडा, दलिया खा, किसी गूदडे के नीचे चले गए। सुबह गीड पोछते फिर उसी राह। अपने और साथियो को नए कपडो और नए जूतो मे देखते हैं तो मन तो उनका भी करता है, पर मन मसोसकर रहने के सिवा उनके पास और कोई चारा भी तो नही? बादशाहो के बेटे हैं वे, यह कम है?

बूढे माँ-बाप हैं, सपूतो को बरजते-बरजते उनके होठ थक गए, पर चिकने घडो पर बूद भी तो नहीं ठहरती। अब होठो के ताला लगा चुप्पी ओढली उन्होने। देखते हैं पर होठ नहीं खोलते। सुबह आँखे खोलते ही कभी वे, अपने ही हाथ जगन्नाथ समझ, देखा करते पर अब कातर होते, पहले-पहल परमात्मा से यही प्रार्थना करते हैं, 'रामजी, तेरे से कुछ नहीं माँगते, बस यही कि हमे जल्दी से जल्दी उठाले, कठो नक आगए हम।'

पत्नियाँ उनकी रोज जहर के घूट पीकर भी, जीवित कैसे हैं, यह वे ही जानती हैं। विलक्षण है उनका धीरज।

ये न पीएँ तो माली हालत इनकी सालभर मे औसत सुविधा से ऊँची उठजाय पर ये बेताज बादशाह किसकी सुने और किसको देखे?

कस्बे से आते इन्होने पोलियन की एक थैली मे लहसुन मिले चार सौ ग्राम गरमागरम पकौडे भर लिए थे। अपने-अपने थैले से बोतल अपनी-अपनी निकालली, बीच मे पकौडे रख लिए एक घूट शराब की और ऊपर दो-दो पकौडे चबाते गए। बोतले खाली करके, फैंकदी, एक के टुकडे-टुकडे होगए दूसरी रेत पर लुढक कर फूटने से बच गई पर फैंकनेवाले को इसका कोई आभास ही न हुआ—फूटी तो क्या और बची तो क्या?

गाँव की ओर चल पडे। नशा अपनी गिरफ्त मे लेने लगा उन्हे। अब पैर भी इनके लडखडाने लगे और बोल भी। वे चलते-चलते मिनट-आध मिनट बैठ जाते, फिर चलने लगते वैसे ही लडखडाते।

सूर्य क्षितिज से लुढक कर, नीचे चला गया था, अब बारी अन्धेरे की थी।

देट और दीपू खेत होकर लौट रहे थे। उन्होंने देख लिया इन शहजादो को। पूरी के [illegible] गाँव के असली डाकी तो ये हैं—न भीजी और न और कोई। अरे, ये अपने घर [illegible] बरसाते तो गाँव को क्या बरसेंगे?' स्मृति की गहरी परतो पर सोए वे बोल,

देउ के मन पर इस समय सहसा जाग उठे।

उसे याद आया, दो रोज पहले, अधीर होती उसकी माँ के होठो पर उछला था, 'रामजी, इन डाकियो से गाँव का पीछा कब छूटेगा, कितने फूहड बक्ते हैं ये? आदमियों का तो राम निकला हुआ है एडी से चोटी तक, और पचायत डूबी है नाक तक, अपने ही दल-दल मे। हम औरते कहाँ तो निकले और क्या करले?'

उसने पूछा था, 'कौन था माँ?'

'किसे बताऊँ बेटा, यहाँ तो भूत मरते हैं और पलीत जन्मते हैं, मैंने तो कानो के कीडे झडनेवाले नगे-नोचे कुछ बोल ही सुने थे, क्या पता जगू था या जैराम? था तो इनमे से ही कोई।'

इस समय उसने सोचा, 'आज जैसा सुनहरा मौका फिर कब हाथ लगेगा? एक पत्थर से दो शिकार, जगू और जैराम साथ ही मिल गए। चँवरी अलग-अलग, मुहूर्त एक ही, इस गोधूलि वेला मे, फेरे आज ही दे दे इन्हें।'

उसने कहा, 'दीपू, मौका अच्छा है, करो बीज-बारस इकट्ठी, ऐसा योग पचाग मे भी नहीं मिलेगा।'

'ठीक कहते हो, यही योग, गाँव के कुयोग को भी नष्ट करेगा, चूको ही मत।'

वे तत्परता से पैर उठाते, घर आ लिए। पाँच-सात बडे लडको को सकेत कर दिया कि अधिक से अधिक छोरो को लेकर कच्ची सडक पर पहुँचो। सूचना लडकों मे आगे से आगे, जगल की आग की तरह तेजी पकडती गई। वानर सेना को कौनसी तैयारी करनी थी? उन्हे तो कौतुक चाहिए। कोट नहीं तो, शरीर का बोझ मिटा और मन का भी। पैर नगे हैं तो, भागने मे सुविधा। कोई खा रहा था तो एक टुकडा मुँह में, और एक हाथ मे, थाली छोडदी वहीं, दौड पडे—मदारी की डुगडुगी सुन पड गई हो जैसे।

' देउ ने घर से कोढी रग की एक पुडिया ली और लिया अपना टॉर्च भी। दीपू पानी का लोटा लिए आ पहुँचा। इतनी देर मे वे दोनो महाशय, दूल्हा चाल चलते, घूरे के बराबर आ लिए। वहाँ से गाँव अब पचास-साठ कदम ही रह गया था। लडके बीस-पच्चीस और आ पहुँचे थे, शेष एक-दूसरे से आगे निकलने की होड में हवा हुए आ रहे थे।

देउ और दीपू उन दोनो सपूतो के आगे आ खडे हुए—गतिरोधक की तरह। उनके पीछे थी हनुमानजी की पूँछ की तरह बढती छोरो की कतार।

देउ-दीपू ने दोनो का एक-एक हाथ पकड लिया।

देउ ने कहा, 'रुक जाओ बादशाहो, पैदल चलने मे तकलीफ होरही है आपको, दो मिनट यहीं बिराजो आप, सवारी का इन्तजाम अभी करते हैं—आप साहिबो के लिए।'

आँखें तरेरते एक ने लडखडाती जबान में कहा, 'बदतमीज हट सामने से, स्साले----क्या समझ---ता है, कच्चाऽऽ, कच्चा--- चबा--- जाऊँगा। मेरा नाऽऽम सुना है कि नहीं? छोड---- हाथ, छोडदे---- मैं कहता हूँ।'

दूसरे ने कहा, 'स्सालो, भून---भून दूगा, हरामजादो।'

पकड़े हुए हाथो को देउ-दीपू ने जोर से झटकाते कहा, 'बादशाहो के बच्चो, सुन लेना,

ज्यादा चू-चप्पड की तो शेखी सारी धूल मे मिला देगे, बैठ जाओ चुपचाप।'

'चौ--प्, बन्द करो बकवास,' वाणी को साधते एक ने कहा।

'आपका हुकम सिर पर, अभी करते हैं बकवास बन्द, पहले आप भी तो करो।'

देउ ने चुलू मे थोडा पानी ले, कोढिया रग की पुडिया घोली उसमे, और दोनो के चेहरे, हथेलियो पर पूरा बल देते गहरे पोतदिए।

'क्या करते हो यह।'

कुछ नहीं, बींद बनाते हैं—बींद आपको।'

'बींद?'

'हाँ।'

'बनाओ,---बनाओ, जरूर बनाओ---बींद?'

दो धागो मे ऊँट के सूखे मींगणे, कुछ सूखे गध-लेडे पिरोकर एक-एक माला उनकी गर्दनो पर डालदी। दो मिनट ही नहीं लगे छोरो ने मालाएँ तैयार करदीं। फटे-पुराने जूतो के दो तलिए घूरे पर से मगवाए और एक-एक उनके सिर पर बाध दिया।

'यह क्या बदतमीजी है?' एक ने कहा।

'बदतमीजी कुछ नहीं बादशाहो, बींद हैं आप, मौर बाध रहे हैं, मौर आपके।'

हाथ उनके पकडे हुए थे, जबान उनकी लडखडा रही थी और चेतना शराब ने कस रखी थीं। चारो ओर था छोरो का जमघट, करते क्या?

देउ ने छोरो से कहा, 'जय जवानो?'

'हाँ देउ भाई।'

'फुर्ती करो, घूरे से लम्बे कानोवाले दो घोडे लाओ सुन्दर से।'

'अभी लो देउ भाई, यह रहा घूरा सामने ही।'

लडके भाग छूटे, तीर की तरह तेज। गधो को जा घेरा, जवान थे वे निकल भागे, बूढे रह गए दो। कान पकडे, ला खडे किए उन्होने। छोरे सवासौ से ऊपर होगए थे। इक्के-दूक्के अब भी तेजी से भागे आरहे थे।

बाहे दोनो की पकडी हुई थीं। दो बडे लडको ने कमर से पकड-पकड, ऊपर उठाया और लम्बकर्णों की पीठ पर बडे प्रेम से बैठा दिया उन्हे। आनाकानी उनकी चली नहीं। एक-एक पैर दाएँ-बाएँ लटकवा उनके वैशाखनन्दनो को हाँकने लगे—लडके धीरे-धीरे। बारात चल पडी।

देउ ने कहा, 'एक मिनट रुको।'

रुक गया जुलूस। सारे लडको को उसने पूर्वाभ्यास के रुप मे समझाया, 'पहले हम दो-चार लडके एक सवालिया नारा बोलेगे, उत्तर मे फिर तुम बोलना—गले की ऊँचाई से।'

लडको ने बडे उल्लास से कहा 'बोलेगे, जरूर बोलेगे।'

अन्धेरा तर-तर गाढापन पकड रहा था। एक छोरे ने समझदारी की घर से लालटेन ले आया। टॉर्च पहले से थी ही। बींद कहीं डिग न जाए, कुछ लडके उन्हे थामे थे और

कुछ गधो को, वे कहीं बगावत न कर बैठे। मुँह बींद राजाओ के बदबू दे रहे थे–कीचड-खाई पुरानी मोखियो की तरह।

दो बडे लडके बुलन्द आवाज मे उद्घोष करते, 'पियक्कड?'

सारे लडके प्रत्यु र मे बोलते, 'मुर्दाबाद।'

'असली ढाकी?'

'गाँव के पियक्कड ही।'

'पियक्कडो की?'

'अब नहीं चलेगी।'

'जो इनका पख लेगा।'

'वह भुगतेगा।'

फिर लडके गाते, 'केसरियो लाडो जीवतो ही रह, गायडमल धीमा चालो, निरखा थारी चाल।' फिर वही नारे, फिर वही गीतो की पक्तियाँ–एक कम, एक आवाज–अबाध और अव्याहत गति से।

गाँव का आकाश रह-रह कर गूज उठता–इन नए नारो और गीत पक्तियो से। जूलूस धीरे-धीरे चल रहा था–किसी भव्य बारात की तरह बडी शान से।

औरते चूल्हा-चौका भूल कर घरो की बाडो और दीवारो पर से गर्दने उठाए विस्फारित नयन यह विचित्र और सर्वथा नया नजारा देख रही थीं। अनेक औरते छतो पर जा चढीं और काने-घूघट से नए बींदो का अवलोकन करने लगीं। औरते तो निनानवे प्रतिशत से अधिक, बडी राजी थीं इस दृश्य से। छोरे-छोरियो को इससे बढकर और कोई तमाश नहीं रह गया था। जुलूस की काया बढ रही थी सुरसा के बदन की तरह और बींदो के पुते हुए मुख कमल लालटेन के प्रकाश मे साफ दिखाई पड रहे थे। ये जल कमल नहीं थे, थल कमल थे–शराब से सींचे हुए।

आते-जाते आदमी रुक जाते, देखते, फिर निन्दा-स्तुति करते। कई आक्रोश मे भी भर जाते पर यह हिम्मत किसी की नहीं होती कि दो-चार लडको को रोक कर इस बारे मे कुछ पूछे या डाटे किसीको। अपना-अपना अनुमान लगाते वे खिसक जाते।

गाँव की प्रमुख गलियो का चक्कर काट, जुलूस पचायत-भवन के पास जा ठहरा। बोतल-बन्धुओ को सुरक्षित उतार दिया और वैशाखनन्दनो को उनकी मनचाही छुट्टी दे दी। लडके हँसते-कूदते अपने घरो की ओर खिसक गए। खबर गाँव मे लोगो के बिछौने ने से पहले-पहले फैल गई, पर बिजली कडकी कहीं और गिरी कहीं, अगले दिन गाँव अधिकाश होठो पर था, 'इस नाटक के, पर्दे पीछे सारी भूमिका पूरी की थी। एक दिन ने इन लड़को को उकसाया था, 'अरे इन डाकियो का इलाज करो न कुछ, गॉव के सली डाकी तो ये ही हैं,' लडके,लडके ही होते हैं, भावावेश मे उन्होने उत्तर दिया, है पूरी बहन, जरूर करेगे,' और हाय कगन को आरसी क्या उसका वह बिखेरा जहर उन्होने सामने कर दिखाया।'

कुछ रूढिवादी बूढो ने कहा, 'अरे औरतो पर छडी घुमाती अब यह छोरो पर भी घुमाने

लगी, पर छोरो ने यदि इसकी उलटी पाटी पढली तो, गाँव फिर गया ही समझो, न गुर का रहेगा और न पीर का, भूतो का होजाएगा। अब भी समय है, इलाज करो इसका नहीं तो यह निगल जाएगी गाँव की सारी मरजादाएँ।'

घडियाली आँसू गिराते, बेर की जाति के कई अगुआ, मुँह मे राम बगल मे छुरी, उन पिटे पियक्कडो के पास जा पहुँचते, उन्हें आत्मीयता मे बाध एक कहता, 'क्या कहे भाई, ऊमर ले ली पर ऐसा अनरथ मैंने तो आज तक गाँव मे न देखा और न सुना। इससे तुम्हारी नाक ही नीची नहीं हुई, गाँव की नाक भी तो नहीं बची? कैसा जाल गूथा है, चमार की छोरी ने?'

दूसरा कहता, 'अरे, इस चमार की छोरी ने यह कर दिखाया तो मिट्टी के माधो तुम भी नहीं? ऐसा करो, स्साली यह भी याद रखे, अम्मा तेरी कि मेरी, मालूम पडे इसे भी टक्कर ली थी किसी से? जहरीली जड मे इसके मट्ठा ऐसा निचोडो कि फिर अमृत बरसे तो भी हरियाली न फूटे उस पर। तुम्हारी माँ और बहुओ पर क्या बीती होगी उस बेला, तुम्हारे पीछे जुलूस को देखकर? जमीन जगह देती तो वे अन्दर धस जाती।'

वे इस तरह की छलिया हमदर्दी से ढकते उनका मानस। इस प्रपच के प्रमुख खिलाडी गोपू महाराज और गज्जू चौधरी थे। सोच उनका यही था, सवार पडे तो एक मजा और घोडा पडे तो दो। सौदा पटे और अपनी मुट्ठी गर्म हो–किसी भी तरह। भोगी ठगाए या रोगी अगूठा मर्मस्थल पर टिका रखा था उन्होने।

उदासी समेटने के प्रयास मे उन भुक्तभोगियो से उत्तर मिलता, 'आपका हाथ सिर पर चाहिए दादा खातिरदारी उसकी ऐसी करना चाहते हैं कि खीर उसकी कुत्ते भी न खाएँ पर दीठ-दिशा आप ही देगे।'

अपने हमउम्र के दोस्तो से वे कहते, 'चाहे जेल ही भुगतनी पडे, इस छोरी की और नहीं तो नाक ही काट लेगे, जेल ज्यादा से ज्यादा छ महीने की ही तो होगी, खट लेगे।'

इस तरह एक सामूहिक और षडयन्त्रकारी आक्रोश पूरी पर फिर मडराने लगा। पर उन दोनो का एक बार पीना तो दूर, सप्ताह निकल गया वे घर से बाहर भी नहीं निकले। दिन मे कई बार दर्पण देख-देख चौखटा पोछते, उदास होजाते। दर्पण बोलता तो नहीं था पर हकीकत सारी सटीक इगित कर देता। चेहरे की चमडी उनकी अब भी कहीं-कहीं हल्की स्याही पकडे हुए थी। अनचाही शर्म और कुठा उनकी चेतना से उठकर चश्मदीद गवाह-सी उनकी आँखो पर आ बैठती। चेहरा फीका पडने लगता। मन उनका प्रतिशोध खोजने मे बेचैन हो उठता।

भुआ को मरते देख भतीजो का मन भी मौत से घबराने लगा।' इस काड के बाद, गाँव के अन्य पियक्कड भी पीकर ऊल-जलूल बोलते हुए गलिया पार करने की हिम्मत नहीं जुटा पारहे थे। सोचते थे 'क्या पता साली वानर-सेना का। बिना मतलब ही कहीं मिट्टी पलीद करदे? इन सालो पर कोई केस भी तो नहीं बनता? क्या करले इनका कोई?'

सताईस

सप्ताह निकल गया। पूरी पर पसरते आक्रोश का अवाँ ऊपर से ठढा लग रहा था पर भीतर ही भीतर ऊष्मा उसकी धक्-धक् करती किसी नए विस्फोट के रूप मे बाहर आने को आतुर थी। वह केवल किसी दुबली-पतली दरार की तलाश मे थी।

आधी रात। हवा ठढी और सर्दी सीमा तोड। गाँव पर सन्नाटा। लोग झोपडो, कोठों और कमरो मे गूदड और रजाइया ओढे दुबके थे। किवाड सब के बद थे।

भीखी डेढ-दो घटे तो एक दीवार की ओट लिए करवट बदलती रही पर इससे न उसका शरीर ही गर्म हो रहा था और न नींद ही आँखो पर उतर पा रही थी। वह उठबैठी। घुटनो पर सिर टिकाए कुछ देर राम-राम करती रही। सहसा उसकी स्मृति पर नाच उठी वह छतरीनुमा गहरी जाल, जिसके नीचे अक्सर वह दोपहर को कुछ देर बैठ, अपने आप से बतियाती खो जाया करती है। कभी-कभी अपने अतीत मे झाकती, क्षणभर को वह काँप उठती है। फिर सम्हली हुई मन से कहती है, 'अरे, बाज नहीं आएगा औंधा चलने से? क्या लेगा घूरा छानकर? धत्,और सहसा उसके होठो पर राम-राम उछलने लगता है। निरन्तर नामोच्चारण मे कभी, दस-बीस मिनट के लिए उसकी आँखो पर अभाव और ऊहापोह से रहित, एक अनचाही नींद आ उतरती है। सारी चेतना उसकी एक नैसर्गिक मिठास से भर जाती है। शिवोऽह हुई का स्वाद गूंगे के गुड की तरह केवल वही जानती है। आँखे खुलते ही फिर नई ऊर्जा और नया उल्लास लिए वह खडी होजाती है। सूखी-अधसूखी लकडियाँ तोडती पाँच-सात कीलो की एक भरौटी बना, गाँव की ओर चल देती है। जहाँ उसका मन करता है, भरौटी वहीं डाल, बिना पीछे देखे, चल पडती है—अपनी मौज मे जिधर जी चाहे।

सोचा, 'वहीं चलू, उसी के नीचे, ठढ कम लगेगी, यहॉ से पाव-कोस ही तो है वह।' कौन-सी तैयारी करनी थी उसे। कथा कन्धे पर डाली, पानी की डोली हाथ मे थामी और चलदी अपनी मजिल की ओर। जाल के नीचे आ बैठी वह। वहाँ सर्दी उसे कम महसूस हुई। मन ही मन कहा उसने, 'सोचना मेरा सही निकला, पर रेत तो यहाँ भी काफी ठढी है।'

ऊपर की चार-चार अगुल रेत खींच-खींच उसने चारो ओर मेड की तरह लगादी। तल अब, उतना ठढा न रहा। सोच रही थी, 'कुछ देर यहॉ सो लूगी, पर पहले अधघडी राम-राम तो करलू।'

बैठ गई, दो मिनट ही मुश्किल से बीते होगे, सहसा उसने देखा उससे बीस-पच्चीस कदम की दूरी से, कोई भागा जारहा है। उस पर तीखी नजर डालते उसने कहा, 'कौन है रे?'

उत्तर मिलना तो दूर, वह और तेज होगया।

उसने सोचा, 'निश्चय ही यह कोई चोर-उचक्का है, गाँव में जरूर कुछ-न-कुछ अकाज करके आरहा है।' वह तुरत उठी, गुदडी वहीं छोड, लम्बे डग भरती उसके पीछे भाग उठी। तीन-चार मिनट ही भागी, उसे दूर से दीख पडा, सैंसियो के डेरे मे धुसता वह ओझल हो गया। वह वापिस मुड गई पर हाँप उठी, धीरे-धीरे चलती अपनी गुदडी पर आ बैठी।

सोचने लगी, 'मेरा भाई तो साढे-छ फुट लम्बा है और इतना तेज वह भाग भी नहीं सकता, हो न हो यह चोखला है--उसका बडला छोरा पर यह भाग क्यो रहा था? आवाज दी तो बोला क्यो नहीं? वह जदि नहीं था, दूसरा ही था कोई तो उसका इस डेरे मे क्या काम? होना चाहिए चोखला ही, वह है भी आवारा और अनाडी, जरूर कहीं गडगड़-घोटाला किया है उसने, गाँव मे चलू मालूम करू?' फिर सोचा, 'मालूम क्या करना है, नाई-नाई केस कित्ते, वे सामने आजाएँगे? हुआ है वह, सुबह अपने आप ही मालूम पड जाएगा।'

इसी ऊहापोह मे, घुटने छाती से सटाए वह लेटगई। सोई रही, डेढ-दो घटे।

सूर्योदय से कुछ पहले ही गुदडी उसने समेट कर एक फोग पर डालदी। सबसे पहले उसने रातवाले पैरों के निशान देखे। उनका आकार-प्रकार ध्यान से बैठा लिया। वापिस आई आँखे छिडकीं, दो घूट पानी पीया और जगल में चली गई दूर तक। लौटने पर किसी ने कहा, 'भीखी मेरे घर के आगे एक कुतिया मरी पडी है, चलेगी नहीं?'

'चलूगी क्यो नहीं, चलो आरही हूँ, तुम्हारे पीछे-पीछे।'

ज्योंही वह गगी के घर के पास से गुजरने लगी उसने कुछ भीड को जमा होते देखा वहाँ। उसकी जिज्ञासा जाग उठी। वह भी जा खडी हुई भीड के पास। उसने देखा सबकी नजर गगी के अधजले झोपडे पर टिकी है। वह देखने लगी उधर ही। उसने कम्बल, खेस और पहनने के कुछ कपडे भी आँगन मे पडे देखे। कुछ उनमे जरा-जरा दाझे हुए थे। भीड मे देउ भी था।

गगी के घर से पाँच घर छोड, पूरन नायक का घर है। वह भीड मे खडे सरपच को कह रहा था 'साब, रात आधी बीती होगी, मैं पेशाब करने उठा। नजर मेरी, हटात् गगी के घर की ओर चली गई। झोपडे के फूस से उठती लुक दिखाई दी मुझे। मैं तुरत भागा उधर और अपनी पूरी ताकत से आवाज दी, 'अरे लाय लग गई, दौडो-दौडो, भागो लाय-लाय।' मुहल्ले के आदमी-औरते गूदडो से निकल-निकल आने लगे। हम कुछ, झोपडे की छत पर चढे औरते हमे पानी की बाल्टिया, डिब्बे, डोलिया पकडाती रहीं। हम [illegible] भी भिगोते रहे और आगे से आगे के फूस को भी। एक ने जलते फूस से दो हाथ [illegible] का फूस उखाड कर नीचे फैका। एक औरत झोपडे का कुडा तोड भीतर घुसी। [illegible] और [illegible] बाहर निकाल लाई। गगी को खबर की। विशेष नुक्सान छत का ही [illegible]। आग पर, जैसे-तैसे काबू पा लिया गया। दस-बीस मिनट यदि देर होजाती तो न झोपडा बचता और न सामान। ठोकर जैसी लगी गिरना वैसा हुआ नहीं।'

[illegible] गूगी की तरह सुन रही थी और दुखियारिन की तरह देख रही थी--फटी आँखो से-[illegible] भीड को और कभी झोपडे को। पूरी के चेहरे पर उदासी जमी थी और मन पर

असमजस। कई इधर-उधर पैरो के निशान देख रहे थे। निशान भीखी ने भी देखे, अपनी पहचान, उसकी आँखो पर नाच उठी। सब के होठो पर उछल रहा था, 'आग लगाई किसने? इसमे किसका स्वार्थ अटका था?' निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए तन्तु कोई मिल नहीं पारहा था। भीखी तब सामने आई, रातवाली घटना उसने, ज्यो की त्यो सबके सामने उगलदी और अपने काम की ओर इस तरह चल पडी जैसे उसके ठहरने का अब यहाँ कोई मतलब ही नहीं।

देउ ने सरपच से कहा, 'कृपा कर, कुछ देर आप और रूकें यहीं, हम अभी आते हैं उस छोरे को लेकर।'

उसने दस-बारह लडके लिए और जा पहुँचा सैंसियो के डेरे, आवाज दी 'चोखला?'

उसकी माँ आई, बोली, 'बोलो बाबू?'

'चोखले से काम है।'

'सोया है, गडबड है उसके।'

'गडबड है तभी तो पूछ रहे हैं, एक बार बाहर तो भेज उसे।'

वह सोया नहीं था, चूल्हे के पास बैठा बीडी पी रहा था।

ढीला मुँह किए बाहर आया वह। उसके अबोल चेहरे पर अपराध अकित था।

देउ ने कहा, 'चोखू, हमारे साथ चल थोडा, कोई खास काम है तेरे से।'

'आप चलो, मैं आता हूँ।'

'चरा मत, हमारे साथ ही चल।'

वह दुविधाग्रस्त आँखो से सामने देखने लगा।

'देखता क्या है, आदमियो की तरह चलता है तो तेरी शान है, समझदारी है, वरना हम घसीटत्ते हुए भी लेजा सकते हैं, उसमे क्या निकालेगा? हाँ इतना भरोसा मैं दिला देता हूँ कि न हम मारेगे तुम्हे, और न किसी दूसरे को ही मारने देगे, शर्त यही है कि कहना तुम्हे साफ-साफ पडेगा, झूठ बोला तो हम जबान भी नहीं हिलाएँगे।'

'कहना क्या है मुझे?'

'यह भी तू हमे ही पूछता है। आधी रात तुम्हे भागते हुए किसीने देखा कि नहीं?'

'हाँ।'

'पर तू रूका नहीं, और तेज होगया?'

'हाँ।'

'बस यही सब कहना है तुम्हें, फिर आजाना, रूक कर वहाँ क्या लेगा?'

बात का मूल बहुत कुछ वह समझ गया। उसकी इच्छा थी, न चलू, बचू किसी तरह, पर छोरो के जमघट के सामने, अब चलने के सिवा और कोई चारा ही न था।

वह चल पडा और भीड़ के सामने आ खडा हुआ। पैरो के निशान दिखाते सरपच ने कहा, 'ये निशान तुम्हारे ही हैं न?'

सकपका गया वह, पर पैर भी वहीं और निशान भी वहीं, हाँ के सिवा और क्या कहता?

'यहाँ घोक लगाने आया था?'

वह बोला नहीं, नीचे की ओर देखने लगा।

'यह बता झोपडा क्यो सुलगाया। सच-सच कहदे छोड दूगा।'

तब भी वह बोला नहीं।

'गगी से तेरा कोई बैर है?'

'नहीं।'

'तो फिर किसी ने तुम्हे ऐसा करने के लिए फुसलाया होगा?'

वह आँखे तरेरता सामने देखने लगा।

'अरे बेधडक होकर कहदे, डरने की जरूरत नहीं, विश्वास रख तेरा बाल भी बाका नहीं होने दूगा।'

'गोपूदादा और गज्जू चौधरी ने कहा था मुझे,' अनइच्छा होते हुए भी, उसने धीरे से होठो पर उछाल ही दिया।

'शाबास, ऐसे कह। कुछ दिया भी तो होगा रे, या मुफ्त मे ही चढ मेरे बेटे शूली?'

'पचास रूपये दिए थे।'

'पचास मे तो आग बडी सस्ती लगवाई बदमाशो ने तेरे से? हजार-पाँचसौ मे तो तेरे से वे पूरी का सिर भी उतरवा सकते थे। जो गाँव का इस तरह अनिष्ट करने पर उतरे है उन पर कानूनी कारवाई होनी ही चाहिए, बोलो?' सरपच ने उपस्थित लोगो की ओर देखते कहा।

सभी ने एक सहमति से कहा, 'जरूर साब, जरूर, इस तरह अगर होता रहा तो गरीब तो फिर बस ही नहीं सकेगे।'

'ठीक है तो फिर, आप लोग जाओ, थाने मे खबर करवा देता हूँ अभी।'

लोग अपने-अपने आवास की ओर चल दिए। चोखले को सरपच ने पचायत-भवन ले जा चपरासी के हवाले कर दिया कुछ घटो के लिए।

एक-डेढ बजे थानेदार आगया एक जोगा लिए। एक मुशी और दो सिपाही साथ थे। चोखले से आवश्यक पूछताछ के बाद गोपू महाराज और गज्जू चौधरी बुलवा लिए गए। इस हादसा करवाने के लिए रकम उन्हे जगू और जैराम ने दी थी, इसलिए वे भी कटघरे से आ जुडे। एक अपराधी, दो दलाल और दो पूजी लगानेवाले।

प्राथमिकी लिखी जा रही थी। सब भारतीय दड-संहिता की अलग-अलग धाराओ मे डूब रहे थे।

पाँच बजरहे थे शाम के। थाने की जोगा हॉर्न देती इन पाँचो को बिठाए निकल रही गली-गोट मे से। सभी के कान हो रहे थे खडे और आँखे उठ रही थीं ऊपर। अनेक-अनेक लोगो ने गोपीदादा को देखा, लट्ठे की कस्सेदार अगरखी पहने, सिर पर पीला साफा गोल और कुछ ढीला छाती को छूती-ढकती सफेद-झक दाढी, दर्पण देखकर रूई उगलियो से निकाला हुआ चन्दनी त्रिपुड उनकी इस वेशभूषा और साज-सज्जा ने गाँव के मानस पर उनकी एक विशिष्ट पहचान खडी कर रखी थी–प्रभावी और दुर्जेय। एक रुद्राक्षी माला भी उनकी अगरखी के बाहर झूलती रोज नजर आती पर

लगता है इस समय वह अगरखी के नीचे का अन्धेरा ओढे एक अनचाही उदासी भोग रही है। होठ उनके बन्द थे और चेहरा था लटका हुआ। गज्जू के सिर पर उजला मलमली साफा और चेहरा उदासी की बाल्टी मे से डुबा कर निकाला हुआ-सा। आँखे घुटनो पर टिकी–त्राटक साधती-सी।

गाँव के नए भूपाल जग्गू और जैराम की सवारी कुछ दिन पहले गर्दभ-राजो की पीठ पर बडे धूम-धडाके से निकाली गई थी। उस समय उनकी प्रतिशोधात्मक आग और आक्रोश उनका, उनके अह के आकाश को छू रहे थे। आज उन्हे जोगा मे बैठाया गया है, इस समय वह जोगाई आसन भी उन्हे गधो की सवारी से अधिक अखर रहे हैं। भय और अपमान के दुर्वह भार से पीडित चेतना उनकी, जमीन की किसी मोटी दरार को तलाश रही है। बडी चुभती चर्चा छिड रही थी उन पर।

औरतो मे से एक कह रही थीं, 'देखो-देखो, एक तिलकधारी गोपूदादा को, मरी खाए इसे, मैने सिवाले मे भाग पीते-पिलाते कित्ती ही दफा देखा है इसे, बडा महात्मा बना बैठा रहता था, मुझे क्या पता अन्दर से इतना काला है यह? इससे तो डाकू अच्छे, वे तो जड ही लूटते हैं, यह तो जीवन को ही चौपट कर देता है।'

दूसरी ने कहा, 'अरी, नम सिवाय का कीरतन करते नहीं देखा तूने इसे। आँखे बन्द किए, बडा सिर हिलाता था, लगता था सिवजी इस पर सदेह उतर आए हो। बरस बीत गए मुझे, इसकी धोक खाते, पता ही नहीं लगा, इसकी बगल मे इतनी पैनी छुरिया हैं?'
एक अन्य ने कहा, 'मैंने इसे भाग छानते समै गाते सुना है

'घोटै-घोटै नादियो, छाणै छै गणेस,
भर-भर प्याला देवै गौरज्या, पीयै छै महेस
पीयो-पीयो भोळा सभु, भागडली घोटाय राखू ली।

सिव का साड नदी तो भाग घोटता है, गणेश छानते हैं और जगदम्बा प्याले भर-भर पिलाती है–जगदीश्वर को। देखो, ये भागेडी गाजेडी हमको तो उल्लू बनाते ही है पर चूकते नहीं ससार के माता-पिता से भी। अपनी कुटेवो मे किस तरह तो वे उन्हे रगते हैं और किस तरह हमे हाँकते हैं सूने चरागाहो मे भेडे समझकर। हम भी कैसे काठ के उल्लू हैं जो इनके चेहरो को एकटक ताकते इनकी राग पर रीझते हैं? मजाल है कभी भूल से ही विरोध का होठ भी हिला दे, कितनी कमजोरी है हम मे? उस भाट की पूजा हुई, इनकी नहीं होनी चाहिए थी?'

एक युवती ने कहा, 'भाट की तो दो दिन ठहर कर भी हो जाती तो कौनसा आकाश गिर जाता? शुरूआत अगर इनसे होती तो गाँव मे बीमारी इतनी बढती ही नहीं?'

एक बुढिया से रहा नहीं गया, बोली, 'बहू-बेटियो सौ दिन चोर के तो एक दिन साहूकार का भी, हमारी जरूरत ही नहीं रही, सिव ने खुद ही सुन लिया बुला लिया सही जगह पर। ये ज्यो-ज्यो उलटे चले सिवालय पडता गया दूर, और जेलखाना नजदीक। सिव तो अरी, सुभाव मे उतारने का है, न कि आचरण मे। उसको तो समझ मे उतारो, न कि स्वाग मे।'

कई आवाजे साथ निकलीं, 'जीती रह दादी जुग-जुग, ठीक कहती है तू।'

तभी एक पौढा ने कहा, 'क्यो थूक बिलोती हो बेकार मे, क्या बिगडना है इनका? सुबह हम लोग तो उठेगी बाद मे और ये आ पहुचेगे पहले। जमानते हो जाएँगी इनकी, और ये गाँव की छाती पर मूग फिर दलेगे वैसे ही।'

दूसरी ने कहा, 'हाँ दलेगे, सहज ही है दलना? दबे पाँव तो ये आएँगे और अन्धेरा रहते-रहते घरो मे आ छिपेगे झींगुरो की तरह। जमानते बहन, सेत मे ही नहीं होजाती? पैसे नहीं हैं तो उधार के लिए कोई घर खोजो, उधार न मिले तो घर के बरतन-भाडे ही बेचो, पर बापो को तो चुकाओ ही। फिर कौन से बरी होगए, तारीख पर तारीख, मुकदमा और मादगी मौत से भी ज्यादा दुखदाई होते हैं। मुर्गी को तो तकुए का घाव भी भारी, इन्हे तो इतने मे नानी याद आजाएगी।'

चर्चा इस तरह आदमियो मे भी कम नहीं होरही थी।

एक ने कहा, 'गोह की मौत आती है तो वह रेगरो के कच्चे चमडो मे आ घुसती है। जानबूझ कर मरे उसे कौन बचाए?'

एक बूढा समझाने की मुद्रा मे बोला, 'गोपू-गज्जू का सिद्ध-साधक का-सा जोडा था। दोनो ही रोटी दो जून शक्कर से खाते थे पर शेर का स्वाग बनाया गधा कब तक छिपा रहता? अपने पैरो पर खुद ही कुल्हाडी मारली । गॉव के किते ही नौजवानो को भेड-बकरियो के भाव नहीं बिकवा दिया इन्होने? भोगेगे नहीं तो क्या?'

'भेड-बकरियो के भाव कैसे दादा?' एक ने आश्चर्य से पूछा।

'चुनाव के दिनो मे एक-एक जवान एक-एक बोतल मे नहीं बिका? हरेक ने हाथ नहीं कटवा लिया अपना? दलाली ये खाते–पिटता गाँव था।'

दूसरे ने कहा, 'अरे, अधिक अचरज की बात तो यह है कि एक तरफ तो ये उस छोरी के विवाह की चिन्ता मे सूखते हैं और दूसरी तरफ उसका घर फुकवाने मे जुटे हैं, कितने मुखौटे रखते थे ये, हम समझे नहीं? चलो अच्छा हुआ, अपने ही जाल मे फँस मरी मकडियॉ।'

'सुना है दादा, कल शाम पँचायत-भवन के आगे एक आमसभा होगी–बडी जोरदार,' एक युवक ने कहा।

'किस बात के लिए?'

'इसी घटना को लेकर।'

'तब तो जरूर चलेगे।'

और सब धीरे-धीरे वहॉ से उठकर घरो की ओर चल दिए।

अठाईस

चिन्ता मे तेज होरही थी। स्नेहाभिभूत वे पूछ उठातीं, रह-रह रभाती भी थीं। गोधूलि ऊपर उठने लगी थी और ऊपर उठने लगा था हारो का धुआ भी।

दिनभर की छायाएँ, विश्राम की चिन्ता मे पैर पसार रही थीं। आँगनो मे चिडियाँ, चहचहाट के साथ फुदक-फुदक उमग उछाल रही थीं, गिलहरियाँ पादप शाखाओ पर, एक दूसरी का पीछा करती अपने कोशल का विकास कर रही थीं।

एक बूढी शमी की शाख पर एक कमेडी और एक कमेडा बैठे थे। वे गर्दने उकसा-उकसा सूत्र स्वरो मे बडा मधुर आलाप कर रहे थे, केवल अपने लिए ही नहीं, अपने पास से गुजरनेवाले मनुष्यो के लिए भी। कमेडी रह-रह आलाप रहीं थी, 'के-के हस्ती, के-के हस्ती? हे स्वामी, इस ससार में कितनी-कितनी हस्तियाँ उदय और अस्त होती रहती हैं, पर बताएँ जीना भी कोई जानती है क्या?'

प्रत्युत्तर मे कमेडा कहता, 'कोई-कोई, कोइ-कोर्ड, सयानी, कोई-कोई माई का लाल ऐसा भी होता है, जिसकी सुगन्ध घरती पर दूर-दूर तक फूटती है, पद-चिन्ह जिसके समय की रेत पर प्रकाश-स्तम्भ की तरह दीपते रहते हैं।'

रह-रह चलता यह स्वर-सलाप बडा हृदयग्राही था, पर इसे कान देने के लिए किसके पास तो समय और कौन इसकी आवश्यकता अनुभव करता? सब अपनी-अपनी कील पर घूमने मे लगे थे। कमेडी-कमेडा के इस सनातन गीत का रहस्य, एक दिन पेड सींचती पूरी को गजानन ने देर तक समझाया था। गुरू के दिए उन्हीं बीजो को वह अपने गाँव की घरती पर अकुरित करने मे व्यस्त है-जी-जान से।

ढलती छायाओ मे जब, धूल-धूसरित बाल टोलियाँ कीडा-सुख मे निमज्जित थीं, उस समय पचायत-भवन का साफ-सुथरा मैदान ग्रामवासियो से खचाखच भरता जारहा था।

गाँव के इतिहास मे यह पहला ही अवसर है जब आवाल-वृद्ध इस तरह एकत्रित होरहे हो। औरते दो सौ से कुछ अधिक ही थी, जाति और अवस्था के मापदड से ऊपर उठतीं। इक्की-दुक्की अब भी, कदम जल्दी-जल्दी रखतीं आ रही थीं।

आदमी इनसे आधे ही समझो। कुछ तो जाएँ या नहीं के कर्त्तव्यमूढ छीलर से ही नहीं निकल पा रहे थे। भीरू प्रकृति के कुछ अपने को भयग्रस्त अनुभव करते सोच रहे थे कि जाने पर पता नहीं हमारे साथ क्या घट जाए? कई घाघ दूर बैठे बासो से बाटी सेक रहे थे।

लडके, स्त्री-पुरुषो के योग से दस-बीस अधिक ही थे-कम नहीं। वे अभय भी थे और उत्सुक भी। उनका ताता अभी टूटा नहीं था। वे धर्म और जाति से ऊपर थे।

लगता था गाँव की बटती-बिखरती अन्तश्चेतना पर युगो से उत्पात मचाती रोगी परम्पराओ को परास्त कर, आज यहाँ एक नई चेतना उतरेगी-सहअस्तित्व और कौटुम्बिकता का एक नया विश्वास लेकर।

हृदय सबके उत्साह से भरे थे। उमग सब मे किनारो से ऊपर बह रही थी। वहाँ अभाव और अखरनेवाला कुछ था तो केवल गगी और पूरी की अनुपस्थिति ही।

गगी को बुखार था। सिर तो उसका सुबह से ही फट रहा था। सोच रही थी, 'आज

झोपडा जला, कल हम भी तो होगे उसमे, हमारी भी राख हो जाएगी वहीं, झोपडो के फूस के साथ। वह हमारी मौत थोडी ही होगी, हत्या होगी—चीख, पीडा और बेबसी के साथ। हमारा झोपडा ही हमारे लिए श्मशान होगा। इस हिसाब तो गाँव छोडने मे ही लाभ है। भय और चिन्ता के गास उसकी अन्तश्चेतना मे बहुत गहरे धसे थे।

दोपहर तक बुखार बढते-बढते, देह उसकी हो रही थी शिथिल और अगारो पर रखी रोटी की तरह गर्म। होठो पर उसके यदा-कदा पलाप बिखर उठता, 'पूरी भाई को चक, देखती क्या है चल यहाँ से, सुनती नहीं? छोडदे झोपडा, चल वहीं उसी कोठडी मे, देख वह पीपल बुला रहा मुझे, हनुमान-चालीसा सुना मुझे वहीं, वह नारायाण है। गज्जू कहाँ गया? गज्जू? ओ गज्जू? आया नहीं? यह ले टरक आगया, फुरती कर।'

कभी वह दो घडी बन्द होजाती, और कभी फिर ऐसे ही ऊटपटाग बकने लगती।

पूरी आँखे भर लेती और कातर होकर कहती, 'दादी इस तरह न कर, क्या दुखता है, कुछ कह तो सही?' पर कहे कोई होश ठिकाने हो तब न? उसे लगने लगा दादी की गाडी अपने मुकाम पर आ लगी है, अब उतरेगी वह सदा-सदा के लिए, हमारा हाल फिर?' पीडा उसकी और बढ जाती और एक अपत्याशित उदासी उसे ढकने लगती।

वह घबराने लगी। उठी और तेज डग भरती मुरलीदादा की बहू को बुला लाई।

मिसराइन ने देख, समझकर कहा, 'पूरी घबराने की जरूरत नहीं बेटी, बुखार तो तेज है ही, पर वायु का प्रकोप उससे भी अधिक है। डोर लम्बी है तो ओछी करनेवाला कोई है नहीं जी जमाए रख।'

एक खुराक अम्बर की दी उसने। देसी काढा भी बताया उसे। लोग, जावित्री जैसी कुछ काष्टादिक औषधियाँ भी उसने अपने घर से ही दीं। पूरी बडी तत्परता से सेवा में जुट गई। भाई को कुछ खिला-पीलाकर पाठशाला भेज दिया। हडबडी मे थोडा-बहुत खुद ने भी खाया पर खाया बिना स्वाद और बिना रुचि।

दादी के पास उठती-बैठती ने अपराह्ण तो किसी तरह ले ही लिया। क्षण-क्षण वह गिन-गिन निकाल रही थी। डोकरी की हालत अब भी वैसी ही थी।

पचायत-भवन के आगे सभा इस समय पूरी तरह जुड चुकी थी। अगली पात मे पचो की टोली दिख रही थी। मिसराइन और पदमा भी जमी थीं स्त्रियो मे। सभापति था सरपच और सयोजक था देउ।

देउ ने सभा को हाथ जोडते हुए कहा, 'हम लोग यहाँ हर आँगन से जुडते एक बहुत बड़े सवाल पर विचार करने के लिए इकट्ठे हुए हैं। गगी का झोपडा जला दिया गया, यह मालूम ही है आप सबको। हम भी तो अधिकतर झोपडो मे ही रहते हैं। झोपडे-झोपडे सब एक जैसे आज गगी का जला, कल हमारा-तुम्हारा किसी का भी जल सकता है। पूरी को नित धमकी मिलता है भला चाहती हो तो गाँव छोडदो, वरना उठाली जाओगी। उसे उठा ले जाएगा कोई तो हमारी बहू-बेटियो पर कौनसा पहरा बैठा है, कौनसा ताला पडा है? पूरी भी इसी गाँव की बेटी है—हमारी ही बहू-बेटियो की तरह ही। उसकी रक्षा करने का भार हम सब पर है। सच्ची बात तो यह है कि सब की रक्षा मे ही हमारी रक्षा है।

गाँव का कोई कितना ही बडा खूखार और पहाडखा क्यो न हो, न वह गाँव से बडा है और न गाँव उसकी दया पर जन्मता और जीता है। पूरी की परिस्थिति ने हमे एकजुट होकर सोचने के लिए मजबूर कर दिया है। हम किसी का भय या लालच के शिकार होकर बिखर न जायँ, बस मूल मे इसका ध्यान रखते हुए अपनी अपनी राय खुले मन और लोह-लीक बनकर दे।'

कुछ मिनट तो सभा के आपसी होठो पर अधिकाश ऐसा ही कुछ उछलता रहा 'अरे सच पूछो तो, हम लोग तो कर्जदार हैं पूरी के, उसकी रक्षा न करे तो हम यहीं नहीं भगवान् के घर भी बहुत बडे गुनहगार होगे।'

'पूरी ने हमारे मे एक नई जाग पैदा की है, उसकी ओर आँखे हम बन्द रखे, आँखे हमारी फूटी हुई तो नहीं?'

और फिर सहसा पदमा खडी हुई—इधर-उधर झाकती, बोली, 'दो शब्द में भी कहू आज्ञा हो तो?'

'जरूर कहो चाची, बडी प्रसन्नता है हमे,' देउ ने कहा।

हाथ जोडती वह कहने लगी, 'और किसी का तो कुछ पता नहीं, पर पूरी के साथ जो होरहा है, उसे ठीक ही समझो, क्योकि वह यहाँ की गलियो मे भटकते, धूल भरे अधनगे बच्चो को बताशे दे-दे कर बटोरती है। डेढ-दो घटो उनकी टोली मे बैठ, उन्हे नहाना धोना भी सिखाती है, और कुछ लिखना-पढना भी। बडी और ब्याहने लायक लडकियो को घर बुलाकर कातना-बुनना और कुछ सीना-पिरोना भी सिखाती है। रात को दो घडी औरतो मे बैठ, उनके अन्धेपन पर जागती और चमकती-दमकती आँखे बनाती है। उनके दुख-दर्द मे भागीदार बनती है। व्रत-उपवास के बहाने कथा सुना कर जवान-बूढी, सबकी उदासी पोछती है, उनमें नया आत्मविश्वास जगाती है। जवान उससे दिशा पाती हैं और डोकरियाँ जीने की हरियाली। इतने पर भी न वह किसी से मागती है और न लेती भी है, पर जिस गाँव मे—ऊँट बिलाई लेगई, आँखे जहाँ काजल डालने से ही फूटती हैं, जहाँ दूध-दही से दारू की पूछ ज्यादा है, ईमानदारी जहाँ दुख पाती है, जुआ और चोरी-जारी की दिशा जहाँ अन्धेरे मे ही चमकती लगती है, वहाँ उस बेचारी को इनाम मे पीडा, अपमान और मौत के भय के सिवा और क्या मिलेगा? भेडिए के गले मे अटकी हड्डी निकालने पर सारस को इनाम मिला हो तो पूरी को मिलेगा। भूतो की भाई-बन्दी मे जीव को जोखिम ही जोखिम, पर याद रखो पूरी को शरीर से कोई मार भी देगा, तो मरेगी वह तब भी नहीं। वह गाँव की सैकडो औरतो की चेतना पर जन्म ले चुकी है, सैकडो लडके-लडकियो के होठो पर उछलने लगी है। शराबी और जुआरी, साँप की तरह सैकडो वर्ष जीकर भी समाज का कोई हित न कर सकेगे, जब-तब गाँव के समाज के तो वे डाकी ही होगे। जिन भेडियो ने ऐसा लिफाफा लिखा है, उन्हे बस्ती मे रहने का कोई अधिकार नहीं, अपनी धुरी वे जगल मे ही खोजे कहीं—और अपनी बिरादरी भी वहीं। गीदडो की दुराशीश से गाएँ नहीं मरेगी, मार गीदडो पर ही पडेगी?' इतना कह कर वह बैठ गई। तालियो की गडगडाहट से सभा का आकाश गूज उठा।

'ताई ने ठीक कहा, बिल्कुल ठीक, गाँव मे दो-चार ही नही बसते और भी तो बसते है? वे गोबर-गणेश नहीं हैं-चेतना और समझ है उनमे।' कुछ ऐसे ही समवेत स्वर, हवा मे उछलते रहे कुछ देर।

इसके बाद मुरलीदादा की बहू उठी, बोली, 'आज्ञा हो तो थोडा निवेदन मैं भी करना चाहती हूँ।'

'हाँ दादी, जरूर करे, घोडी बन्दोरी पर भी नहीं तो फिर कब?'

वह कहने लगी, 'जिसकी चर्चा यहाँ छिडी है, मैं उसे बहुत नजदीक से जानती हूँ। अभाव की सताई वह, बचपन से ही आँसुओ के घूट पीती रही है। दिनभर खटती, पेट उसका तब भी पूरा भरता नहीं था, पूरे कपडे तो ऐसी हालत मे थे ही कहाँ? सिर उसका हमेशा अभाव को ओखली मे रहता, तिरस्कार और पीडा की चोटे उस पर पडती रहतीं। भूख और पीडा पचाने की आदत पड गई थी उसे, इसलिए वह मरी तो नहीं, पर अच्छी तरह जी भी नहीं पा रही थी। जब मार एक दिन नगी होकर उसके प्राणो पर आ बैठी और गला उसका चीखने-चिल्लाने से रोक दिया गया तो भय और निराशा के साये मे चोपडा उसका छूट गया और छूटा रहा कई वर्षों तक। यदि बदले की दुर्भावना उसमे कहीं, चिउटीभर भी जीवित रहती तो गाँव छोड जाने के बाद वह, गाँव की ओर दुबारा फूटी आँख भी नहीं उठाती, पर विषपान के उसके पुराने अभ्यास ने किसी तपस्वी की छाया मे पलकर तप की एक ऐसी दिशा पकडली जिसे उसका शिव जाग उठा उसमे। उसका जागा हुआ शिव गाँव की अशिक्षा, उसकी अन्धी आदते और मुँह फाडती रूढियो का सारा विष पीने को उतावला हो उठा। यही उसकी इच्छा है और यही उसका उद्येश्य। झूठ, कपट और वैर-विरोध का धुआ न उसकी दिशा को धुधली करता है और न उसके मार्ग को ही रोकता है। शिव के जागने पर ऐसा ही होता है, इसलिए हम उसके शरीर को नहीं, उसके शिव का सम्मान करे, प्यार दे उसे। शिव हाड-मास नहीं होता और न वह जाति ही होता है। वह तो तप है, मगल और मिठास है-सारी धरती का। जीत जहर की नहीं होती, जीत होती है जहर पचानवाली शक्ति की और वह शक्ति ही शिव है।

अरे, युगो से धुध और धुआ झेलते गाँव के सडते-गलते फूस पर एक चुटकी धूप जैसे-तैसे चमक उठी,वह भी जिन्हे नहीं सुहाई तो समझलो आँखे उनकी रोगी हैं, समय रहते इलाज उनका नहीं हुआ तो वे उन्हीं के लिए घातक होगी। अब भी यदि किसी ने ऐसा ही कोई वहम का भेडिया पाल रखा है कि हमारा मुर्गा ही जब बाग देगा, सूरज गाँव पर तभी उदय होगा तो वे निकाल बाहर करे उसे। अन्धेरे का सकट उन्हीं पर उतरेगा-गाँव पर नहीं। ऐसा सोचनेवालो के सिरो पर पगडिया तो रगीन होसकती हैं, पर सिरो मे उनके विचार रगीन नहीं, धूमिल और दमघोटू ही हैं। उनकी क्रियाएँ और उनके सोच यही सिद्ध करते हैं। चेहरो पर नाके भी उनकी बैठ रही हैं, समय रहते वे नहीं चेते तो नाक बैठे चेहरे लिए, वे अपनी ही गली के आदमियो मे बैठते शरमाएँगे। काँच के घरो मे रहनेवाले, दूसरो के घरो पर पत्थर फैंके तो सोचना चाहिए, उनके खुद के घर कब तक सही-सलामत टिके रहेगे? दूसरो को उजाडने की प्रवृत्ति कोढ है, गाँव

का ही नहीं–धरती का। हम उस प्रवृति को उखाडने के पक्षधर हैं–उसे सींचने के नहीं। परमुख हो या रामायणपाठी मुरलीदादा, बालजी शाह हो या गगी चमारी या भीखी सैंसिन अथवा गफ्फूर गूजर सारे ग्राम सरोवर के एक घाट पर पानी पीएँगे। एक ही जीवन जल पर अलग-अलग जातीय घाट रचकर, अपने-अपने अधिकार क्षेत्र का दावा अब यहाँ नहीं चलेगा, अलगाव की लकीरे पानी पर नहीं टिकतीं, इसलिए सब अपना जीवन आपसी सहयोग मे ही खोजे। लाभ का पारदर्शी व्यापार इससे बढकर दूसरा कोई नहीं। शिव हम पर तभी उतरेगा।'

इतना कह मिसराइन बैठ गई। उसके समर्थन मे तालियो की गडगडाहट और जयघोष ने सभा के आकाश को एक बार फिर गुजा दिया। सब मे एक नया उत्साह अगडाई ले उठा। सबके सामने एक नई दिशा चमक उठी।

देउ ने बडी प्रसन्न मुद्रा मे कहा, 'आप लोगो के होठो पर जो भी उछला है, वह आपके हृदय की आवाज है, साफ, सीधी और समय से जुडी। उसके रहते निश्चय समझो कि हम पर कोई भी ऐसा असामाजिक अमगल नहीं उतरेगा जो हमे बिखेरे और हम मे दूरी पैदा करे। मूल समस्या आपने हल कर ही ली है, बडी खुशी है, तब भी इतना स्पष्ट मैं और करदू कि जग्गू और जैराम की घटना को लेकर गाँव के कुछ असामाजिक तत्व निर्दोष पूरी को बलि का बकरा बनाने मे जुटे हैं, पर सत्य यह है कि न तो पूरी ने हमे यह कहा कि तुम उन्हे गधो पर चढा कर गॉव मे घुमाओ, और न ही यह कहा कि उनके मुँह पोतदो, यह सब हम क्रीडाकुल लडको के दिमाग की ही उपज थी। हाँ, इतना उसने अवश्य कहा था कि तुम लोगो को उन्हे भी रास्ते पर लाना चाहिए–किसी तरह। नहीं लाते हो तब तक उनके आचरण भी डाकियो जैसे ही समझो, ग्रहण करने लायक तो है नहीं।'

अनेक आवाजे तत्काल एक साथ उठी, 'ऐसा कहना कोई अपराध तो नहीं। इसमे क्या बुरा कहा उसने?'

'बिल्कुल ठीक कहा उसने,' आवाजे और घनी होकर गूज उठी।

देउ ने सबको शान्त करते हुए कहा, अब केवल पाँच-सात मिनट का काम और है शान्ति से विराजे रहे आप, एक बहुत ही बढिया खुशखबरी सुनाऊँ आपको।'

उत्सुकता सब की बढ गई और आँखे सारी देउ की ओर उठ गईं। देउ के होठो पर उछलने लगा, 'हम सबको मालूम ही है कि गगी के जले झोपडे का सुराग यदि भीखी की जाग न होती तो वह हमे शायद ही मिल पाता, यदि मिल भी जाता तो मिलता बडा बासी होकर और उसकी चर्चा कुछ दिन हवा मे उछल कर पूरी होजाती। कल की आधी रात सर्दी कितनी कडाके की थी? नाम लेते ही कपकपी छूटती है।भीखी के शरीर पर न पूरे कपडे और न पैरो मे जूते। धुन की पक्की वह, चोखले के पीछे भागी, किसी के कहने से नहीं केवल गॉव के हित को ध्यान मे रखकर–अपनी अनूठी समझ से। उसकी ऐसी निष्ठा को ध्यान मे रख पचायत ने उसे एक गर्म और गाढा कम्बल देकर सम्मान करने का निश्चय किया है।'

यह सुनते ही, सबके हृदयो पर उल्लास की एक लहर दौडगई। आवाजे आने लगीं, 'अरे यह तो बहुत ही अच्छा सोचा, बडा ही सुन्दर।'

'उसे तो जरूर देना चाहिए।'

'अरे, उसे तो आज से बहुत पहले ही मिल जाना चाहिए था।'

'ओढे चाहे बिछाए उसे बेचारी के पास तो केवल एक ही गुदडी है, और वह भी जगह-जगह से झाक रही है–धरती और आकाश की ओर।'

'अरे, यह उसका सम्मान नहीं, सम्मान यह पचायत का है और पचायत सारे गाँव से जुडी है।'

'कम्बल के साथ, बिछाने के लिए एक दरी और दो उसे। सोचो जरा, खुले चौगान मे, जाडे की ये लम्बी रातें कैसे काटती होगी वह?'

ऐसी अनेक आवाजे उठ-उठ, हवा मे बिखरने लगीं।

देउ ने कहा, 'आती ही होगी वह, दो लडके गए हुए हैं उसे लेने।'

दो-चार मिनट ही निकले होगे, वह आती हुई दिखाई पडी। सबकी आँखे उस पर जा टिकीं।

सरपच ने पुरस्कार का परिचय दे, कम्बल लेने उसे पास बुलाया, वह उठी तो सही पर तागा खींचते किसी घोडे के सामने एकाएक कोई गहरा नाला आजाय और वह ठिठक कर वहीं पैर रोपदे अपने, ठीक वैसे ही वह भी ठिठक कर वहीं खडी होगई।

हाथ जोडती बोली, 'माई-बाप, मेरे पास तो है इस समय, भगवान् बनाए रखे आपको, किसी जरूरतवाले को दे, मैं क्या करूगी इसको लेकर, कहाँ रखूगी, कहाँ ढोती फिरूगी?' इतना कह वह जिधर से आई, उधर ही चलदी।

'अरे, सुन तो सही,' सरपच ने आवाज दी।

अपनी आदत के अनुसार, न वह रूकी और न पीछे ही देखा उसने। कई बोले, 'साब, अब यह न थमेगी और न पीछे ही देखेगी, आवाज देना फिजूल है इसे।'

अब यवनिका गिरने ही वाली थी, केवल सरपच को दो शब्द कहने थे–आभार प्रदर्शन मे। वह उठा, तभी देउ ने कहा, 'साब, मुरलीदादा आरहे हैं–डग जल्दी-जल्दी भरते।'

सरपच बैठ गया।

देउ ने सविनय निवेदन करते सभी को कहा, 'आप लोग इतनी देर बडी तन्मयता से विराजे रहे, धन्य है आपका धीरज, अब पॉच-सात मिनट और विराजे रहे तो बडी कृपा हो। मुरलीदादा आ रहे हैं, वयोवृद्ध, प्रतिष्ठित और गॉव के एकमात्र पडित? वे तो कदम जल्दी-जल्दी उठाते आएँ, ऑखे फैलाए, अपने आशीर्वाद का झोला लिए–हमे कुछ बाँटने और हम खिसकन्दा होने लगे तो अच्छा नहीं लगेगा।'

'बैठे है–बैठे है, कौनसा खलिहान भीग रहा है हमारा, गाडी तो नहीं रुक रही हमारी, कुछ देर और बैठे है' ऐसी ही अनेक आवाजे हवा मे बिखर उठीं।

दादा आगए। उनके सम्मान मे अधिकाश खडे होगए–शिष्टता के नाते।

आशीर्वाद की मुद्रा मे उन्होने कहा, 'धन्यवाद विराजो, प्रयोजन आपका सफल हो।'

वैठ गए सब।

देउ ने दृष्टि अपनी पडितजी की ओर घुमाते हुए कहा, 'गुरुदेव, इस आयोजन का उद्येश्य, आप से छिपा नहीं, आशीर्वाद के दो शब्द आप भी कहे तो हम सब का मनोबल बढेगा–कृतज्ञ होगे हम आपके।'

वे खडे होगए, बोले, 'कुछ कहने से पहले एक बात मैं आप लोगो से निवेदन करदू कि मैं यहाँ उस समय पहुँचा हूँ जब आप लोग भोजन कर चुल्लू करनेवाले हैं, पर यह देरी हुई नहीं मैंने की है–की इसलिए कि आध-पौन घटे तक तो मैं केवल इसी दुविधा मे झूलता रहा कि वहाँ जाऊँ या नहीं? निर्णय ही नहीं लेसका। सोचे आप, कितनी दयनीय स्थिति है मेरी? दूसरी तरफ आप हैं जिन्होने सोचा, समझा, निर्णय लिया और समय पर आ अपना आसन ग्रहण किया। आप सारे के सारे मेरे से लाखगुना अच्छे। मुझे आशीर्वाद दे, मेरी बुद्धि भी आप जैसी हो। समूह का आशीर्वाद है नारायण का आशीर्वाद–सन्तो ने ऐसा ही कहा है।'

सभा मे यत्र-तत्र कानाबाती बिखर उठी, 'पडितजी आज इतने सरल कैसे–आश्चर्य है।'

एक ने खडे होकर कहा, 'गुरुजी, देर-सवेर आप पधार गए, हमारे लिए तो यही बहुत है। हम आपको आशीर्वाद दे, यह उलटी गगा कैसे?'

'बिल्कुल ठीक,' अनेक आवाजे हवा पर तैर उठीं।

पडितजी कहने लगे, 'मेरे हितैषी लोगो, जितना साधारण मैं आप लोगो को सोचता हूँ आप उससे कहीं अधिक असाधारण भले और उजले हैं और आप जितना ऊँचा और असाधारण मुझे सोचते हैं मैं उससे कितना ही अधिक बोना और कमजोर हूँ–बाहर से नहीं भीतर से–यह हकीकत है। हाँ तो सुनिए आप–पूरी ने एक यज्ञ आरम्भ किया है, न अपने लिए और न अपने भरोसे–किया है गाँव के लिए। गाँव की दुर्दशा, उसकी चेतना सह न सकी। वह सोचती रही है एक दिन नहीं वर्षों तक कि मेरा गाँव परमात्मा, शुद्ध-सात्विक वातावरण मे जीवन लाभ कर मुस्कराए, हृदय का आँगन उसका चौडा हो और उसके आचरण का जल हो निर्मल, तभी मेरे जीवन लेने का कुछ अर्थ है वरना जैसे कार्तिक की कूकरी वैसी ही मै। मेरे गाँव मे प्रभो, ऐसी हरियाली फूटे कि 'चार मिले ता चौसठ खिले,' मिलते ही रोम-रोम राजी हो जाय आपस मे। ब्राह्मणत्व उसका जाग उठा और वह जुट गई अपने अनुष्ठान मे। ब्राह्मणत्व जाति नहीं, एक भाव है–तप और ...ार्थ का। वह हम सव मे हैं एकसा और एक जितना। किसी मे सोया और किसी मे ...ता। सोए को जगाना पडता है, आवाज और आचार से नहीं, तप से। तप मे अपने ...ीर का मोह त्यागना पडता है, तभी वह परमार्थ से जुडता है और परमार्थ है अथाह सागर। वडा कठिन काम है उधर मुड पाना। कोई माई का लाल ही कर सकता है ऐसा।

जिसमे अपने गाँव की पीडा जाग गई, अपने शहर का दुख-दर्द उभर आया तो, निश्चित ही, अपने देश और धरती का प्रेम भी उसमे अगडाई लेने लगेगा। वसुधैव कुटुम्बकम् का पहला पाठ अपने गाँव से ही शुरू होता है। स्वर्ग के कपाट खोलने की

चादी भी यहीं से मिलती है।

अपनी नगरी के पेम मे डूबते रामजी ने कहा था, 'अति पिय मोहि इहाँ के वासी,' पिय ही नहीं अति पिय। पूरी रामजी के स्थापित किए हुए इसी धर्म के पालन मे जुटी है। कैसा सौभाग्य है अपने गाँव का जिसे ऐसी सजीव मूर्ति एक साधारण झोपडे मे ही बैठी मिल गई–कितनी सहज और कितनी सस्ती? साथ दे उसका, उसके हित मे नहीं, अपने हित मे।

सच पूछो तो ऐसे यज्ञ का आरम्भ यदि मुझ जैसे वृद्ध से शुरू होता तो कितना सुन्दर होता? मुझ जैसा तो मैं ही हू और मेरे से वह हुआ नहीं, यह मेरा दुर्भाग्य ही समझो, पर जिससे हो रहा है उसका साथ भी न दे सकू तो कम से कम उसकी पीठ थपथपाने का श्रेय तो हाथ से न जाने दू। यह भी न कर सकू तो मेरा रोग फिर कैंसर की तरह असाध्य ही समझो, वह पश्चाताप को साथ लिए, मेरे ऑसू भी नहीं पोछेगा। पर अन्त भला सो भला, ऐसी महाव्याधि को ओढ कर जाने की भूल मैं नहीं करुगा। आपका साथ नहीं छोडूगा–आँधिया अपयश की कितनी ही आएँ चाहे।

सौ मे सौ ही सही तो यह है कि मेरे अन्धे विषधर और लोभ-वात ने मेरे ब्राह्मणत्व को इतना बीमार और अशक्त कर दिया कि वह अपने आँगन से दो कदम भी आगे न बढ सका। अब अस्वस्थ, जर्जर, चेहरे पर झुर्रियो का पहरा, घुटनो पर पीडा का असह्य भार और दृष्टि पर मोतियाबिन्द के आक्रमण की तैयारी, इससे अधिक दयनीय अवस्था और क्या होगी? पर मेरा सकल्प इन सब से ऊपर है।

कथा भागवत करने मे, जीवन की आधी शताब्दी पूरी करदी मैंने। उपलब्धि मे तृष्णा मेरी जवान हुई है और भूख उसकी प्रबल। असतोष मेरा हिमालय की तरह ऊँचा हुआ और आदमी मेरा बौना ही नहीं, अधिक बोना। जड के मोह मे चिन्तन की धरती अपनी, इतनी बाझ करली मैंने कि हथेली की सरसो फूले तो वह फले। 'अति पिय मोहि इहा के वासी,' को न मालूम कितनी बार मैंने गाया, सुनाया और समझाया होगा, पर उसका असर न मेरे पर हुआ और न किसी श्रोता पर ही, कैसे होता उसे तप चाहिए था और वक्ता था तपहीन, कथनी और करनी मे बडी दूरी थी उसके। अपना ऊपरी व्यक्तित्व खूब सजाए रखा मैंने–खेत के अडवे की तरह। अडवे के आकार तो होता है पर आग नहीं होती उसमे, इसीलिए मैं गॉव मे कोई स्वस्थ परिवर्तन न ला सका। दुर्गुण बढे। टूटते लोग और अधिक टूटे।

मेरे पास तो मरे हुए लोगो के कल्याण का विधान ही अधिक था या फिर अगले जीवन के लिए एक सम्मोहक ससार। पितर और पेतो की उपचार विधि, सुदूर आकाशीय पिंड [illegible]नि और राहु-केतु की शान्ति विधि खेजडी-तुलसी का पीपल से विवाह, केवल एक रूपए मे [illegible]दान का फल, जजमान की जेब के अनुसार अपने गुर काम मे लेता रहा मतलब [illegible] तिलक पर मेरे सामने की गली मे भूख और पीडा भोगती–माताओ के सूखे [illegible]नो से चिपटते-चीखते बालको की ओर मेरी दृष्टि अगुल भी नहीं उठी। मेरे पत्थर [illegible] की मिट्टी जमाने की पंडिताइन ने भरसक कोशिश की पर मेरी हठधर्मिता की

आँधी ने उस मिट्टी को ठहरने नहीं दिया। तब भी पंडिताइन ने प्रयास अपना नहीं छोडा। उसका सतत प्रयास, पूरी की निश्छल ईमानदारी और गगी की सहज सेवा के इस त्रिभुज ने मुझे एक नये सत्य की ओर मोडा है–इसीलिए मैं आपकी इस पाँत मे शामिल होसका हूँ।

अब मैं इस निर्णय पर पहुँचा हू कि पूरी अपने गाँव की एक कल्पलता है। जन्म से लेकर कोपले उठते-उठते उस पर भूख, पीडा और अभाव के सम्मिलित आकमण शुरू होगए। वह पत्रहीन होकर डठल मात्र रह गई पर तब तक जड उसकी धरती की अक्षय ऊष्मा से जुड चुकी थी, इसलिए डठल उसका नए पत्ते धारण कर फिर बढने लगा। कुछ ऊँचाई धारण करते-करते भाग्य देवता उसका फिर बिगड खडा हुआ, किसी के आकोश की मार उस पर अन्धी होकर इतनी बरसी कि वह पत्रहीन होकर मौत के इतने नजदीक जा पहुँची। अगला क्षण उसका मृत्यु था। उसकी इस दुरवस्था के गवाह, आप में से कई होगे, एक मैं भी हूँ, उसे खूब नजदीक से देखता हुआ।

पर इस लता का मूल मरा तब भी नहीं, वह धरती की जीवनदाई ग्रथि से जुडा हुआ, रह तो तन्तुमात्र ही गया था पर था जुडा हुआ, कटा नहीं था। धरती का जीवन रस पी वह फिर फैल गई, पहले से कई गुना अधिक। अपने गाँव के प्यार मे फिर आ बन्धी वह।

वह श्रम, आपसी सहयोग और एक स्वस्थ सूझ पर, नया निर्माण चाहती है गाँव का। हम उसे स्नेह और सहयोग का जल दें–हम सबका मगल इसी मे है।

एक बात और, जब भीखी जैसा हताश और हीनकर्मा जन्तु, साधुता मे बदल सकता है तो आप और मैं क्यो नहीं? इसी विश्वास और मगल भावना के साथ मै बैठता हूँ। आभारी हूँ आप सबका, आपने मुझे सुना। धन्यवाद।'

तालियो की गड़गडाहट से सभा का आकाश गूज उठा। श्रोताओ को नया बल मिला। दादा का सत्य सबको छूगया।

पडिताइन का हृदय-शतदल, साध्य-वेला मे भी खिल उठा–उसका सूर्य सामने ही जो था। उसे लगा, 'मेरे विश्वास की विजय मानो मूर्तरूप धारण कर सामने ही खडी हुई है।'

भीड मे परस्पर प्रतिकिया उभरने लगी 'दादा ने आज भाग पी रखी लगती है अपना सारा कच्चा-चिट्ठा खोलकर आदि से अन्त तक पढ दिया?'

'नहीं-नहीं, सारा श्रेय इसका गुरूआइन को है।'

'नहीं-नहीं, समय के साथ उनका बदलता दृष्टिकोण?'

और तभी सभापति खडा हुआ कहने लगा, 'हम कृतघ्न नहीं हो सकते–गाँव के हित ऋणी हैं पूरी के। उसके झोपडे का हरजाना वसूल कर उसे फिर से खडा करवाने का ८ हमारा है, वह निर्भय और निश्चित रहे। सुरक्षा पाने का जितना अधिकार मेरा है–उतना ही सबका है। अनादर अवगुणो का है–जाति-पाँति का नहीं। मुर्लीदादा ने हमे अपने-अपने दर्पण मे झाकने का जो सकेत दिया है वह हमारे लिए केवल शुभ ही नहीं निर्माणकारी भी है। अपने शीशे मे अपना चेहरा जितना साफ कोई खुद देख सकता है उतना दूसरा कोई क्या देखेगा? असली सुधार शुरू ही यहीं से होता है। एक निवेदन और

करदू कि जो भाई शराब पीकर गली-गवाड मे ऊटपटाग और ऊलजलूल बकेगा और लडके उसे कभी अपने मनोरजन का साधन बनाले तो पचायत इसमे कुछ न कर सकेगी। आप पधारे हुए, सभी को हार्दिक धन्यवाद।'

तालियो की गडगडाहट के साथ सभा विसर्जित हुई। सभी ने घरो का रास्ता लिया। सूर्य अस्ताचल से नीचे लुढक चुका था।

उन्नतीस

मुश्किल से घडीभर ही हुई होगी–गगी पर कुछ नींद उतरे। अब हालत उसकी पहले से कुछ सुधार पर है। पूरी का आन्दोलित होता मानस शनै -शनै स्थिरता पकडने लगा था।

झुटपुटा शुरू होगया। आकाश के वक्षस्थल पर रेगती बदलियाँ, कहीं घनी होजातीं ओर कहीं विरल। सर्दी इस समय, और दिनो से कुछ कम प्रतीत होरही थी।

पूरी जूठे बर्तन लिए बाहर आ बैठी। उसने एक पतीली के ही हाथ फेरा था, तभी उसकी एक साथिन आनन्दी आ पहुँची।

'आ बहिन, सभा मे गई थी?' पूरी ने पूछा।

'वहीं से तो आ रही हूँ।'

'सुना फिर वहाँ के हालचाल? कैसा रहा आयोजन?'

'हालचाल की नाभि पर तो तू थी, शेष सब तो थे उसके इर्दगिर्द। तू गैरहाजिर रहकर भी हाजिर ही रही।'

उसने वहाँ की सारी राम-कथा पूरी के कानो मे निचोड दी।

पूरी ने कहा, 'चलो ठीक है, जैसा भी हुआ।'

'एक विशेष बात और बताऊँ तुम्हे?'

'बतादे, रखकर क्या करेगी?'

'मुरलीदादा का विषधर अब मुट्ठीभर सपेरो का नहीं रहा–जैसा वे चाहे नचाएँ उसे? उसने अपना पुराना कैंचुल छोड जूनी, जर्जर स्वरलहरी के विरोध मे अपना फन खडा कर लिया है। वे तुम्हारे सहयोग की धरती पर आ खडे हुए हैं। सभी को ताज्जुब था–मुरलीदादा की बहू को भी।'

'आसार अच्छे ही हैं।'

'अच्छे ही नहीं, बहुत अच्छे, अब इजाजत दे, जाऊँ।'

'बैठोगी नहीं, कुछ देर?'

'बहू क्या खिचडी की हाडी हारे मे रख कर गई थी आँच कहीं अधिक लग गई है तो आधी अन्दाज तो खा जाएगा पैदा और आधी पल्ले पडेगी हमारे।'

'तो फिर जा।'

वह विदा हुई।

अपनी साथिन के अधरो से उछली, अपनी बडाई की एक नन्हीं–सी श्वेत सुन्दर चुहिया उसके श्रुतिपथ से कब भीतर आ उतरी और कब उसके हृदय विवर मे जा छिपी, पूरी को इसका आभास ही न हुआ। मोद मे ऐसा ही होता है।

वह धीरे-धीरे बर्तन मलने लगी। सहसा भीखी के कम्बल न लेने की घटना और उसकी निस्पृह, मायातीत मुद्रा रह-रह उसके मानस पर नाच उठी। पैर हैं उसके नगे, बिवाइयो का जाल पसरा है उन पर, देह है ओढनी से जगह-जगह झाकती हुई, शीतलहर इस समय उसकी हड्डियो तक मार करती थकती नहीं, ग्रीष्म उसे झुलसाने मे अपनी ओर से कसर कोई छोडती नहीं, 'सदा दिवाली सन्त घर, आठो पहर आनन्द,' उस पर न वसन्त की खुशी और न पतझड की उदासी, सदाबहार है वह।

उसकी वेशभूषा देख, यदि होठो पर किसी के दया के दो शब्द उछल पडे, 'भीखी, ओढनी तेरी उत्तर दे रही है, अब तो फैंक इसे, यह ले दूसरी।'

प्रत्युत्तर मे उसकी जबान से उछलता है–सोचा-समझा और सिद्ध किया हुआ, 'माँ सा है अभी तो, नहीं हुई तो ले लूगी कभी,' और चल देती है। न दुबारा सुनती है, और न पीछे ही देखती है। सेवा करने मे उतावल और लेने मे ढील उसके स्वभाव के साथ नमक और पानी की तरह एक होगए हैं। मजाल है परिग्रह पलभर भी पास फटके उसके?

वह तो सेवा, सन्तोष और अपरिग्रह के दुर्ग मे रहती है, केन्द्र मे जिसके रामजी हैं–वह रमण करती है उनमे–त्रिताप से ऊपर उठी। भय वह समझती नहीं, भिखारिन वह है नहीं। देना तो आता है उसे, पर लेना भूल जाती है या चाहती ही नहीं पता ही नहीं लगता। 'है अभी तो' बस यही एक चतुरक्षरी मत्र सीख रखा है उसने, पता नहीं कहाँ से?

यह वही औरत है, जो कभी होठो की लाली और काजल-टीकी देह से चौबीसो घटे दूर नहीं होने देती थी। हथेलियाँ मेहन्दी से, नाखून नखराग से, और कलाइयाँ चूडियो से लादे रखती थी। अपनी समझ मे तो अप्सरा बनी रहती थी। आज उसके आगे शत-शत अप्सराएँ पानी भरती हैं, अन्त करण का श्रृगार ही उसने ऐसा ही कर रखा हे। 'रूखी-सूखी खीचडी, बिन भाजी बिन नोन,' के स्वाद मे, रबडी और राजभोग उसके आगे पानी भरते हैं। अभाव तो दूर खडा प्रणाम करता है उसे। लगता है लडको के ढेलो की मार खा-खा देहाभिमान उसका काफी कुछ टूट चुका है।

वह बर्तन मलना एक बार विसर गई। मन पर विचारो की चरखी उधेडने लगी तेजी से। उस विद्रूपा की समधरती पर उसे अपना ही प्यार उभरता दिखाई दिया। वह उसे अपनी ही लगने लगी, दूर नहीं हृदय मे ही। उसके होठो पर अनायास ही फूट उठा, 'प्रभो, उस तपसिन की तरह, मेरे क्षितिज पर भी कभी वैसी ही लोभहीन वृत्ति का सूर्योदय होगा? मै भी कभी विषमता के कडवे घूट पी निश्चित होकर नाच सकूगी–अनाचार के अगारो को पदतल किए?'

सहसा उसे याद आया एक बार मैने उसे पूछा था 'बुआ, लोग तुम्हे डाकिन कहा

करते बता तो सही, सचमुच मे, क्या डाकिन थी तू?'

वह विस्फारित आँखो से मेरी ओर देखने लगी थी। मुझे लगा, इसे चोट पहुँची है, मुझे ऐसा नहीं पूछना चाहिए था।

मैंने उसे हाथ जोडते कहा था, 'बुआ, आग लगे मेरी जीभ को, मैंने तो यो ही पूछ लिया था तुम्हे, माफ कर।'

उसके होठो पर आक्रोश नहीं, एक सहज भाव उछला, 'बुरा क्यो मानू पूरी, सभी लोग डाकिन ही तो कहते थे मुझे, पर मैं थी या नहीं यह मुझे आज भी मालूम नहीं। हाँ, मेरे मन मे यह तो हमेशा ही बसा रहता कि जैसे भी हो मेरी गोदी भी भरे किसी तरह। मैं भी अपने गीगले का मुँह चूमू-जीभर, रमाऊँ-रिझाऊँ उसे। मेरी लालसा की बेल के फूल कोई लगा नहीं–सारे अधूरे हो-हो कर झडते गए। कोई महीने का होकर आँखे मूद गया और कोई दस-बीस दिन का होकर। पीडा बढती गई। वह ज्यो-ज्यो बढी, मेरी काली करतूत भी बढती गई। तू जानती है पूरी, बेचैनी मे कहाँ तो चैन और कहाँ भलाई? कोई दिसा दिखादे, ऐसा भी तो नहीं मिला।

जब किसी नन्हे मुन्ने को मैं देखती तो पीडा मेरी पकड से बाहर होजाती। एक बार मैं किसी मुन्ने को उठाकर चल भी दी, मेरी ठुकाई भी अच्छी हुई और दुरगति भी। दाहिनी कलाई पर सूजन रही कई दिनो तक और कमर मे पीडा। फिटकरी का गरम पानी धारती उन पर, पर लालसा की आग तब भी मेरी बुझी नहीं।

एक दफा दिन के पिछले पहर मे गाडे गए किसी बच्चे को, रात के अधेरे मे मैंने निकाल लिया। पानी का लोटा पास था ही, झाड-पोछ उसे नहलाया, उसके कघा किया, काजल डाला, टीकी लगाई, ललाट के दोनो कोनो पर काजल के निशान बनाए, गोदी मे लिया और चूमा भी। लाश को भी चूमता है कोई–मैंने चूमा। एक सलाई गरम कर उसकी पीठ दागी, फिर उसे उसी जगह गाड दिया। जहाँ से निकाला था। यह टोना किसी ने बताया था पर पल्ले मेरे इससे कुछ भी नहीं पडा। अब तू मुझे डाकिन समझले चाहे चुडैल छिपाया मैंने तेरे से कुछ भी नहीं। छिपाया है तो रामजी मुझे सौ-सौ कुभीपाक एक साथ दे।'

'बच्चे के लिए लालसा तेरे मन मे अब भी जाग उठती होगी कभी?' मैंने पूछा।

'अब मैं क्या कहूँ तू ही देखले, सारे बाल-बच्चे मुझे तो अपने ही दिखते हैं, पराया तो कोई है ही नहीं। माटी का पुतला लिए रहती थी, वह भी फैंक दिया मैंने उसकी जरूरत भी तो नहीं रही। तू मैं और सब के सब माटी के पुतले ही तो हैं? फूक भरी हुई है तभी तो नाचते-कूदते हैं। किस बात की तो अकड और किसके लिए लडाई-झगडा? क्या पता कब फूक निकल जाए? और इसके साथ ही वह अपनी मौज मे गा उठी

माटी जोडा, माटी घोडा माटी का असवार।
माटी माटी को मारै माटी के हथियार।।'

लेकिन पंक्ति पूरी होते ही वह एकदम से उठी जैसे भीतर की कोई घटी बज उठी हो और चल दी अपनी मस्ती मे–अपनी धुन मे।

मैंने आवाज दी, 'बुआ, सुन तो सही, एक बात तो और बता?'

पर उसने न सुना और न मुडकर पीछे ही देखा, जा रही थी जिधर जाना था।

मैं कुछ देर उसकी पीठ की ओर देखती सोचने लगी, 'इसने सोचा है अन्दर की इस धरोहर को दबाए रखू तो पाप, और है उससे अधिक कहूँ तो भी पाप। पास था वह निकाल फैंका। 'एक बात और बता' का क्या अन्त? था वह खाली कर दिया और खाली होते ही चल दी। न पूरी से मोह और न औरो से द्रोह।'

यह अच्छी तरह जानती है वह कि खाली हुए बिना कहाँ तो मालिक बैठेगा और कैसे नाचेगा? एक म्यान मे जैसे दो तलवारे एक साथ नहीं समातीं वैसे ही जगत और जगदीश्वर एक हिरदै पर साथ-साथ नहीं नाच सकते। इसे जगत प्रपच से खाली होना आगया यही इसकी सिद्धि का रहस्य है। कितना बदलाव आगया इसमे? कभी यह वस्तुओ के पीछे-पीछे भागती थक जाती थी। वस्तुओ और इसके बीच का फासला रोज बढता जाता। प्यासी ही सोती और प्यासी ही उठती। अब वस्तुएँ इसके पीछे-पीछे डोलती हैं पर यह उनकी तरफ ऑख ही नहीं उठाती। अकेली बैठी कई बार अपनी मौज मे बतियाती रहती है, किससे और क्यो, कोई नहीं जानता सिवा इसके और रामजी के, पर ज्यो ही कोई आया, 'भीखी भुआ, कुतिया मरी पडी है, घर के आगे,' बात बन्द, नगे पाव ही चल पडती है उसके साथ। सेवा ससार की और बात रामजी से, इसके अलावा तीसरा सूत्र यह जानती ही नहीं—दूसरी दिशा यह झाकती ही नहीं।

और तभी तार उसका टूटा, अन्त करण पर दादी नाच उठी उसके।

वह फुर्ती से उठी, बर्तन रखे, हाथ धोए और दादी के पास जा बैठी।

दीपक का उजास बिखर रहा था मन्द-मन्द। ग्यारसी सोया था। डोकरी ने करवट बदलते आँखे खोलीं।

पूरी ने धीरे से कहा, 'दादी?' और इसके साथ ही वह उसके ललाट पर हाथ फिराने लगी।

'बोली नहीं दादी?' पूरी ने फिर कहा, 'क्या दुखता है दादी?'

'बेटी, जीभ सूख रही है,' डोकरी ने लडखडाती जबान मे कहा।

पूरी ने पानी का गिलास भरा, सहारा देकर उठाया दादी को और गिलास उसके होठो से लगा दिया। दो घूट लिए उसने, और किसी सपेरे की छबडी मे कुडली मारने को आतुर नागिन की तरह वह फिर वैसे ही लेट गई—घुटने छाती से लगाए।

'दादी, कमर दबाऊँ थोडी?'

'नहीं, बेटी।'

'दो घूट दूध तो लेगी, सोठ और मुलेठी मिला?'

'न कुछ लेने की इच्छा और न कुछ बोलने की।'

'दादी, कोई भय तो नहीं घुस बैठा, कलेजे मे तेरे?'

'कैसे समझाऊँ बेटी?'

'मत समया मैं समझ गई पर दादी भय को निकाल बाहर कर और चिन्ता को पास

ही मत फटकने दे।'

'चिन्ता अपनी नहीं बेटी।'

'तो?'

'चिन्ता यही कि बिल्लियो के बाडे मे कबूतरो के घोसले किते दिन टिकेगे? तुम दोनो किते दिन निभ सकोगे यहाँ?'

उदासी उसकी और गहरी होगई।

पूरी ने पचायत-भवन के मैदान मे हुई आज की सारी रामकथा, सक्षेप मे सुनाते, उससे कहा, 'दादी, क्या बात करती है, हम अकेले नहीं, गाँव सारा अपने साथ है, इस खुशी मे थोडा दूध ले तू।'

उसने पूरी की ओर आश्वस्त नजर से देखा, अपने मन के पाव उसे, किसी विश्वास की ठोस धरती पर कुछ जमते लगे।

उसने कहा, 'दूध तो रहने दे बेटी, इच्छा ही नहीं।'

'इच्छा तेरी नहीं, मेरी है दादी, चार घूट ही ले, पर ले जरूर, घोडी गणगौर पर भी नहीं तो फिर कब?'

सहारा देकर, दादी को उसने उठाया, दूध दिया और वापिस लिटादी उसे। चिकने हाथ से धीरे-धीरे वह, उसके तलवे मसलने लगी। देखते-देखते, उसकी आँखो ने नींद पकडली।

वह वहीं बैठी उसके चेहरे की ओर देखने लगी। ललाट पर उभरती मूगी नसे, धँसते कपोल, अधूरे दाँत, कुछ गए, कुछ पहरेदारी मे लगे, गड्ढो मे बैठती आँखे, चेहरे पर उलझती झुर्रियाँ और हथेलियो की पीठ पर ढीली-फूली नाडियो का जाल देख, वह सोचने लगी 'कितनी पीडा और कितने सघर्ष झेले हैं इस मुचते-सिकुडते पिंजरे ने? अभाव और आँसुओ ने इसे सुख का सास ही तो नहीं लेने दिया कभी? प्रभो, हमारी पीडा से यह अब और अधिक न मुचे, बस इतना ही।

और तभी उसे बादलो की गडगडाहट का कुछ आभास हुआ।

वह चौंकी, उठ कर बाहर आई। आकाश की ओर देखने लगी। सहसा बादलो में बिजली कौधी, एक बडे बादल का सारा पिंड चमक उठा।

सोचा, 'कितनी आग है इसमे और कितना पानी? बरखा अभी तो पाँच-सात कोस दूर लगती है–गाँव की धरती से। हवाई जहाज अनुकूल हुआ तो इधर आते क्या देर लगेगी इसे? महीनो से सूखती धरती यदि तर होगई पूरी तरह तो दस दिन भी नहीं लगेगे, वह मुस्करा उठेगी स्वत ही। चैतिया बनस्पति पशुओ के लिए वरदान सिद्ध होगी।'

माला मे पढी एक पक्ति उसकी स्मृति पर सहसा नाच उठी, 'बरस सुहाणी घण घटा, सारी धर सरसाय।' आनन्द तो तभी है धरती जब दूर-दूर तक सरसा उठे। दो मिनट तक सोचती-विचारती बाहर ही रूकी रही फिर वहीं आ बैठी।

बहू सोई, भाई सोया, जाग वह अकेली ही रही थी। अकेलेपन मे आदमी को अकसर

अज्ञान आ घेरता है, लोभ, मोह, पद, मान, ईर्ष्या, वासना और ऊहापोह की लम्बी कतार लिए।

घटे-डेढ घटे पहले जो चुहिया उसके हृदय विवर में अनायास आ पैठी थी, अब सुनहरा अवसर पाकर, वह बिल से निकल अन्तर पर मद-मद उछलती गति अपनी तेज करने लगी। शुरू-शुरू मे पूरी को वह बडी भाई।

उसमे रमती वह सोचने लगी, 'मैंने बहुत कुछ किया है, तभी तो सारे लोग मानते हैं मुझे। मेरी सफलता की कथा उनके होठो पर नाचती है एकमी। मेरे सकेत पर लोग आँखे मीचकर चल पडते हैं, और तो और, मुरलीदादा की आकाश छूती ऊँचाई भी मेरी धरती पर आ उतरी। इतने थोडे समय मे इतनी बडी सफलता शायद ही किसी को मिली हो? अब तो आया किनारा, मजिल पकडने मे बच ही क्या गया?'

आत्मश्लाघा का मोह उसका किनारो से ऊपर बहने लगा।

चुहिया की उछल-फाद और तेज हो गई। आत्ममोह पूरी का पसरता चला गया। कुछ समय तो वह इसी कीली पर निरन्तर घूमती रही, नहीं-नहीं करते आध घटा निकल गया। अब तनाव बढने लगा उसका, और सिर होने लगा भारी। इच्छा थी सोऊँ, पर अब सोना उसे मुश्किल हो रहा था—कारण मन का शुरू किया हुआ नाच, समेटना, सहज नहीं था। शेर चुहिया के जाल मे फँस, दहाड भी भूल गया। उसकी दशा मेमने से भी अधिक दयनीय हो गई, चुहिया तब भी नाच बन्द करने का नाम ही नहीं ले रही थी।

पूरी उद्विग्न हो उठी। 'भेजा' उसका गर्म होगया।

ललाट पर हाथ फेरती, मन ही मन कहने लगी, 'प्रभो, कृपा करो मुझ पर इस मायावी जाल से उबारो मुझे—मन काबू से बाहर हो रहा है।' अगूठा और उगलियाँ ललाट के ऊपरी कोनो पर दाब देने लगे। सहसा उसे याद आया, 'अरे किवाडी खुली ही होगी, फलसा भी शायद ढका नही गया?'

वह तुरत उठी, और बाखल मे आ पहुँची। एक ओर के पडोस से आते भजन के स्वर उसे सुनाई पडे। स्वर थे सुरीले पर थे अस्पष्ट। उसने सोचा 'शुक्ल पक्ष का मगलवार है आज, शायद सगत होरही है—सुक्खु काका के।' सुनने की इच्छा उसकी बलवती हो उठी। फलसा ढक वह, पडोसी की बाड के सहारे आ लगी। अब स्वर उसे स्पष्ट सुनाई पडने लगे। उसने सुना

सहस तार लै पूरिन पूरी, अजहुँ बिनब कठिन है दूरी।
कहहि कबीर करम सै जोरी, सूत-कसूत बिनै भल कोरी।।

रमैनी ज्योही पूरी हुई, स्वर एक बार बन्द, पर पूरी की अन्धकार और अन्तर्द्वन्द्व ओढती चेतना गा उठी— 'अजहुँ बिनब कठिन है दूरी।' बुन पाने की दूरी तै करना बडा कठिन है। दूरी तै करने तक न मालूम कितने पापड बेलने पडेगे? यह अर्द्धांली विद्युदक्षरो की तरह उसके मानस पर चमक उठी। प्राण सूखती बेल को जैसे भर पेट पीयूष मिल गया हो। उसकी प्रसन्नता की सीमा न रही। उसी क्षण शेर उसका जाल से निकल मुक्त होगया—दहाडता हुआ।

वह किवाडी बन्द कर अपनी खाट पर आ बैठी ओर विचारने लगी, 'अरे कितना गलत सोच लिया मैंने कि अब चिन्ता ही क्या, यह रही मजिल–हाथ पहुँचे जितनी दूर? पाव की हंडिया मे अधसेर? पर अभी तो मोटे-पतले, कते-अधकते तारो से ताना भी तो पूरा तैयार नहीं हुआ? चादर पूरी होने तक न मालूम कितने-कितने तार और जुटाने पडेगे? क्या पता कितना समय लगेगा और कित्ते-कित्ते विघ्न आ खडे होगे? चादर का चेहरा क्या पता कब दीखेगा? चादर पूरी ही न हो और फूक पहले ही निकल जाय तब? चादर पूरी होने तक की दूरी तै करना सचमुच बडा टेढा काम है।'

अपने मन से उसने कहा, 'छली और मायावी! बडाई सुनने की मृगतृष्णा, मेरे आँगन पर क्यो ला खडी की तूने? गाँव की गलियो मे जगह-जगह जन्मते किचडैले गड्ढे नासूरो की तरह–सूखने का नाम नही लेते, मैं सोचती हूँ उनका पाटना आसान। गाँव के सीमा स्थलो पर जगह-जगह, तस्करी माया की तरह बढते घूरे के ढेरो को सम करना अति सरल पर गाँव की औरतो मे अशिक्षा, उनका अनादर, उन पर पडती अन्तर्कलह की मार, उनके आँसू और उनका आक्रोश, गरीब बालको पर पनपती बीमारियाँ, अशिक्षा, कुपोषण, अनेक लोगो मे बढती अनैतिकता, जुआ, शराब, शोषण और काम कुठाओ के पता नहीं कितने-कितने दुसाध्य नासूर, कुटेवो और अन्धविश्वासो के उठते कितने-कितने घूरे जिन्हे निर्मूल करने के लिए, पता नहीं जीवन के कितने-कितने पडाव पार करने होगे? क्या पता कित्ती-कित्ती नावो मे सवार होना पडेगा, तब भी मजिल मिल जाए तो प्रयास सफल–जन्म सफल। लक्ष्य की चादर पूरी कर पाना हँसी खेल नहीं?

तू फूल रही है, मंजिल तो आई? चुटकियो मे ही आती होगी मजिल?

समाज मे बदलाव लाना है तो कभी-कभार अपमान भी सहना पडेगा। लक्ष्य की चादर पूरी होने का सपना तभी साकार हो सकेगा, बडाई पर रीझने से कदापि नहीं।'

वह भारमुक्त हुई, अपने को हँसते फूल की तरह अनुभव करने लगी। मन ही मन उसने कहा, 'वाह प्रभु, कितने राजी हैं आप मुझ पर? उस आदमी की वाणी पर नाचते आप ही तो थे। मेरे लिए आप स्वरो मे अवतरित हुए–केवल मेरे लिए। आप कहाँ नहीं? किस रूप मे नहीं?'

उसे याद आया, दादी ने एक बार गुरूजी से कहा था, 'गजानन, तेरे ही दिए दिन हैं, पडे है तेरी छत्तर छाया मे।'

उन्होने कहा, 'मौसी, इतना ऊपर मत चढा गिरते ही चकनाचूर नहीं होजाऊँगा?'

'क्यो भाई ऐसा क्या कह दिया मैने?'

'मौसी आदमी धन-दौलत छोड सकता है, यहाँ तक कि राजपाट और सुन्दर पत्नी को भी पर मान बडाई ईर्ष्या छोड पाना सन्तो के लिए भी खाडे की धार है। तू मेरी बडाई कर मुझ मे अभिमान का विषधर पैदा करेगी। वह मेरे सारे चिन्तन को जहरीला न कर देगा? फिर मत कहना ऐसा कभी।'

सचमुच वैसा ही उन्माद अभी-अभी मुझ पर भी आ उतरा था–शराब से भी ज्यादा [illegible]। शराब का उन्माद पीने से, धन का पाने और बडाई का सुनने मात्र से ही आदमी

को भ्रमित कर देता है।

उसे स्पष्ट लगा, दोष क्रिया मे नहीं, दोष है कामना में।

उस सन्नाटा पसारती रात मे भी, अपने विश्वास की धूप का एक प्रखर टुकडा आ उतरा उस पर। उसके होठ धीरे-धीरे मुखरित हो उठे, 'अजहुँ बिनब कठिन है दूरी, मेरा धर्म तो लगे रहने मे है—बदलाव के लिए जूझने में है। हार-जीत और यश-अपयश के छलावे मे पडना नहीं। नाचना ही है तो घूघट का मोह क्यो? मेरी सफलता की मजिल तो अभी बहुत दूर है, अभी तो मुझे बहुत कुछ करना है।

वह उठी, दीपक को बडा किया और लक्ष्य पर दृष्टि रखती, उसकी थकी-मादी भ्रमरी—अजहुँ बिनब कठिन है दूरी, के शतदल मे बध, भाई के साथ जा सोई पर कर्त्तव्यबोध उसका जाग रहा था—कल के लिए ताना-बाना बुनने मे।

• •

अन्नाराम 'सुदामा' हिन्दी और राजस्थानी में समान गति से लेखनरत। लेखकीय मन मे समाज में व्याप्त शोषण, अन्याय, अत्याचार, अशिक्षा, अभाव और विषमता के प्रति एक पीड़ा और आक्रोश--और वही सब कुछ इनके साहित्य मे अभिव्यक्त हुआ है। राजस्थान के ठेठ गाँवों के जनजीवन से जुड़े श्री सुदामा वहा के निम्नवर्ग के माली हालात से हिन्दी पाठकों को परिचय करवाने वाले समर्थ और सक्षम लेखक है।

श्री सुदामा को अपने हिन्दी उपन्यास **'आँगन नदिया'** पर राजस्थान साहित्य आकादमी के सर्वोच्च सम्मान 'मीरा पुरस्कार' (1992) राजस्थानी उपन्यास **'मैवे रा रूख?'** पर केन्द्रीय साहित्य अकादमी पुरस्कार (1978) व **'अचूक इलाज'** पर राजस्थानी भाषा साहित्य सस्कृति अकादमी से 'सूर्यमल्ल मिस्सण सर्वोच्च सम्मान' (1993) प्राप्त हो चुके हैं। अब तक आपकी दोनो भाषाओं में बीस के लगभग पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

सपर्क गाँधी प्याऊ के पास,
गगाशहर, बीकानेर (राजस्थान)